Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

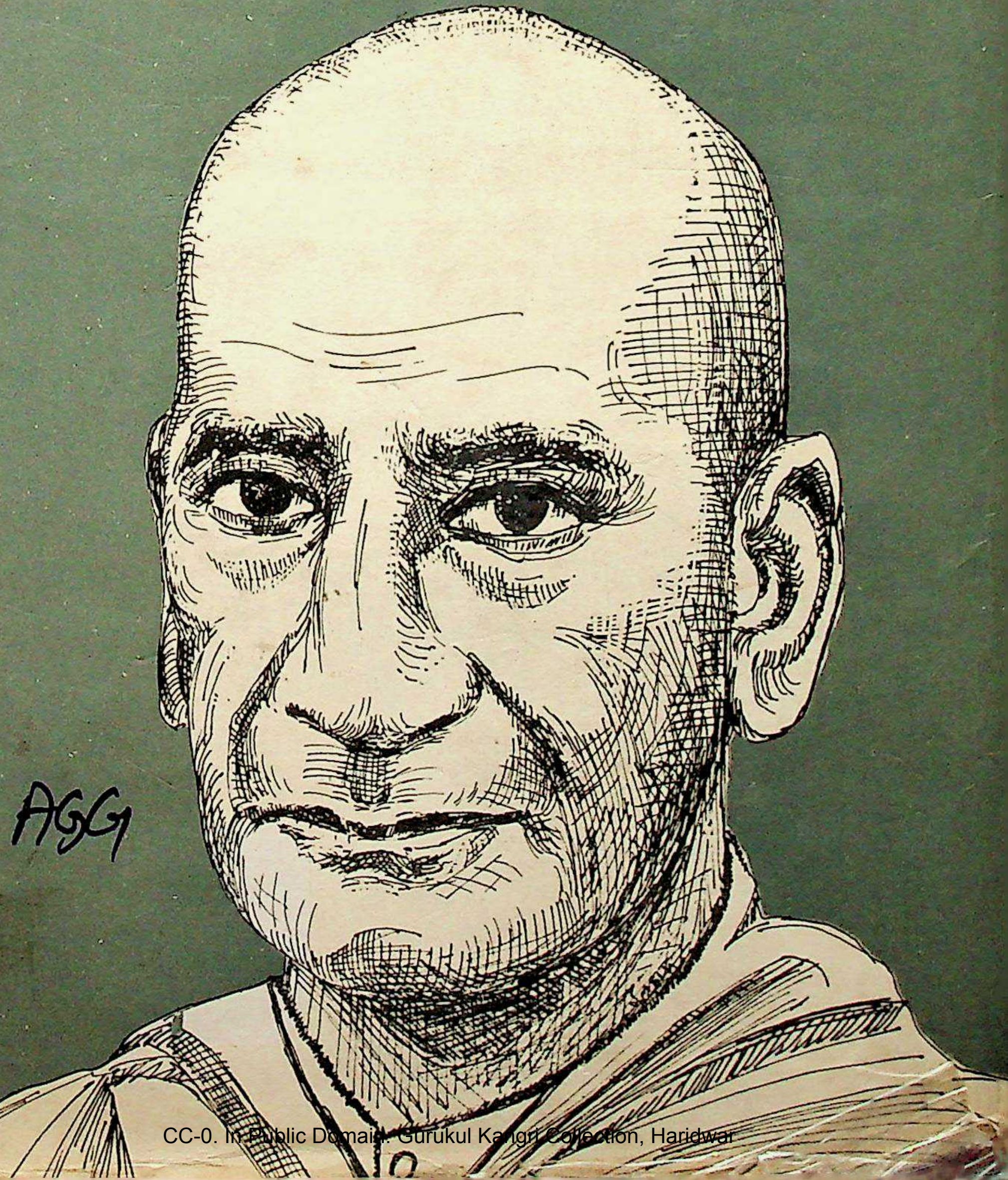

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धानन्द ग्रन्थावली: ग्यारह खण्डों में

राष्ट्र पुरुष श्रद्धानन्द ने भारत में धर्म, समाज, संस्कृति तथा शिक्षा के क्षेत्र में चौमुखी क्रांति का सूत्रपात किया था। उन्होंने स्वयं को कल्याण मार्ग का एक ऐसा पथिक बताया जो ऋषि दयानन्द के दिव्य जीवन से प्रेरणा लेकर निज के तथा संसार के कल्याण हेतु निरन्तर प्रगति पथ पर आगे बढ़ता ही रहा। स्वामी श्रद्धानन्द जहाँ एक निष्ठावान धर्म प्रचारक, समाज सुधारक, शिक्षा शास्त्री तथा स्वाधीनता संग्राम के अजेय सेनानी थे, वहाँ वे सरस्वती के वरद पुत्र भी थे। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, तथा अंग्रेजी में विपुलकाय ग्रंथों का प्रणयन किया है। उनके सभी ग्रथों का प्रामाणिक और अधिकृत संस्करण श्रद्धानन्द ग्रंथावली के ग्यारह खण्डों में प्रथम बार प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें स्वामी जी की स्वलिखित आत्मकथा के अतिरिक्त उनका संस्मरणात्मक साहित्य (बंदी जीवन के विचित्र अनुभव तथा इनसाइड कांग्रेस), वेदाधारित धर्मोपदेश, स्वामी दयानन्द के जीवन और व्यक्तित्व का मूल्यांकन परक साहित्य तथा धर्म समाज के इतिहास की स्मरणीय घटनाओं को लिपिबद्ध करने वाली रचनाएं एक साथ ही उपलब्ध कराई गई हैं। 'आर्य समाज एण्ड इट्स डिट्रेक्टर्स ए विण्डिकेशन' जैसे दुर्लभ किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रामाणिक अनुवाद को भी ग्रन्थावली में समाविष्ट किया गया है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के उर्दू में संकलित 'कुलियात संन्यासी' तथा सद्धर्म प्रचारक व अन्य पत्र पत्रिकाओं से उनके लेख व शास्त्रार्थों का संग्रह सम्पादन तथा अनुवाद भी ग्रन्थावली के दो खण्डों में समाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 91473

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या......... आगत संख्या...91473...

पुस्तक—वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब—दण्ड लगेगा।

G. K. V. LIBRARY
19 AUG 1991

25 OCT 1990

27 JAN 1998

21 AUG 1999

15 SEP 1998

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

91473

खण्ड पाँच

'इनसाइड कांग्रेस'
'हिन्दू संगठन'

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
91473

अनुवादक तथा सम्पादक
डॉ० भवानीलाल भारतीय
एम० ए०, पी-एच० डी०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष दयानन्द शोध पीठ,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक

विजय कुमार
गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

संस्करण : १९८७

मूल्य : ६०·००

मुद्रक :
अजय प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय भूमिका

श्रद्धानन्द ग्रन्थावली के प्रस्तुत खण्ड में हमने स्वामी श्रद्धानन्द के राजनैतिक विचारों को प्रकट करनेवाले उनके लेखों का संग्रह पाठकों को समर्पित किया है। स्वामी जी ने १९२६ ई० में 'दि लिबरेटर' नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र निकाला था। इसका प्रकाशन एक एप्रिल १९२६ ई० से आरम्भ हुआ और इसका अन्तिम अंक अक्टूबर १९२६ ई० में निकला। इसके दो मास पश्चात् ही स्वामी श्रद्धानन्द भी आततायी की गोलियों के शिकार हो गये थे। महाराष्ट्रनिवासी श्री पी० आर० लेले इस पत्र के संयुक्त सम्पादक थे और उन्होंने ही इसमें प्रकाशित स्वामी जी के राजनैतिक अनुभवों से युक्त लेखों को 'इनसाइड कांग्रेस' शीर्षक से १९४६ ई० में प्रथम वार प्रकाशित किया था।

देश में राजनैतिक चेतना उत्पन्न करनेवाली संस्था कांग्रेस के साथ स्वामी श्रद्धानन्द उसी काल में जुड़ गये थे, जब देश में उसका कोई खास जनाधार नहीं था और उसे आभिजात्य वर्ग के पठित लोगों का एक डिबेटिंग क्लब ही समझा जाता था। कांग्रेस की स्थापना १८८५ में हो गई थी और उसके तीन वर्ष पश्चात् ही १८८८ ई० में स्वामी श्रद्धानन्द का प्रथम सम्पर्क इस संस्था से हुआ। इस लेखमाला के प्रारम्भिक लेखों में स्वामी जी ने कांग्रेस के उस युग की एक रोचक झलक दी है जब इस संस्था का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। मुसलमानों को कांग्रेस के निकट लाने के जो प्रयत्न किये गये, उनका भी मनोरंजक वृत्तान्त पाठकों को इन लेखों में मिलेगा। लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक तथा विपिनचन्द्रपाल जैसे नेताओं के कारण कांग्रेस में जिस चेतना का संचार हुआ तथा सूरत अधिवेशन में गरम दल और नरम दल की जैसी टक्कर हुई, उसको भी तिलक ने पूर्ण निरपेक्षता के साथ अंकित किया है।

किन्तु इस लेखमाला के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश वे हैं जिनमें स्वामी जी ने रॉलेट एक्ट के समय दिल्ली की हड़ताल तथा उससे उत्पन्न परिस्थितियों का प्रत्यक्षदर्शी होते हुए भी पूर्ण तटस्थता के साथ वर्णन किया है। उस वीर संन्यासी ने जनता की ओर बढ़नेवाले गोरखा जवानों की संगीनों के आगे अपनी छाती खोल दी और निर्भीक होकर ललकारते हुए कहा था कि निर्दोष जनसमूह पर आक्रमण करने से पहले उन्हें संन्यासी की छाती को छलनी बनाना होगा। इस दौरान दिल्ली की हिन्दू-मुसलमान जनता में पारस्परिक सौहार्द और विश्वास का जैसा भाव उत्पन्न हो गया था, वह तो आज के साम्प्रदायिक विद्वेषपूर्ण वातावरण में सर्वथा अकल्पनीय ही है। निश्चय ही स्वामी जी दिल्ली के हिन्दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर मुसलमानों के बेताज बादशाह थे ग्रौर दिल्ली की ऐतिहासिक जामा मस्जिद की व्याख्यान-वेदी पर ग्रासीन होकर मुस्लिम जनसमूह को कर्त्तव्य के लिए प्रवोधित करने का एकमात्र अधिकार स्वयं मुसलमान-समुदाय ने ही उन्हें प्रदान किया था, क्योंकि वे जानते थे कि संन्यासी सब प्रकार की संकीर्णताग्रों से ऊपर उठकर समस्त विश्व का नागरिक बन जाता है।

कालान्तर में स्वामी जी ने बड़ी पीड़ा के साथ साम्प्रदायिक विभेद की खाई को ग्रधिक चौड़ा होते हुए भी देखा। उन्होंने इसके कारणों की भी सतर्क मीमांसा की है ग्रौर वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे थे, उन्हें आज की बदली हुई परिस्थितियों में भी याद रखना ग्रावश्यक है। कांग्रेस द्वारा खिलाफत ग्रान्दोलन के समर्थन के औचित्य को वे एक सीमा तक ही स्वीकार करते हैं। खिलाफत-ग्रान्दोलन के ग्रसफल हो जाने पर भारत के मुसलमान राष्ट्रीय ग्रान्दोलन की मुख्य धारा से किस प्रकार धीरे-धीरे दूर होते गये, इसे भी स्वामी जी ने ग्रपने विवेचन के ग्राधार पर स्पष्ट किया है। उन्होंने यह भी निस्संकोच लिखा है कि साम्प्रदायिक मामलों में महात्मा गांधी भी हिन्दुग्रों के प्रति ग्रन्याय करते हुए मुसलमानों को ग्रनावश्यक रियायतें देने की सिफारिश करते थे, जिससे साम्प्रदायिक संतुलन को बनाये रखना कठिन हो जाता था।

धीरे-धीरे कांग्रेस की गलत नीतियों ग्रौर ग्रछूतोद्धार जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न के प्रति उसके गलत रवैये के कारण स्वामी श्रद्धानन्द इस राष्ट्रीय संस्था के सम्मोहन से किस प्रकार मुक्त होते चले गये ग्रौर अन्ततः त्यागपत्र देकर वे इससे कई दशक लम्बे अपने सम्बन्धों को समाप्त कर बैठे, यह भी उन्होंने इस लेखमाला में निर्व्याज भाव से स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार प्रस्तुत लेखमाला यदि एक ग्रोर १८८८ ई० से लेकर १९२२ ई० तक के ३० वर्षीय राष्ट्रीय ग्रान्दोलन की जीवन्त कथा है, तो दूसरी ग्रोर वह स्वामी जी की राजनैतिक गतिविधियों ग्रौर उनके देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय कार्यकलापों का स्वलिखित प्रामाणिक दस्तावेज भी है।

हमारा प्रयास है कि गुरुकुल काँगड़ी की ग्रंग्रेजी मुखपत्रिका 'वैदिक मैगजीन' में स्वामी श्रद्धानन्द तथा पं० गोपालकृष्ण गोखले का जो महत्त्वपूर्ण पत्रव्यवहार हुग्रा था, उसे भी हम प्रकाशित करें।

—भवानीलाल भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
सम्पादकीय भूमिका	३
आत्मकथन—पी० आर० लेले	७
प्राक्कथन—देशबन्धु गुप्त	८
स्वामी श्रद्धानन्द—पण्डित जवाहरलाल नेहरू	१०
आत्मत्याग के भण्डार—लाला लाजपतराय	११
स्वामी जी : जैसा मैंने उन्हें जाना—महात्मा गांधी	१२
योद्धा संन्यासी—पी० आर० लेले	१५
कांग्रेस के अध्यक्षों की सूची—१८८५ से १९४६ तक	१८
१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	२१
२. कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन	२४
३. कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन	३०
४. बाल, पाल, लाल	३४
५. रोटी के बदले पत्थर	४१
६. धार्मिक युद्ध	४६
७. सत्याग्रह की वास्तविक भावना	५४
८. जामा मस्जिद में प्रवेश	५९
९. बैरन ने स्थिति सँभाली	६५
१०. दुःखद घटनाएँ	७०
११. त्यागपत्र	७५
१२. कांग्रेस अधिवेशन का स्थान	८१
१३. कांग्रेस में वास्तविक प्रवेश	८६
१४. अमृतसर से कलकत्ता	९३
१५. कलकत्ता में	९७
१६. नये मौलाना	१०१
१७. अस्पृश्यता की समस्या	१०६
१८. विदेशी वस्त्रों की होली	११२
१९. दिल्ली के शहीदों का स्मारक	११७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ
२०. पहला सर्वाधिकारी	१२२
२१. शहीद स्मारक की नियति	१२६
२२. दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति	१३१
२३. महात्मा जी जेल में	१३५
२४. अस्पृश्यता-निवारण	१४१
२५. कांग्रेस जाँच समिति	१४६
गुरुकुल में—(माननीय श्री जे० रेम्से मैकडॉनाल्ड एम० पी०)	१५६
मेरे नायकों में से एक (श्री सी० एफ० एण्ड्रूज)	१६०

हिन्दू संगठन १६३–२३८

सम्पादकीय भूमिका	१६३
भूमिका	१६४
प्रस्तावना	१६५
प्रकरण-१	१७१
प्रकरण-२	१७४
प्रकरण-३	१८६
प्रकरण-४	१६६
प्रकरण-५	२११
प्रकरण-६	२१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मकथन

विगत २० वर्षों तक मैंने अपने मन में इस कामना को सँजोए रक्खा है कि स्वामी श्रद्धानन्द ने कांग्रेस-विषयक जो निबन्ध लिखे और जो १९२६ ई० में 'दि लिबरेटर' नामक पत्र में प्रकाशित हुए थे, उन्हें पुस्तकरूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करूँ। उपर्युक्त साप्ताहिक की स्थापना स्वामी जी ने ही की थी और वे ही उसके सम्पादक भी थे। मुझे भी उक्त पत्र के संयुक्त सम्पादक होने का सम्मान मिला था। इस पुस्तक के प्रकाशन को मैंने स्वामी जी के प्रति एक अत्यन्त साधारण श्रद्धांजलि ही माना है। किन्तु जैसी कि कहावत है—यदि कामनायें ही घोड़े बन जायँ तो भिक्षुक भी उनपर सवारी गाँठ लेंगे। स्वामी जी की महानता ने मेरी आकांक्षा को ही अश्व के तुल्य बना दिया और मेरे जैसा भिक्षुक भी उस-पर सवार हो गया।

मैं भारत की संविधान सभा के सदस्य श्री देशबन्धु गुप्ता एम० एल० ए० (केन्द्रीय धारा सभा) का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक के लिए प्राक्कथन लिखा है। स्वामी जी के पुत्र पण्डित इन्द्र ने इस प्रकाशन के प्रति अपनी शुभ कामनाएँ व्यक्त की हैं, तदर्थ मैं उनका भी आभारी हूँ। उत्तर भारत में विशेषतः और समस्त देश में सामान्यतः स्वामी जी के जो असंख्य अनुयायी और प्रशंसक हैं, मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वामी जी के इस साहित्यिक स्मारक को अपना समर्थन प्रदान करें।

—पी० आर० लेले

तारा बाग, बम्बई-४
दिसम्बर १९४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

अपने जीवन के अन्तिम वर्ष में स्वामी श्रद्धानन्द 'दि लिबरेटर' नामक एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन करते थे। स्वामी जी अस्पृश्यता के कट्टर विरोधी थे और मद्रास प्रान्त में अछूत-समस्या सर्वाधिक तीव्र थी। वे उस पत्र के द्वारा उस प्रान्त के निवासियों के हृदय तक अपनी बात पहुँचाना चाहते थे, अतः उन्होंने इस पत्र को अंग्रेजी में ही निकाला था। उन्होंने इस पत्र के प्रथम अंक में, जो एक अप्रैल १९२६ ई० को प्रकाशित हुआ था, अपने हस्ताक्षरसहित एक लेख "कन्फैशन ऑफ माई आर्टिकल्स ऑफ फ़ेथ" शीर्षक लिखा। इसमें उन्होंने कहा था—"मैं विगत दो वर्षों में मद्रास प्रान्त में घूमा हूँ और मैंने अनुभव किया है कि यदि मैं आंध्र (तेलुगु), तमिल, मलयालम तथा कन्नड़ भाषा-भाषी लोगों के हृदय तथा मस्तिष्क तक पहुँचना चाहता हूँ तो मुझे अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करना होगा।"

'दि लिबरेटर' के अंकों में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर एक धारावाही लेखमाला लिखी। इसके अन्तर्गत २६ लेख प्रकाशित हुए थे, जिनमें से प्रथम एक अप्रैल १९२६ ई० तथा अन्तिम २८ अक्टूबर १९२६ ई० को छपा। इसके दो मास पश्चात् ही स्वामी जी को एक शहीद की मृत्यु प्राप्त हुई। २३ दिसम्बर (१९४६ ई०)स्वामी जी के देहांत की २१वीं वार्षिकी होगा। स्वामी जी के निधन की २०वीं बरसी के अवसर पर उनकी पुण्य स्मृति में उपर्युक्त लेखों से युक्त इस पुस्तक को प्रकाशित किया जा रहा हैं। बम्बई-निवासी श्री पी० आर० लेले ने इन लेखों को संगृहीत कर स्वामी जी को श्रद्धांजलि के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित करने का निश्चय किया है। श्री लेले को स्वामी जी के साथ 'दि लिबरेटर' का संयुक्त सम्पादक होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अतः वे इस कार्य को करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं।

जब उन्होंने मुझे इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने के लिए कहा तो मैं इन्कार नहीं कर सका। परन्तु इससे पाठक यह अनुमान न लगायें कि मैं स्वामी जी के ग्रंथ का प्राक्कथन लिख रहा हूँ। मैं स्वामी जी का एक विनम्र शिष्य तथा सहायक था। स्वामी जी का पदानुसरण करना तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करना ही मेरा कर्त्तव्य है। मेरे ये शब्द "प्राक्कथन" कहलाने के अधिकारी हैं, यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता, किन्तु मैं ऐसा करके अपने दिवंगत नेता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करनेवाले उनके सहकर्मियों के प्रयास में ही सम्मिलित हो रहा हूँ। मुझे प्रसन्नता है कि स्वामी जी के परलोक प्रस्थान करने के बीस वर्ष पश्चात् उनके कतिपय लेख उनके अधिसंख्य प्रशंसकों एवं भक्तों के सम्मुख प्रस्तुत किये जा रहे हैं और ये एक साप्ताहिक पत्र की तुलना में अधिक स्थायित्व लेकर आ रहे हैं। मैं यह पुस्तक उन सब महानुभावों के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ जो दिवंगत स्वामी जी के नाम, सत्यनिष्ठा तथा उनके ध्येय के प्रति श्रद्धा रखते हैं।

५ कीलिंग रोड, नई दिल्ली —**देशबंधु गुप्त**
२७ नवम्बर १९४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी श्रद्धानन्द : निर्भीकता और साहस का पुञ्ज

१९२६ ई० के अन्त में यह वर्ष एक भारी दु:खद दुर्घटना से सर्वत्र अंधकारमय हो गया। इस दुर्घटना से सम्पूर्ण भारतवर्ष रोष व घृणा से काँप उठा। इस घटना से पता चलता है कि साम्प्रदायिक जोश हम लोगों को कितना नीचे गिरा सकता है। रोगशय्या पर पड़े हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी की एक धर्मान्ध युवक द्वारा हत्या कर दी गई। जिस वीर पुरुष ने गोरखों की संगीनों के सामने अपनी छाती अड़ा दी थी और जो उनकी गोलियों का मुकाबिला करने के लिए आगे बढ़कर खड़ा हो गया था, उस वीर पुरुष की ऐसी मृत्यु ? लगभग आठ वर्ष पूर्व आर्यसमाज के प्रमुख नेता ने दिल्ली की शानदार जामा मस्जिद की वेदी पर खड़े होकर हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सम्मिलित विशाल जन-समुदाय को—'हिन्दू-मुस्लिम एकता' तथा 'भारतवर्ष को स्वतन्त्रता' का सन्देश दिया था और उस विशाल जन-समुदाय ने भी 'हिन्दू-मुसलमानों की जय' के नारों से उनका स्वागत किया था तथा मस्जिद से बाहर दिल्ली की गलियों में हिन्दू व मुसलमान, दोनों ने उसको अपने खून से अधिक सम्पुष्ट किया था, आज उनकी अपने देश-भाई द्वारा हत्या कर दी गई। वह धर्मान्ध व्यक्ति नि:सन्देह यह समझता था कि वह एक ऐसा पुण्य कार्य कर रहा है, जो उसे स्वर्ग में पहुँचा देगा।

विशुद्ध शारीरिक साहस का अथवा किसी भी शुभ कार्य के लिए शारीरिक कष्ट सहन करने एवं उस कार्य के लिए मृत्यु तक की परवाह न करनेवाले गुणों का मैं सदा से प्रशंसक रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि हम सभी व्यक्ति ऐसे अद्भुत साहस की प्रशंसा करते ही हैं। स्वामी श्रद्धानन्द में इस प्रकार का निर्भीकतापूर्ण साहस आश्चर्यजनक मात्रा में विद्यमान था। वृद्धावस्था में भी उनकी उन्नत, सीधी आकृति तथा संन्यासी वेश में उच्च भव्यमूर्ति, लम्बा कद, शाहाना शक्ल, चमकती हुई अन्तर्भेदिनी आँखें और कभी-कभी दूसरों की निर्बलताओं पर मुख पर आ जानेवाली झुँझलाहट की झलक—इस सजीव मूर्ति को मैं कैसे भूल सकता हूँ ? प्राय: यह तस्वीर मेरी आँखों के सामने आ जाती है।

(जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मत्याग के भण्डार

प्रारम्भ से ही लाला मुंशीराम निर्भीक कार्यकर्ता रहे हैं। उनके कार्य ने ही उन्हें नेता का पद प्राप्त कराया है। उनमें लोगों को आकर्षित करने के गुण हैं। वे स्पष्टवक्ता हैं। वे एक अच्छे मेज़बान भी हैं। स्वयं स्पष्टवादी तथा सत्यवक्ता होने के कारण वे किसी अन्य पर सन्देह ही नहीं करते कि वह मिथ्यावादी हो सकता है। अत: वे स्वयं अत्यन्त विश्वसनीय हैं। अपने विश्वासों के प्रति दृढ़, वे अत्यन्त अध्यवसायी हैं। १८९२-९३ तथा उसके बाद के वर्षों में भी मेरी धारणा थी कि मुंशीराम जी लोगों को आपस में लड़ाकर स्वयं आगे आने तथा नेतृत्व प्राप्त करने के इच्छुक हैं। किन्तु अब मैंने अपनी वह पूर्व धारणा पूर्णरूप से बदल दी है और अपने दल के हित के लिए किये जानेवाले उनके एकपक्षीय कार्यों के आधार पर उनके बारे में धारणा बनाने को मैं गलत मानता हूँ। अन्य महापुरुषों की भाँति उनमें भी त्रुटियाँ हैं। मैंने उनके बारे में अपनी वह राय पूरे तौर पर बदल ली है जबकि पक्षग्रहणता की स्थिति सर्वोपरि थी और अपनी उस पूर्व धारणा के लिए मुझे खेद भी है। मुंशीराम जी भावना-प्रवण व्यक्ति हैं। वे उदार तथा अतिथिप्रिय हैं। उनका सेवा-भाव अत्युच्च कोटि का है। अपने विश्वास के लिए वे हानि या पीड़ा की भी परवाह नहीं करते। वे आत्म-त्याग के भण्डार हैं। वे मैत्री प्राप्त करने के अधिकारी हैं तथा अपने मित्रों का सदा साथ देते हैं।

(लाला लाजपतराय की आत्मकथा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी : जैसा मैंने उन्हें जाना

जिस बात की सम्भावना थी, वही हुई। आज से लगभग ६ मास पूर्व स्वामी श्रद्धानन्द जी साबरमती में एक-दो दिन ठहरे। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास प्रायः ऐसे पत्र आते रहते हैं जिनमें उन्हें कत्ल करने की धमकी दी होती है। ऐसा कौन-सा देश है, जहाँ के सुधारक को अपने लक्ष्य के लिए अपने प्राणों की बाजी नहीं लगानी पड़ी ?

स्वामी जी एक सुधारक थे। वह वाक्शूर नहीं, कर्मशूर थे। उनका विश्वास जीवित-जागृत था। उसी के कारण उन्हें यह विपत्ति झेलनी पड़ी। वह वीरता की साक्षात् मूर्ति थे। उन्होंने आपत्ति में भी कभी साहस नहीं खोया। वह एक योद्धा थे और एक योद्धा रोगशय्या पर नहीं, अपितु लड़ाई के मैदान में मरना पसन्द करता है।

प्रभु उनके लिए एक शहीद की मृत्यु की कामना करते थे। इसलिए रोगशय्या में पड़े रहने पर भी एक हत्यारे के हाथों उनकी मृत्यु हुई। गीता के शब्दों में—
"सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।"

मृत्यु एक वरदान है। परन्तु उस योद्धा के लिए वह दुगुना वरदान है, जो अपने लक्ष्य तथा सत्य के लिए प्राण दे देता है। यह मृत्यु कोई भयंकर दैत्य या पिशाच नहीं। वह सबसे अधिक सच्चा मित्र है। वह हमें कष्टों से मुक्त करता है। हमारी इच्छा न होते हुए भी वह वस्तुतः हमारा सहायक होता है। वह सदा हमें नये अवसर और नई आशाएँ प्रदान करता है। वह मृत्यु निद्रा के समान मधुर नव-जीवन प्रदान करती है। फिर भी मित्र की मृत्यु पर शोक मनाने का रिवाज चल पड़ा है। परन्तु शहीद की मृत्यु पर इस प्रकार के रिवाज का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इसलिए मुझे उनकी मृत्यु पर कोई शोक नहीं। मुझे तो उनसे तथा उनके स्वजनों से ईर्ष्या होती है क्योंकि यद्यपि स्वामी जी की देह-लीला समाप्त हो गई, तथापि वह जीवित हैं। वह उस समय की अपेक्षा अब अधिक सच्चे अर्थ में जीवित हैं, जब वह अपनी विशाल काया के साथ हमारे बीच विचरण किया करते थे। ऐसी शानदार मृत्यु के कारण वह देश जिसमें उन्होंने जन्म लिया और वह राष्ट्र जिससे उनका सम्बन्ध था, वस्तुतः बधाई के पात्र हैं। वह सम्पूर्ण जीवन एक वीर की तरह जीये और अन्त में वीर की तरह ही उनकी मृत्यु हुई।

मेरा स्वामी जी से प्रथम परिचय तब हुआ, जब वह महात्मा मुंशीराम थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भी पत्र द्वारा। उस समय वह गुरुकुल काँगड़ी के, जो शिक्षा-क्षेत्र में उनकी एक मौलिक महान् देन है—मुख्याधिष्ठाता थे। वह पश्चिम की प्रचलित पद्धतियों से सन्तुष्ट नहीं थे। वह अपने देश के बच्चों को वैदिक शिक्षा से अनुप्राणित कर देना चाहते थे। वह उन्हें अंग्रेजी से नहीं, प्रत्युत हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देते थे। वह चाहते थे कि उनके शिष्य शिक्षाकाल में सदा ब्रह्मचारी रहें। उन्होंने अपने ब्रह्मचारियों को दक्षिण अफ्रीका में चल रहे सत्याग्रह की सहायतार्थ एकत्र किये जा रहे चन्दे में अपना योगदान करने के लिए प्रेरणा की थी। इनकी इच्छा थी इस कार्य के लिए उनके ब्रह्मचारी मजदूरी करनेवाले कुलियों की तरह कठोर परिश्रम करें। और यह उचित ही था, क्योंकि क्या वह सत्याग्रह कुलियों का नहीं था ? ब्रह्मचारियों ने समय की माँग को समझा और मेहनत-मजदूरी करके जो धन कमाया, स्वामी जी ने वह मेरे पास भेज दिया। इस विषय में उन्होंने हिन्दी में लिखा हुआ एक पत्र भी मुझे भेजा। उस पत्र में उन्होंने मुझे 'मेरे प्यारे भाई' करके संबोधन किया था। इस घटना ने मुझे महात्मा मुंशीराम जी का प्रिय मित्र बना दिया। इससे पूर्व हम दोनों कभी नहीं मिले थे।

श्रीयुत एण्ड्रूज महोदय ने हम दोनों के बीच कड़ी का काम किया। वह इस बात के उत्सुक थे कि जब कभी मैं अपने देश(भारत)में वापस जाऊँ तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रिंसिपल रुद्र तथा महात्मा मुंशीराम से—जिन्हें मैं उनकी त्रिमूर्ति कहा करता था, अवश्य परिचय प्राप्त करूँ। स्वामी जी के उक्त पत्र मिलने के बाद से हम दोनों सगे भाई बन गए। सन् १९१५ ई० में गुरुकुल काँगड़ी में हम दोनों परस्पर मिले और प्रत्येक मिलन में हम निकट से निकटतर होते गये और एक-दूसरे को अच्छी तरह समझने लगे। उनका प्राचीन भारत, संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के प्रति विलक्षण प्रेम था। इसमें सन्देह नहीं कि वह इस असहयोग आंदोलन के जन्म से भी पूर्व असहयोगी थे। वह स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आतुर थे। उन्हें अस्पृश्यता से घृणा थी और वह इन अस्पृश्यों की दशा सुधारने के लिए सदा उत्सुक रहते थे। वह इनकी स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध सहन नहीं कर सकते थे।

जब देश में रॉलट एक्ट-विरोधी आन्दोलन छिड़ा, उस समय वह उसका स्वागत करनेवाले अग्रणी पुरुषों में से एक थे। उन्होंने एक अत्यन्त उत्साहवर्धक पत्र मुझे लिखा। परन्तु अमृतसर तथा वीरमगाँव की दुर्घटनाओं के कारण जो मुझे आन्दोलन स्थगित करना पड़ा, उससे वह सहमत न हुए।

इसके बाद से हमारे मतभेद बढ़ने शुरू हो हुए। परन्तु इस निमित्त से उन्होंने हम दोनों में विद्यमान भ्रातृभाव के मधुर सम्बन्ध में कभी ठेस नहीं पहुँचाई। इस मतभेद के समय मुझे उनकी बच्चों जैसी सरल प्रकृति का परिचय मिला। वह जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य समझते थे, उसे खुलेआम कहने में संकोच नहीं करते थे, चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

समय के बीतने के साथ-साथ मैंने पाया कि हम दोनों की प्रकृति में पर्याप्त भेद है, परन्तु यह भिन्नता मेरे लिए स्वामी जी की आत्मा की महानता को ही सिद्ध करनेवाली हुई। खुलेआम विचार करना कोई अपराध नहीं; यह एक गुण है, सचाई की परख है। स्वामी जी के विचारों में सदा स्पष्टवादिता होती थी।

बारदोली आन्दोलन सम्बन्धी निर्णय ने उसका दिल तोड़ दिया था। वह मुझसे निराश हो गए। उन्होंने बलपूर्वक मेरे इस निर्णय का विरोध किया। मेरे पास भेजे गये निजू पत्रों में तो यह विरोध और भी अधिक प्रबल होता था, परन्तु उन्होंने उतने ही बल के साथ उनमें मेरे प्रति स्नेहभाव भी प्रकट किया था। केवल पत्रों में ही अपना स्नेह प्रकट करके उन्हें सन्तोष नहीं हुआ; वह अवसर पाकर मुझसे अलग मिले, उन्होंने अपनी स्थिति स्पष्ट की और मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न किया। परन्तु मुझसे अलग मिलने का वास्तविक कारण, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, मुझे इस बात का विश्वास दिलाना था कि वह अब भी मुझे अपना छोटा भाई समझकर प्रेम करते हैं। उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आई। मानो ऐसा विश्वास दिलाना वह आवश्यक समझते थे।

कुछ ही मास पूर्व स्वामी जी जब अन्तिम बार मुझसे साबरमती आश्रम में मिलने आये, उसका स्मरण कराये बिना मैं उस महान् सुधारक के जीवन-संस्मरण समाप्त नहीं करना चाहता। (उसके आधार पर) मैं अपने मुसलमान मित्रों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि वह मुसलमानों के विद्वेषी न थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह कई मुसलमानों पर विश्वास नहीं करते थे, परन्तु उनके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना उसके मन में न थी। उनका विचार था कि हिन्दुओं को डराया जाता है, इसलिए वह चाहते थे कि हिंदू बहादुर बने और अपने जीवन एवं सम्मान की रक्षा स्वयं कर सके। उन्होंने मुझे बताया कि इस विषय में मुझे गलत समझा गया है और उनके विरुद्ध कही जानेवाली अनेक बातों में सर्वथा निर्दोष हैं। उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास कई धमकीभरे पत्र आये हैं। इसलिए उनके मित्रों ने उन्हें अकेला यात्रा करने में सचेत किया है। परन्तु दृढ़ ईश्वर-विश्वासी स्वामी ने कहा—"सिवाय परमात्मा के मैं किसका सहारा ढूँढ़ूँ? उनकी इच्छा के विपरीत घास की एक पत्ती भी नष्ट नहीं हो सकती। इसलिए मैं समझता हूँ जब तक वह प्रभु मेरे इस शरीर से कुछ सेवा लेना चाहते हैं, तब तक मेरा कुछ नहीं हो सकता।"

आश्रमवास के इस काल में उन्होंने आश्रमवासी बालक-बालिकाओं को उपदेश देते हुए बताया कि हिन्दू-धर्म की रक्षा का सर्वोत्तम साधन आंतरिक शुद्धि अर्थात् आत्म-शुद्धि है।

चरित्र-गठन तथा शरीर-निर्माण के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य की आवश्यकता पर सबसे अधिक बल दिया।

—महात्मा गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योद्धा संन्यासी

२३ दिसम्बर १९२६ ई० को शहीद होनेवाले स्वामी श्रद्धानन्द अपने शानदार शारीरिक स्वास्थ्य के कारण योद्धा संन्यासी कहलाते थे। इसका कारण यह नहीं था कि उनके मन या मस्तिष्क में कोई आक्रामक भाव था। वे उन बहुत थोड़े सार्वजनिक नेताओं में से एक थे, जो अपने सम्पर्कवालों से अपने विचारों में निरन्तर परिशोधन करते रहते हैं। वे कर्म में विश्वास करते थे, इसलिए वे उन राजनीतिज्ञों के तौर-तरीकों को नापसन्द करते थे जो अन्तहीन वाद-विवाद ही करते हैं तथा अपनी अकर्मण्यता को भी गरिमायुक्त मानते हैं। उन्हें आक्रामक इस अर्थ में कहा जा सकता है कि वे अवसर आने पर लड़ने से पीछे नहीं हटते थे। जब कभी उन्हें कोई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करना होता, तो वे उसे पूरी तत्परता के साथ करने में संकोच नहीं करते थे तथा मार्ग में आनेवाली बाधाओं की चिन्ता करते हुए भी वे उस कार्य में निरन्तर बढ़ते रहते, बिना इस बात की परवाह किये कि कितने लोग उनके साथ हैं या उनका अनुसरण कर रहे हैं। साथ ही उन्हें इस बात की चिन्ता भी नहीं रहती थी कि लोग उनकी आलोचना करते हैं या उनका उपहास करते हैं। उनको पहले 'महात्मा मुंशीराम' के नाम से अभिहित किया जाता था और उनको दी गई यह 'महात्मा' की पदवी ही उपहास या व्यंग्य की प्रतीक थी। कारण स्पष्ट था। वे प्राचीन एवं मौलिक वैदिक संस्कृति के प्रचार के इच्छुक थे तथा बिना किसी प्रकार की राजकीय सहायता प्राप्त किये गुरुकुल की स्थापना करना चाहते थे। इसलिए उन्हें मात्र एक स्वप्नदर्शी कहा गया और व्यंग्य में वे 'महात्मा' पद से सम्बोधित किये गये। तथापि वे एकनिष्ठ होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते गये और समय पाकर उन्हें अपने देश के सभी उच्च नेताओं से सम्मान प्राप्त हुआ। हमने इस पुस्तक के अन्त में इंग्लैण्ड के भूतपूर्व प्रधान मंत्री माननीय रेम्ज़े मैकडानल्ड का एक लेख प्रकाशित किया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि महात्मा मुंशीराम के कार्य कालान्तर में कितने सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। महात्मा गांधी ने अपने पुत्र को गुरुकुल में भेजकर इस संस्था को सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया था।

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म उसी वर्ष (१८५६ ई०) में हुआ था जिस वर्ष में अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन तथा इंग्लैण्ड के लॉर्ड हाल्डेन का जन्म हुआ जिनके बारे में कहा जाता है कि आइन्स्टीन के सापेक्षता के सिद्धान्त को सही परिप्रेक्ष्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझनेवाले वे अकेले ही थे। इसी वर्ष में जार्ज बर्नार्ड शॉ तथा लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का भी जन्म हुआ था। इन सभी की भाँति स्वामी श्रद्धानन्द भी शिक्षा तथा आध्यात्मिक मूल्यों में रुचि रखते थे। उनका शैशवकाल का मूल नाम ही विद्या के प्रति उनकी आसक्ति का द्योतक है। जन्म के साथ ही उन्हें 'बृहस्पति' नाम प्रदान किया गया जो देवताओं के गुरु का वाचक है। उनका द्वितीय नाम 'मुंशीराम' भी अध्यापक का ही संकेत देता है। ६० वर्ष की अवस्था में जो नाम 'श्रद्धानन्द' उन्होंने स्वयं के लिए चुना, वह बताता है कि वे प्रकृत्या श्रद्धा और विश्वास के ही व्यक्ति थे। मूलतः वे एक द्रष्टा थे, क्योंकि वे अपने भावी कार्यों को अग्रिम रूप से देख लेते थे तथा भविष्य के निर्माण में अपना योगदान करते थे।

वैदिक सिद्धान्तों के अनुरूप ही वे जीवन के सभी सोपानों पर होकर गुजरे। वे एक ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और अन्त में संन्यासी बने। उन्होंने मार्च १९०२ ई० में हरिद्वार में न केवल गुरुकुल की स्थापना ही की, अपितु उसे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति, जो लगभग ४० हजार रुपये मूल्य की थी, प्रदान की। साथ ही अपने पुत्रों को भी गुरुकुल में प्रविष्ट कराया। उन्होंने १९१७ ई० में संन्यास धारण करने के समय तक अविश्रान्त भाव से गुरुकुल की सेवा की। अन्य दायित्वों एवं कार्यों को ग्रहण करने के पूर्व उन्होंने गुरुकुल को पूर्णरूपेण सफल बनाया। उनका संन्यास तो केवल अपने कर्त्तव्य कर्म में परिवर्तन ही था, क्योंकि अब वे समस्त संसार की सेवा करने के लिए स्वतन्त्र हो गये थे। अमृतसर कांग्रेस की स्वागत-समिति के अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए उन्होंने बिना किसी मत या पंथ में भेद किये मानवता की सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बताया था।

वे अछूतों की दशा को सुधारने में किसी प्रकार के समझौते के विरुद्ध थे। महात्मा गांधी द्वारा अछूतोद्धार को कांग्रेस के कार्यक्रम में सम्मिलित किये जाने के एक वर्ष पूर्व ही उन्होंने इस दूषित प्रथा को समाप्त करने के लिए आवाज उठाई थी। अमृतसर कांग्रेस की स्वागत-समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कांग्रेस के मंच से कहा था—

"हमारे राष्ट्र में इस समय एक ही कमी है। वह क्या है? सॉल्वेशन सेना के जनरल बूथ टकर ने सुधार योजना समिति के समक्ष कहा था कि साढ़े पाँच करोड़ अछूतों को भारत में विशेष सुविधाएँ दी जानी चाहिएँ क्योंकि ये ब्रिटिश राज्य के सुदृढ़ लंगर-तुल्य हैं। मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप इस बात पर विचार करें और पता लगाएँ कि साढ़े पाँच करोड़ अछूत सरकार के लंगर के समान कैसे हो सकते हैं? मैं आपसे यह भी प्रार्थना करूँगा कि आप आज इस पवित्र सभास्थल पर यह व्रत लें कि आज से हम इन तथाकथित अछूतों के प्रति ऐसा व्यवहार करेंगे जिससे कि इनके बच्चे हमारे बच्चों के समान ही स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त कर सकें, वे आपके परिवारों में इस प्रकार घुलमिल सकें जैसे हमारे

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार आपस में मिलते-जुलते हैं, तथा ये लोग हम लोगों के साथ राजनैतिक कार्यों तथा अन्य प्रगति के कामों में कंधे से कंधा मिलाकर चल सकें। देवियो और सज्जनो, आप मेरे साथ यह प्रार्थना करें कि मेरा यह स्वप्न साकार हो।"

श्रद्धानन्द जी राजनीतिज्ञ नहीं थे। रॉलट एक्ट के विरोध में उन्होंने सत्याग्रह इसलिए किया क्योंकि वे यह समझते थे कि यह कानून मनुष्य के मौलिक अधिकारों के विरुद्ध है। यह तो केवल परिस्थितियों का ही प्रभाव था कि उन्हें अमृतसर-कांग्रेस की स्वागत-समिति के अध्यक्ष का पद ग्रहण करना पड़ा और उसके पश्चात् कुछ वर्षों तक कांग्रेस के कार्यों में सक्रिय भाग लेना पड़ा। वे राजनीति के आध्यात्मीकरण करने की आशा और आकांक्षा लेकर उसमें प्रविष्ट हुए थे। उन्हें यह आशा थी कि कांग्रेस के भीतर रहकर वे अछूतों के उत्थान के लिए अधिक सफलता के साथ संघर्ष कर सकेंगे। जब उन्होंने देखा कि उनके प्रयत्नों को समर्थन नहीं मिल रहा है, तो वे कांग्रेस के सक्रिय नेतृत्व से पृथक् हो गये। तब उन्होंने स्वयं के बलबूते पर ही काम आरम्भ किया और दलितोद्धार सभा की स्थापना की।

स्वामी श्रद्धानन्द के कार्यों और उनकी गुरुता का मूल्यांकन करने का यहाँ स्थान नहीं है। इसका अनुमान तो उन्हें महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा लाला लाजपतराय द्वारा दी गई श्रद्धांजलियों से लगाया जा सकता है, जो इस पुस्तक में प्रकाशित की गई हैं। उनके विरुद्ध एक प्रकार का निन्दात्मक प्रचार जानबूझकर किया जा रहा है कि वे मुसलमानों के विरोधी थे। मैं इस निन्दात्मक प्रचार को सर्वथा मिथ्या मानता हूँ। वे मुसलमानों का सम्मान करते थे तथा उनसे प्रेम करते थे। वे तो हिन्दुओं को अपने सामाजिक ढाँचे का सुधार करने के लिए कहते थे ताकि वे मुसलमानों की धर्मप्रचार की कूटनीति के शिकार न हो जाएँ। यदि आज पंजाब में हिन्दुओं की कोई स्थिति है और पंजाब की विधान-सभा में वे इस संयुक्त मोर्चे में अपना प्रभावी स्थान बनाये हुए हैं, जिसने कि वहाँ मौजूदा मंत्रिमंडल बनाया है, तो इसका स्पष्ट श्रेय उस आर्यसमाज को जाता है जिसके स्वामी श्रद्धानन्द प्रकाश-स्तम्भ थे। यह ध्यातव्य है कि पंजाब विधानसभा में जो कांग्रेस दल है उसमें हिन्दू सदस्यों का ही बहुमत है।

—पी० आर० लेले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस के अध्यक्ष—१८८५ से १९४६ तक

बर्ष	स्थान	अध्यक्ष
१८८५	बम्बई	डब्लू० सी० बनर्जी
१८८६	कलकत्ता	दादाभाई नौरोजी
१८८७	मद्रास	बदरुद्दीन तैंयब जी
१८८८	इलाहाबाद	जॉर्ज यूल
१८८९	बम्बई	सर विलियम वेडरवर्न
१८९०	कलकत्ता	सर फीरोजशाह मेहता
१८९१	नागपुर	पी० ग्रानन्द चार्लू
१८९२	इलाहाबाद	डब्लू० सी० बनर्जी
१८९३	लाहौर	दादाभाई नौरोजी
१८९४	मद्रास	एल्फ्रेड वेब
१८९५	पूना	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१८९६	कलकत्ता	रहमतुल्ला सयानी
१८९७	ग्रमरावती	सर शंकरन नायर
१८९८	मद्रास	ग्रानन्दमोहन बोस
१८९९	लखनऊ	रमेशचन्द्र दत्त
१९००	लाहौर	सर नारायण चन्दावरकर
१९०१	कलकत्ता	दिनशा इदुलजी वाच्छा
१९०२	ग्रहमदाबाद	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१९०३	मद्रास	लालमोहन घोष
१९०४	बम्बई	सर हेनरी कॉटन
१९०५	बनारस	गोपालकृष्ण गोखले
१९०६	कलकत्ता	दादाभाई नौरोजी
१९०७	सूरत	डॉ० रासबिहारी घोष
१९०८	मद्रास	डॉ० रासबिहारी घोष
१९०९	लाहौर	पं० मदनमोहन मालवीय
१९१०	इलाहाबाद	सर विलियम वेडरबर्न
१९११	कलकत्ता	विशननारायण दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६१२	बाँकीपुर	आर० एन० मुधोलकर
१६१३	कराची	नवाब सैयद महमूद बहादुर
१६१४	मद्रास	भूपेन्द्रनाथ बसु
१६१५	बम्बई	एस० पी० सिन्हा (लॉर्ड सिन्हा)
१६१६	लखनऊ	अम्बिकाचरण मजूमदार
१६१७	कलकत्ता	श्रीमती ऐनी बेसेण्ट
१६१८ (विशेष)	बम्बई	हसन इमाम
१६१८ (वार्षिक)	दिल्ली	पं० मदनमोहन मालवीय
१६१६	अमृतसर	पं० मोतीलाल नेहरू
१६२० (विशेष)	कलकत्ता	लाला लाजपतराय
१६२० (वार्षिक)	नागपुर	सी० विजयराघवाचारियर
१६२१	अहमदाबाद	हकीम अजमल खाँ
१६२२	गया	सी० आर० दास
१६२३ (विशेष)	दिल्ली	मौलाना अबुलकलाम आजाद
१६२३ (वार्षिक)	कोकानाड़ा	मौलाना मुहम्मदअली
१६२४	बेलगाँव	महात्मा गांधी
१६२५	कानपुर	श्रीमती सरोजिनी नायडू
१६२६	गोहाटी	एस० श्रीनिवास आयंगर
१६२७	मद्रास	डॉ० मुहम्मद अली अंसारी
१६२८	कलकत्ता	पं० मोतीलाल नेहरू
१६२६	लाहौर	पं० जवाहरलाल नेहरू
१६३१	कराची	सरदार वल्लभभाई पटेल
१६३४	बम्बई	बाबू राजेन्द्रप्रसाद
१६३६ (मार्च)	लखनऊ	पं० जवाहरलाल नेहरू
१६३६ (दिसम्बर)	फैजपुर	पं० जवाहरलाल नेहरू
१६३८	हरिपुरा	सुभाषचन्द्र बोस
१६३६	त्रिपुरी	सुभाषचन्द्र बोस
१६४०	रामगढ़	मौलाना अबुलकलाम आजाद
१६४६	मेरठ	आचार्य जे० बी० कृपलानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय 91478

१

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

भारत राष्ट्र के नाम पर जिस समय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ और बम्बई के एक दीवानखाने में कुछ आभिजात्य वर्ग के लोगों ने कतिपय प्रस्ताव पारित किये, उस समय से काफी पहले मैं 'पायनियर' (इलाहाबाद) तथा 'ट्रिब्यून' का नियमित पाठक था। एक नागरिक से जितनी अपेक्षा की जाती थी, मुझे देश के राजनैतिक आन्दोलनों का उतना अवश्य ज्ञान था। सितम्बर १८८५ ई० में श्री एलेन ओ० ह्यू म ने समस्त भारत का भ्रमण किया तथा शिक्षित भारतीयों को एक नवीन आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया। इससे मुझे भी प्रथम वार ज्ञात हुआ कि राष्ट्रीय स्तर पर एक राजनैतिक संगठन को स्थापित किये जाने का प्रस्ताव देश के सम्मुख आया है। श्री ह्यू म ने 'पूर्व में नक्षत्र का उदय' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी। वे उसे देश में सर्वत्र वितीर्ण करते रहे तथा प्रमुख भारतीयों की इस नवीन आन्दोलन के प्रति सहानुभूति अर्जित करने के लिए उनसे साक्षात्कार भी किया। मैं उस समय लाहौर में था तथा कानून की अन्तिम परीक्षा के लिए नियमित रूप से तैयारी करने के साथ-साथ आर्यसमाज का सदस्य भी वन चुका था। लाहौर में श्री ह्यू म ने अनुभव किया कि वे भारत के अनेक सभ्य नागरिकों का अभी तक विश्वास अर्जित नहीं कर सके हैं। कुछ लोगों ने उनसे यह कहकर क्षमा-याचना कर ली कि उनके पास समय नहीं है, अन्यों ने इस विषय पर आगे विचार करने का आश्वासन दिया। यदि इनमें से कोई व्यक्ति श्री ह्यू म के उद्देश्यों से अनभिज्ञ होने के कारण उनके इस आन्दोलन में सम्मिलित होने का वचन दे भी देता तो दूसरे ही दिन वह अपनी प्रतिज्ञा को विस्मृत कर कोई-न-कोई वहाना वनाते हुए क्षमा-याचना का पत्र भी उन्हें भेज देता।

पंजावियों की सहानुभूति प्राप्त न कर सकने को अपनी असफलता समझकर श्री ह्यू म अत्यधिक निराश हुए। अपनी पूर्ण शक्ति से जव उन्होंने इसके कारण का पता लगाया तो उन्हें मालूम हुआ कि यह एक ऐसे एम० ए० आर्यसमाजी का कारनामा है जो ब्रिटिश सरकार में उच्चाधिकारी है। इन महानुभाव की सार्वजनिक रूप में पोल खोलने में असमर्थ रहने पर श्री ह्यू म ने आर्यसमाज लाहौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रधान को पत्र लिखकर इस बात का विरोध प्रकट किया कि उन्होंने एक नास्तिक को उस समाज का सदस्य बना लिया है जो उनके आदरणीय मित्र स्वर्गीय पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी द्वारा स्थापित की गई है।

इसके पश्चात् देश के सभी भागों से एकत्र हुए कुछ प्रबुद्ध व्यक्तियों ने स्व० श्री डब्लू० सी० बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम से आभिजात्य वर्ग के लोगों के एक संगठन को जन्म दिया। मैं इस कांग्रेस तथा उसकी प्रवृत्तियों का बड़ी गम्भीरता से अध्ययन करता था। मैं १८८८ ई० में राष्ट्रीय आन्दोलन के घनिष्ठ सम्पर्क में आया। उस वर्ष दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में कांग्रेस का अधिवेशन इलाहाबाद में सम्पन्न होने वाला था। उस समय सर ऑकलैण्ड काल्विन संयुक्तप्रान्त के गवर्नर थे और इलाहाबाद इस प्रान्त की राजधानी थी। सर काल्विन ने एक गुप्त आदेश निकालकर सरकारी कर्मचारियों को कांग्रेस में सम्मिलित होने से मना कर दिया तथा उसके मार्ग में अनेक बाधायें उपस्थित कीं। श्री ह्यूम ने इसकी प्रतिक्रिया में एक कड़ा विरोधसूचक पत्र लिखा जिनमें उन्होंने गवर्नर से अनेक सीधे किन्तु असुविधा उत्पन्न करनेवाले सवाल पूछे। गवर्नर ने भी इसका सख्त जवाब दिया तथा उसे पत्रों में प्रकाशित भी करा दिया।

इधर तो शिमला में श्री ह्यूम को गवर्नर द्वारा प्रकाशित उनके पत्र का उत्तर मिला, उधर उन्होंने बारह घण्टों के भीतर ही उसका प्रत्युत्तर तैयार कर लिया। छपे हुए ८० पृष्ठों के इस प्रत्युत्तर को एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर दिया गया। यह पुस्तिका अंग्रेजी सरकार को भेजा गया एक कठोर प्रतिवाद था, जिससे भारतीय समाज को अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक होना पड़ा। सर सैयद अहमद खाँ की कांग्रेस-विरोधी मुस्लिम लीग, जिसे भूल से देशभक्त कहा जाता था, भी अस्तित्व में आ चुकी थी, और वह नौकरशाही की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को दृढ़ बना रही थी।

कांग्रेस के समर्थन और विरोध के दोनों आन्दोलन पंजाब पर थोप दिये गये। मैं उस समय जालंधर नगर में वकालत करता था। लाहौर के ट्रिब्यून के सहकारी सम्पादक काली बाबू को उस नगर में कांग्रेस कमेटी की स्थापना के लिए नियुक्त किया गया। काली बाबू मेरे मित्र तथा आर्यसमाजी भी थे। मैंने उनकी सहायता के लिए अपने सम्बन्धी तथा मित्र लाला बालकराम को बुलाया। वे उस समय नगरपालिका के सदस्य तथा ऑनरेरी मजिस्ट्रेट थे। मुसलमानों पर उनका बड़ा प्रभाव था। किसी व्यक्ति के निवास पर एक बैठक बुलाई गई। पुराने विचारों के हिन्दू और मुसलमान इसमें बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए तथा नगर के प्रायः सभी रईस भी इसमें मौजूद थे। नगरपालिका के उपाध्यक्ष खान बहादुर फजल-करीम खाँ ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस के उद्देश्यों से सहानुभूति रखने का प्रस्ताव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित किया। स्थानीय हिन्दू सभा के सभापति लाला हरभजराय ने, जो स्वयं भी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट थे, इसका समर्थन किया। उपस्थित सभी उच्च सम्मान-प्राप्त लोगों ने इस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की।

महारानी विक्टोरिया के जन्मदिन २४ मई को ही यह बैठक हुई थी, और इसी मास की ३१ तारीख के ट्रिब्यून के अग्रलेख में कांग्रेस पार्टी की विजय का प्रोज्ज्वल विवरण अंकित किया गया। किन्तु यह विजय अल्पजीवी थी। एक युवक मुसलमान वकील के द्वारा सर सैयद द्वारा प्रवर्तित कांग्रेस-विरोधी प्रचार खुले रूप में आरम्भ किया गया और एक-एक कर कांग्रेस के सभी मुसलमान समर्थक कांग्रेस-विरोधी लीग में चले गये। परन्तु कांग्रेस के शिविर में वास्तविक रूप में प्रविष्ट होनेवाले ख्वाजा शाह मुहम्मद वकील तथा पीरदाद खाँ मुख्त्यार भी थे, जो मेरे जालंधर में निवास करने तक कांग्रेस में रहे।

मुसलमानों को कांग्रेस में पुनः लाने की दृष्टि से कांग्रेस की केन्द्रीय समिति ने बम्बई के श्री मुहम्मद भीमजी की सेवायें लीं। इन्होंने सितम्बर मास में सम्पूर्ण पंजाब का भ्रमण किया, किन्तु मुसलमानों का विरोध इतना तीव्र था कि, जहाँ तक मुझे स्मरण है, होशियारपुर के वकील शेख उमरबख्श एम० ए० के अतिरिक्त कोई भी ख्यातनामा मुसलमान कांग्रेस के उद्देश्यों के समर्थन में आगे नहीं आया। जालंधर के अपने दो सहयोगी वकील भाइयों की भाँति शेख उमर-बख्श भी कांग्रेस के ध्येय के प्रति पूर्ण निष्ठावान् रहे।

जालंधर में अधिसंख्य हिन्दू वकील कांग्रेस में प्रविष्ट हुए और एक स्थानीय कांग्रेस कमेटी का गठन हुआ। मैं इसका मन्त्री नियुक्त हुआ और कार्यकारिणी की अगली बैठक में मैंने जिले के कस्बों और गाँवों में कांग्रेस के गहन प्रचार का कार्य-क्रम प्रस्तुत किया। इसमें स्वयंसेवकों का आह्वान किया गया था और उनसे कहा गया था कि वे आम लोगों में जाकर उन्हें राजनैतिक दृष्टि से शिक्षित करें तथा उनकी शिकायतों का पता लगायें। मेरे साथी लोग इसपर दिल खोलकर हँस पड़े—"यह सब राजनैतिक प्रचार है। इसके बारे में और अधिक बैठकें बुलाना अनावश्यक है। समय आने पर हम एक सार्वजनिक बैठक आमन्त्रित कर इलाहाबाद कांग्रेस अधिवेशन के लिए प्रतिनिधियों का निर्वाचन करेंगे। महाशय जी, यह आर्यसमाज नहीं है जहाँ सदस्यों को केवल भावना के वशीभूत होकर अपने सांसारिक हितों की बलि देने के लिए कहा जाता है।" मुझे उनके इस कथन से बड़ी ग्लानि हुई और मैंने मन्त्री के पद से त्यागपत्र दे दिया। मैं आर्यसमाज जालंधर के प्रधान के रूप में उस समय अपने कार्यों की पूर्ति में इतना व्यग्र हो गया कि जिस समय कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होने का समय आया, मैं जालंधर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव को सफल बनाने में पूर्णतया लगा हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन

प्रथम बार पंजाब की ओर से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ९वाँ वार्षिक अधिवेशन १८९३ ई० के आरम्भ में आमन्त्रित किया गया। भारतीय देशभक्तों का आतिथ्य इस बार पंजाब की राजधानी लाहौर को करना था। सार्वजनिक भावना रखनेवाले प्रमुख रईस सरदार दयालसिंह मजीठिया स्वागत-समिति के अध्यक्ष-पद को सम्भालने के लिए राजी हुए। इसका कारण यह था कि स्व० रायबहादुर सर प्रतुलचन्द्र बनर्जी ने, जो उस समय के भारतीय वकीलों में प्रमुख थे, स्वयं के पंजाब की चीफ कोर्ट के न्यायाधीश पद पर नियुक्त होने के कारण, इस पद से त्यागपत्र दे दिया था। स्व० बख्शी जैशीराम वकील को स्वागत-समिति का कार्यवाहक मन्त्री बनाया गया। बख्शी जी मेरे विशिष्ट मित्र थे, इसलिये उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं कांग्रेस की विचारधारा को लोकप्रिय बनाने में उनकी सहायता करूँ। यह वह समय था जब कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग भी राष्ट्रीय आन्दोलन के बारे में बहुत कम जानते थे। जहाँ तक साधारण जनता का सवाल है, उसने इसके बारे में कुछ भी नहीं सुना था। उन्हें यह भी पता नहीं था कि कांग्रेस कोई इन्सान है या जानवर। मैं अपने मित्र बख्शी जी को मना नहीं कर सका और मैंने उनसे वादा किया कि पंजाब के विभिन्न स्थानों पर मैं १० या १२ व्याख्यान कांग्रेस के ध्येय और उद्देश्यों को लेकर दूँगा। इससे अधिक का वादा करना मेरे लिए कठिन था, क्योंकि अभी हाल ही में मैं आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब) का प्रधान चुना गया था जो पंजाब के आर्यसमाजों का प्रतिनिधि संगठन था और इस संस्था के प्रशासन का बोझ पर्याप्त अधिक था।

इस व्याख्यानमाला का प्रथम व्याख्यान अमृतसर में देना तय हुआ। इस कार्य के लिए बन्देमातरम् सभागार को चुना गया जहाँ लगभग १५०० व्यक्तियों के बैठने का स्थान था। नगर के सभी प्रमुख स्थानों पर बड़े-बड़े पोस्टर चिपकाये गये और एक हजार से अधिक सूचनापत्र भी वितरित किये गये थे। मैं सभा आरम्भ होने के कुछ समय पहले ही अमृतसर पहुँच गया जहाँ आर्यसमाज-मन्त्री के घर पर लगभग ३० बन्धु आर्यसमाज-विषयक मामलों पर बातचीत के लिए एकत्र हो गये थे। ये सभी लोग मेरे साथ व्याख्यानस्थल तक आये और मंच के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने बैठे। मंच पर बख्शी जैशीराम के अतिरिक्त लाहौर के ५-६ अन्य व्यक्ति आसीन थे। व्याख्यान के समय तक उपस्थिति ८० से अधिक नहीं हुई। मुझे १५ मिनट तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया। अन्ततः हाज़िरी ६३ तक पहुँची। मैं और अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। इसलिये मैंने लगभग डेढ़ घण्टे तक राष्ट्रीय कांग्रेस के ध्येय और उसके कार्य पर अपना व्याख्यान दिया। व्याख्यान के अन्त में जब मैंने श्रोताओं की गणना की, तो यह संख्या ६७ से अधिक नहीं थी।

किन्तु मेरे आश्चर्य का उस समय पारावार नहीं रहा जब मैंने तीन दिन बाद दैनिक ट्रिब्यून में एक सम्पादकीय लेख पढ़ा जिसमें उस उत्साह की चर्चा की गई थी जो अमृतसर की उक्त बैठक में दिखाई दिया था। इस लेख में कहा गया था कि श्रोताओं की अपार उपस्थिति के कारण सारा हाल भर गया था तथा मेरे जोशीले और धाराप्रवाह भाषण को सुनकर लोगों ने महान् हर्षध्वनि की थी। मेरा जैसा कि स्वभाव था, मैंने इस अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण प्रकाशित करने के प्रतिवादरूप में सम्पादक को लिखा तथा उससे अनुरोध किया कि वह मेरे अत्युक्तिरहित बयान को यथावत् प्रकाशित करें। मेरा उक्त बयान तो कभी छपा ही नहीं, किन्तु मुझे भी इस कार्य से छुट्टी मिल गई। इसके पश्चात् किसी ने मुझे कांग्रेस की ओर से बोलने का अनुरोध नहीं किया।

किन्तु कांग्रेस कमेटी भिन्न प्रकार से कार्य्य कर रही थी। सर सैयद अहमद का कांग्रेस-विरोधी रवैया परेशानी पैदा कर रहा था और इसे रोकने का सबसे अधिक कारगर उपाय यही समझा गया कि एक ऐसे मुसलमान मुख्त्यार की सेवायें प्राप्त की जायें, जो समस्त प्रान्त में घूमकर मुसलमानों को कांग्रेस का सदस्य बनाये तथा उनमें कांग्रेस को लोकप्रिय बनाने का कार्य करे। जिस व्यक्ति को इस काम के लिए नियुक्त किया गया, उसने इच्छापूर्वक यह कार्य किया। उसके परिश्रम का यह परिणाम निकला कि लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में बहुसंख्य मुसलमान प्रतिनिधि बनकर आये। मैं कांग्रेस से उनके सम्बन्धों की चर्चा आगे करूँगा।

१८९२ ई० में भारत के वृद्ध महापुरुष दादाभाई नौरोजी ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स में उदारदली प्रत्याशी के रूप में मध्य फिन्सबरी निर्वाचन-क्षेत्र से चुनकर आये। श्री नौरोजी को कांग्रेस की इस बैठक की अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित किया गया और उन्होंने इसे स्वीकार भी कर लिया था। समस्त देश में अत्यधिक उत्साह था। अतः जब वह महापुरुष, जिसे कि अपने लक्ष्य की पूर्ति के प्रति अनन्य आस्था रखने के कारण पागल तक कहा जाने लगा था, लाहौर आया तो उसे जैसा स्वागत मिला, वह वस्तुतः अपूर्व ही था। दादाभाई को जिस घोड़ागाड़ी में बिठाया गया, उसके घोड़ों को हटा लिया गया और स्नातकों तथा शहर के रईसों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने उस गाड़ी को खींच ।। इस प्रकार पूरे नगर में उन्हें जुलूस के रूप में ले-जाया गया। समाज के पठित वर्ग ने तो यह अनुभव किया था कि एक भारतवासी ब्रिटिश पार्लियामेंट का सदस्य बना है, किन्तु नगर के मार्गों के दोनों ओर खड़ी लाखों की भीड़ को राजनीति का कुछ भी पता नहीं था। वे तो उस व्यक्ति को आदर देने आये थे जो हमारे शासकों की श्रेणी में प्रविष्ट हो गया है, अत: वे उससे यही अपेक्षा रखते थे कि वह अनाज को सस्ता कर देगा।

यहाँ मैं उस समय कांग्रेस के प्रतिनिधि निर्वाचित करने की प्रणाली का वर्णन करना चाहता हूँ। कांग्रेस के मन्त्री ने एक सार्वजनिक बैठक बुलाई, जिसमें लगभग २० लोग उपस्थित थे। इन लोगों ने परस्पर विचार किया और ४१ सज्जनों की एक सूची बनाई। यह सूची प्रकाशनार्थ भेज दी गई। मंत्री को यह अधिकार दिया गया कि वह चाहे जितने प्रतिनिधियों का सहवरण कर सकता है। मैं भी उन ४१ चुने हुए प्रतिनिधियों में था। लाहौर जाने का समय आया। जालंधर नगर के रेलवे स्टेशन पर उन ४१ में से बहुत कम पहुँचे; किन्तु कुछ अन्य लोग भी जा रहे थे। मन्त्री उनके समीप गया तथा उनसे पूछा कि क्या वे लोग प्रतिनिधि बनकर कांग्रेस में जाना चाहेंगे? जो लोग जाना चाहते थे उनके नाम प्रतिनिधियों की सूची में जोड़ दिये गये। इस प्रकार अधिवेशन के प्रारम्भिक दिन तक नाम जोड़े जाते रहे।

अधिवेशन के आरम्भ होने के दो दिन पूर्व ही मैं लाहौर पहुँच गया तथा दूसरे दिन सायंकाल अपने मित्रों के साथ कांग्रेस का पण्डाल देखने गया। मेरे मित्र बख्शी जैशीराम काफी परेशान थे। प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन दूसरे दिन मध्याह्न में होना था और कुर्सियाँ अभी तक पण्डाल के बाहर पड़ी थीं। अपने मित्र की परेशानी को अनुभव कर मैंने बाहर मैदान की ओर देखा तो मुझे कुछ आर्यसमाजी घूमते हुए नजर आये। मैंने उन्हें अपने समीप बुलाया। दो घण्टों के भीतर ही बैठने की ठीक-ठीक व्यवस्था कर दी गई। अब बख्शीराम जी ने एक दूसरी कठिनाई बताई। प्रतिनिधियों का पंजीकरण करना तथा उन्हें प्रवेशपत्र देने का कार्य बहुत धीमी गति से चल रहा था। मैंने इसमें भी उनकी सहायता करने का वचन दिया।

दूसरे दिन प्रात: मैं बहुत जल्दी आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं के साथ वहाँ पहुँचा और हमने वह काम आपस में बाँट लिया। उस समय हमें पता चला कि प्रत्येक मुसलमान प्रतिनिधि जिसका पंजीकरण हुआ है, धर्म-प्रचारक (वाइज़) है। जब इन्हें प्रवेशपत्र देने का समय आया तो उस मुसलमान मुखत्यार प्रचारक ने प्रवेशपत्र बाँटनेवाले सज्जन से कहा कि उन मुसलमान प्रतिनिधियों से १० रुपया प्रतिनिधि-शुल्क लिये बिना ही उन्हें टिकट दे दिये जावें। मैं उस विभाग का निरीक्षक था, अतः जब वह मामला मेरे पास आया तो मैंने बिना शुल्क प्राप्त किये प्रवेशपत्र देने से इन्कार कर दिया। ऐसा करना तभी सम्भव था, यदि इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए महामन्त्री का लिखित आदेश दिखाया जाता। अन्ततः ऐसा लिखित आदेश भी आ गया और प्रत्येक मुसलमान वाइज़ प्रतिनिधि को निःशुल्क प्रवेशपत्र दे दिये गये। कांग्रेस-शिविर में जिन्होंने भारतीय शैली का भोजन किया था, उनसे प्रति व्यक्ति १० रुपये और लिये गये। यह भोजन-व्यय भी मुसलमान प्रतिनिधियों से नहीं लिया गया, यद्यपि उन्हें सभी प्रकार के सुस्वादु व्यंजन खिलाये गये।

इस प्रकार सर सैयद अहमद के तीव्र विरोध के बावजूद कांग्रेस के प्रति मुसलमानों की सहानुभूति को उत्तेजित किया गया। ये वाइज़ प्रतिनिधि कार्यक्रम के आरम्भ में थोड़ी देर तो पण्डाल में ठहरते, उसके पश्चात् बाहर अल्पाहार के लिए लगाये गये शामियाने के नीचे बैठकर खाते-पीते हुए अवशिष्ट समय गुजारते। राजनीति के इस रूप ने भी मुझे कांग्रेस के प्रचार-कार्यक्रम से विरक्त बना दिया।

कांग्रेस का अधिवेशन अत्यन्त उत्साह के साथ शुरू हुआ। भारत के इस वृद्ध महापुरुष (दादाभाई नौरोजी) का जैसा स्वागत किया गया, वह अभूतपूर्व था। स्वागत-समिति के अध्यक्ष का भाषण लाला हरकिशनलाल द्वारा पढ़ा गया और आनन्द चार्लू एवं कतिपय अन्यों के द्वारा जब अध्यक्ष-पद के लिए सुन्दर व प्रिय भाषा में दादाभाई का नाम प्रस्तावित और अनुमोदित किया गया और जब छोटे कद वाले इस पारसी देशभक्त ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया, तो उस समय का दृश्य अवर्णनीय था। उपस्थित जनता उत्साह में पागल-सी हो गई थी।

अब अध्यक्ष ने अपना अध्यक्षीय भाषण स्पष्ट किन्तु मर्मवेधक वाणी में प्रस्तुत करना आरम्भ किया। उन्होंने श्रोताओं से अनुरोध किया कि वे एक क्षण के लिए उन्हें यह भूल जाने की आज्ञा दें कि उनकी कोई पृथक् सत्ता है; बस केवल यही याद करें कि एक भारतवासी को ब्रिटिश संसद् में प्रवेश मिला है। दादाभाई के इस कथन पर हजारों लोगों के नेत्रों से आँसू बह निकले। मेरे मन में तो भावना का तीव्र ज्वार उमड़ पड़ा और ऐसा लगा कि मुझे तो इस व्यक्ति के चरणों में झुककर उसकी पूजा करनी चाहिए, जिसने देश के लिए निःस्वार्थ भाव से सब-कुछ बलिदान कर दिया है।

इस कांग्रेस के अधिवेशन से सम्बन्धित कुछ घटनाएँ मेरी स्मृति में दृढ़तापूर्वक अंकित हो गई हैं। सर्वप्रथम स्मृति तो गोपालकृष्ण गोखले की है जो एक बहुत ही नाजुक सवाल पर बोलने के लिए खड़े हुए थे। उन्होंने पाँच मिनट में ही अपने कथन की पुष्टि में अनेक तथ्य, प्रमाण तथा आँकड़े पेश किये और जब श्रोताओं ने उनसे कहा कि वे बोलते रहें तो उन्होंने कहा कि अध्यक्ष का आदेश सर्वथा पालनीय होता है और यह कहते हुए अपने दुपट्टे को सँभालते हुए मंच से उतर गये। उसके पश्चात् सामाजिक सम्मेलन में भी गोखले जब किसी विषय पर बोलने के लिए आये तो उस समय मैं दो अन्य व्यक्तियों के साथ दादाभाई नौरोजी के निकट बैठा हुआ था। दादाभाई उस समय हम लोगों से हलके-फुलके माहौल में गपशप कर रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे तथा हमें हँसा रहे थे, किन्तु गोखले के द्वारा भाषण आरम्भ करते ही वे चुप हो गये और कहा—"मैं इस नवयुवक को पसन्द करता हूँ। लम्बे-लम्बे और उबा देने वाले भाषणों के बीच यही व्यक्ति है जो समझ-बूझ की बात कहता है। कुछ ही समय में जो अपनी बात को स्पष्ट रूप से कह देता है और अपने पीछे एक प्रभाव छोड़ जाता है। यही व्यक्ति आनेवाले युग का नेता है।"

मेरी एक अन्य धारणा गोखले के गुरु पण्डित महादेव गोविन्द रानडे विषयक है। मेरा श्री रानडे से केवल पत्र-व्यवहार के माध्यम से ही परिचय था और यह परिचय भी कन्या पाठशाला जालन्धर को महाविद्यालय का स्तर दिये जाने के प्रश्न पर हुआ था। हम लाहौर में प्रथम बार ही मिले थे। इसके एक वर्ष पूर्व ही दुर्भाग्यवश आर्यसमाज दो दलों में विभक्त हो चुका था। दोनों दलों में मतभेद का एक कारण भारत की कन्याओं को उच्च शिक्षा देने से सम्बन्धित था। मैं जिस दल से सम्बद्ध था (इस दल को उस समय महात्मा दल कहा जाता था) वह कन्याओं को उच्च शिक्षा दिलाने के पक्ष में था, जबकि दूसरा दल (जो कल्चर्ड दल कहलाता था) इस प्रस्ताव के विरुद्ध था। मैं तथा स्व० राय नारायणदास एम० ए० (दोनों दलों के प्रतिनिधि) रानडे के पास आगामी सामाजिक सम्मेलन में रखे जानेवाले प्रस्तावों का प्रारूप बनाने में उनकी सहायता के लिए गये। हम श्री रानडे से आर्यसमाज के विषय में बातचीत कर रहे थे। श्री रानडे तो ऋषि दयानन्द के प्रारम्भिक प्रशंसकों तथा अनुयायियों में प्रमुख थे। इसी समय श्री ह्यूम उनसे कांग्रेस में प्रस्तुत किये जाने वाले किसी प्रस्ताव के सम्बन्ध में विचारविमर्श करने के लिए आये। समस्या यह थी कि प्रस्ताव का ऐसा प्रारूप बनाया जाय जो सभी को सन्तुष्ट कर सके। केवल दस मिनट में ही रानडे ने वह कर दिखाया जो कांग्रेस की विषय-निर्वाचनी समिति कई घण्टों तक सम्मिलित रूप से विचार-विमर्श करने के पश्चात् भी नहीं कर सकी थी। श्री रानडे बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे। किन्तु वे प्रत्येक कांग्रेस अधिवेशन में प्रेक्षक के रूप में आते थे और राजनीतिज्ञों को प्रस्ताव बनाने में सहायता देते थे। इसी महान् मराठा नेता का उपयुक्त शिष्य गोखले था, यह तथ्य उस समय प्रकाश में आया जबकि १६०७ ई० की सूरत कांग्रेस की स्वागत-समिति प्रस्तावों को बनाने में उस समय तक लगातार उलझती ही रही, जब तक कि गोखले ही उसकी सहायता के लिए नहीं आ गये।

मुझे रानडे की अपरिमित प्रतिभा का एक अन्य अनुभव भी हुआ था। पंजाब में स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव लाया जा रहा था, आर्यसमाज की कल्चर्ड पार्टी उसे कमजोर बनाना चाहती थी। कारण यह था कि उनकी धारणा के अनुसार यदि आर्य कन्या महाविद्यालय की स्थापना होती है तो उससे लड़कों के डी० ए० वी० कॉलेज के वित्तीय साधनों में बाधा आयेगी। श्री रानडे ने मेरे तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई देवराज द्वारा तैयार कियें गये प्रस्ताव को राय मूलराज तथा नारायणदास के समक्ष इस अभिप्राय से रक्खा ताकि वे उसे अपनी धारणाओं के अनुकूल संशोधित कर दें। दो घण्टे तक की सरपच्ची के पश्चात् भी जब वे ऐसा नहीं कर पाये, तो श्री रानडे ने एक कागज लिया और उस पर प्रस्ताव के दो वैकल्पिक प्रारूप लिखे। दोनों 'राय' उपाधि-धारियों ने उनमें से एक को स्वीकार कर लिया, और मजा देखिए कि जब यह प्रस्ताव सामाजिक सम्मेलन के खुले अधिवेशन में विचारार्थ आया तो पता चला कि यह तो हम लोगों द्वारा तैयार किये गये उस मूल प्रस्ताव से कहीं अधिक उच्च स्त्री-शिक्षा का हामी है। रानडे विलक्षण मस्तिष्क के थे और मेरी राय में तो वस्तुत: एक देशभक्त राजनीतिज्ञ के रूप में भी वे महान् थे।

अन्तिम संस्मरण जिसका मैं उल्लेख करूँगा, मुझसे ही सम्बन्धित है। कांग्रेस के सम्मुख जो एक प्रस्ताव रक्खा गया था, उसमें पंजाब में चीफ कोर्ट के स्थान पर हाई कोर्ट की स्थापना की बात कही गई थी। इस अधिवेशन के अन्तिम क्षणों में इस प्रस्ताव पर विचार करने की बारी आई। इस प्रस्ताव को पेश करनेवाला जब अपना प्रारम्भिक वक्तव्य दे ही रहा था कि मुझे इस प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए कहा गया। मैं इस शर्त पर राजी हुआ कि प्रस्ताव के अनुमोदन में मैं कोई लम्बा भाषण नहीं दूंगा, कारण कि प्रस्ताव के विषय पर अधिक चिन्तन करने के लिए मुझे समय ही नहीं मिल सका था। इसपर मुझे कांग्रेस के पिता (संस्थापक) श्री एलन ओ० ह्यूम के समीप ले-जाया गया। उन्होंने मुझे प्रस्ताव के समर्थन में बोलने के लिए कहा, क्योंकि कोई अन्य व्यक्ति इसके लिए तैयार भी नहीं था। मैं इन्कार नहीं कर सका और मंच पर चला गया। प्रस्तावक ने हाई-कोर्ट और चीफकोर्ट के विधेयकों की तुलना कर ही डाली थी, किन्तु मैंने अपने कथन में जो प्रमाण प्रस्तुत किया उसी ने सारी सभा को आन्दोलित कर दिया। मैंने अपने वक्तव्य में बताया कि उच्च न्यायालय बहुत-कुछ स्वतन्त्र होते हैं, जब कि चीफ कोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के वायसराय के द्वारा की जाती है, अत: वे पूर्ण स्वतन्त्र नहीं होते। मैंने अपनी बात की पुष्टि में एक ज्वलन्त उदाहरण भी दिया कि किस प्रकार बम्बई के लघुवाद न्यायालय के एक न्याया-धीश ने पंजाब चीफ कोर्ट की एक खण्डपीठ पर आना इसीलिए अस्वीकार कर दिया क्योंकि इस पद पर आना उसे असंगत लगा था। मेरे इस व्याख्यान का आम जनता ने तो खूब स्वागत किया, किन्तु कांग्रेस आन्दोलन के आभिजात्य लोगों ने उसे इसीलिए पसन्द नहीं किया, क्योंकि वे तो पंजाब प्रान्त के अतिथि बनकर आये थे, अत: यहाँ के स्थानीय अधिकारियों को आघात पहुँचाना उन्हें उचित प्रतीत नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन

लाहौर अधिवेशन के छः वर्ष बाद तक कांग्रेस के किसी आन्दोलन से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। मुझे पक्का विश्वास हो गया कि बैठकखानों में बैठकर राजनीति की चर्चा करनेवाले गुलामी के पाशों को नहीं तोड़ सकते। मातृभूमि को स्वाधीन कराने के लिए सुदृढ़ नैतिक चरित्रवाले व्यक्तियों की आवश्यकता है किन्तु भारतवासी शारीरिक, सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से इतने गिर गये हैं कि जब तक भारतीय जनता को पुनरुज्जीवित नहीं किया जाता, तब तक कोई आशा नहीं।

इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश को दसवीं बार पढ़ा और आर्यसमाज के संस्थापक के निम्न कथन के वास्तविक अभिप्राय को सही रूप में समझा—"दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिए जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उसी का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है।"

अपने आध्यात्मिक गुरु के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए मैंने सभी धर्मों के आदिमूल सार्वभौम वैदिक धर्म के प्रचार में अपनी शक्तियों को केन्द्रित किया और प्राचीन ब्रह्मचर्य आश्रम की सरणि पर एक शिक्षण-पद्धति स्थापित करने का प्रयास किया। कुछ वर्षों के संघर्ष के पश्चात् आर्यसमाज ने गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली विषयक एक विवरण पत्रिका प्रसारित की और इसे जनप्रिय बनाने तथा इस पद्धति पर एक शिक्षण-संस्था खोलने के लिए धन एकत्रित करने का कार्य मुझे सौंपा गया।

जब मैं इसी ध्येय को लेकर देश का भ्रमण कर रहा था, दिसम्बर १८९९ ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन होना निश्चित हुआ। गुरुकुल के सन्देश को देश के विभिन्न प्रान्तों तक पहुँचाने का इसे एक अच्छा अवसर जानकर मैं उचित समय पर लखनऊ पहुँच गया। मेरे साथ लाहौर के बैरिस्टर रोशनलाल भी थे जो वहाँ प्रतिनिधि बनकर गए थे। मैं कांग्रेस-शिविर में शुल्क देकर अतिथि के रूप में रहा। प्रतिनिधि-शुल्क दस रुपये था जिसमें भोजन का व्यय भी सम्मिलित था और कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवाले उन व्यक्तियों के लिए भी भोजन तथा निवास की व्यवस्था उतनी ही राशि से कर दी जाती थीं जो प्रतिनिधि के रूप में नहीं आते थे। लाहौर कांग्रेस के मन्त्री ने मुझसे प्रतिनिधि बनने के लिए कहा, क्योंकि मैं दस रुपये तो जमा करवा ही चुका था। किन्तु मैं किसी पाखण्ड का भागी नहीं बनना चाहता था। बावजूद इसके एक प्रतिनिधि का प्रमाणपत्र लाकर मुझे दे दिया गया और तब मुझे आश्चर्य हुआ कि बिना किसी प्रार्थनापत्र पर हस्ताक्षर किये ही मुझे प्रतिनिधि का प्रमाणपत्र मिल गया है। इसी समय स्वर्गीय बाबू गंगाप्रसाद वर्मा ने मुझे देखा और उन्होंने मुझे दर्शक का एक प्रवेशपत्र लाकर दिया तथा मुझे मंच पर ले गये।

मंच पर बैठे हुए पहली चीज जो मैंने अनुभव की, वह यह थी कि १८९३ ई० के लाहौर अधिवेशन के अनुपात में यहाँ मुसलमान प्रतिनिधियों की संख्या चौगुनी थी। अधिकांश मुस्लिम प्रतिनिधि अपने साधारण वस्त्रों के ऊपर सोने, चाँदी तथा रेशम के धागों से जड़े चोगे पहने हुए थे। यह अफवाह थी कि कांग्रेस के इस तमाशे के लिए किसी धनवान् हिन्दू ने ये चोगे लाकर दिये हैं। ४३३ मुसलमान प्रतिनिधियों में से केवल ३० ही बाहर से आए थे, अवशिष्ट सभी लखनऊ नगर के थे और इनमें से अधिकांश को मुफ्त में ही भोजन और निवास की सुविधा के साथ-साथ प्रतिनिधियों का स्थान भी दे दिया गया था। सर सैयद अहमद की कांग्रेस-विरोधी लीग ने एक सार्वजनिक सभा करके मुसलमानों को विरोध में समझाया था। इसके प्रतिरोध में कांग्रेस-शिविर को रोशनियों से सुसज्जित कर दिया और अधिवेशन आरम्भ होने के पहले विज्ञापित किया गया कि इसमें निःशुल्क प्रवेश दिया जाएगा। परिणाम यह निकला कि लखनऊ के सभी चण्डूखाने खाली हो गए और लगभग आधा दर्जन सभा-मंचों से करीब तीस हजार हिन्दू-मुसलमानों को सम्बोधित किया गया। उन्हीं स्थानों से मुसलमान प्रतिनिधियों का चुनाव या मनोनयन हुआ। ये सब बातें लखनऊ कांग्रेस के संयोजकों ने एकान्त में मेरे समक्ष स्वीकार कीं।

मुसलमान प्रतिनिधियों की एक प्रदर्शनी-सी की गई। किसी प्रस्ताव का उर्दू में अनुमोदन करने के लिए मुसलमान प्रतिनिधि खड़ा होता। वह कहता है, "हाजरात ! मैं एक मुसलमान नुमायंदा हूँ।" इसपर कुछ हिन्दू खड़े होते हैं और मुसलमान प्रतिनिधियों की वाह-वाही करते हैं। उनकी यह वाह-वाही जतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्साहवर्धक थी, उसका वर्णन नहीं हो सकता। इसपर प्रतिनिधि मुसलमान कांग्रेस के विरोधियों की उल्टी-सीधी आलोचना करने लगता। जनता का इससे भरपूर मनोरंजन होता। और जब वक्ता मूल प्रस्ताव को उर्दू में पढ़े बिना ही, अथवा उसकी ओर संकेत किये बिना ही अपनी वक्तृता समाप्त करने लगता है तब कांग्रेस के मन्त्री उसे चुपचाप कहते हैं कि—वह कम-से-कम प्रस्ताव को पढ़ तो दे! इसपर मुसलमान प्रतिनिधि नाटक के स्वगत-कथन की भाँति अपनी गलती को स्वीकार तो करता, परन्तु उसका यह कथन सभी लोगों के कानों पहुँच जाता। इस प्रकार वह अटकता-अटकता प्रस्ताव का उर्दू अनुवाद पढ़ देता।

कांग्रेस अभी तक दीवानखानों की बहस तक ही सीमित थी। लोकमान्य तिलक कारागार से बाहर आ गए थे और प्रतिनिधि के रूप में लखनऊ पहुँचे थे। जब उन्होंने पण्डाल में प्रवेश किया और बम्बई के प्रतिनिधियों के बीच जाकर चुपचाप बैठने लगे तो किसी ने उन्हें पहचान लिया। अब वह व्यक्ति उठ खड़ा हुआ और लोकमान्य की जय-जयकार करने लगा। मंच पर बैठे हुए लोगों समेत सारी जनता उठ खड़ी हुई। किन्तु लगभग १०-१२ लोग जो अपने को नेता मानते थे, बैठे रहे। भारी जनसमाज ने लोकमान्य को मंच पर जाने के लिए कहा। इस पर अभिजात-वर्गीय नेताओं के चेहरे उतर गए। उन्हें भय था कि इस गर्मदल नेता की छूत उन्हें न लग जाए। संक्रमण की-सी इस स्थिति में लोकमान्य अपने स्थान से इंचमात्र भी नहीं हटे जिससे कांग्रेस के भद्र लोगों को आश्वस्तता महसूस हुई। उद्वेग की स्थिति समाप्त हो गई।

मैंने लखनऊ में अधिवेशन के अवकाश के समय केवल आधे घण्टे के लिए लोकमान्य को देखा था। इस आधे घण्टे के साक्षात्कार में उस दिवंगत देशभक्त के प्रति जो मेरी धारणा बनी है उसे ही मैंने संस्मरणों के रूप में सुरक्षित किया है। वहाँ पर एकत्रित कुर्सी की शोभा बढ़ानेवाले सभी वीरों में भारत के स्वराज्य का वही एकमात्र योद्धा था।

राजनैतिक नेताओं को प्रस्तावों की रूपरेखा बनाने में सहायता देने के लिए श्री रानडे भी वहीं थे। सामाजिक सम्मेलन के कार्यों का निर्देशन भी उन्होंने किया और इस सम्मेलन को प्रथम और अन्तिम बार 'राष्ट्रीय' कहकर पुकारा गया। प्रारम्भ से ही यह एक हिन्दू सम्मेलन था, परन्तु श्री रानडे चाहते थे कि जीवन के सभी क्षेत्रों में हिन्दू और मुसलमान एकसाथ चलें। भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन के एकमात्र मुस्लिम प्रतिनिधि बरेली के एक मुफ्ती साहिब थे। अब सम्मेलन आरम्भ हुआ। जब एक हिन्दू प्रतिनिधि ने बालविधवाओं के पुनर्विवाह के पक्ष में प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो मैंने उसका अनुमोदन किया। किन्तु एक सनातनी पण्डित ने इसका विरोध किया। अब मुफ्ती साहिब ने बोलने की आज्ञा माँगी। सम्मेलन के अध्यक्ष स्वर्गीय राय बैजनाथ ने कहा कि यह प्रस्ताव केवल

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं से सम्बन्धित है इसलिए उन्हें बोलने की आवश्यकता नहीं है। इसपर मुफ्ती साहब क्रोधित होकर बोले, "तब इसका नाम 'नैशनल' क्यों रक्खा है?" अब अध्यक्ष के लिए कुछ भी कहना बाकी नहीं बचा और उन्होंने मुफ्ती साहिब को बोलने की आज्ञा दे दी। मुफ्ती साहब का तर्क था कि हिन्दू शास्त्र पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं देते इसलिए इसके लिए आग्रह करना पाप है। इसके पश्चात् जब उन लोगों की शुद्धि का प्रश्न आया जो ईसाई या मुसलमान बन गए हैं, तो मुफ्ती साहब ने आग्रहपूर्वक कहा कि जिस आदमी ने अपने हिन्दू धर्म को त्याग दिया है उसे हिन्दू समाज में पुनः प्रविष्ट कर उसकी पवित्रता को नष्ट करने की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिए। उनके इस कथन पर रानडे तथा अन्य हिन्दू नेता तो स्तम्भित-से रह गए, किन्तु मुफ्ती साहब शायद मन-ही-मन मुस्करा रहे थे। अगले वर्ष दिसम्बर में श्री रानडे गम्भीर रूप से अस्वस्थ थे, इसलिए वे लाहौर कांग्रेस में नहीं आ सके, परन्तु इसके बाद किसी को भी 'सोशल कान्फ्रेन्स' को 'नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स' कहने का साहस नहीं हुआ।

१८९९ ई० के लखनऊ कांग्रेस में कांग्रेस के लोगों के नैतिक चारित्रिक पतन की कुछ ऐसी घटनाएँ मेरे समक्ष आईं जिनके कारण मुझे इस आन्दोलन से घृणा हो गई। गुरुकुल के प्रचार-विषयक अपने लक्ष्य में मुझे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। एक रात्रि को कांग्रेस का पण्डाल ही मुझे सौंप दिया गया। उस बैठक की अध्यक्षता सम्माननीय कश्मीरी पण्डित श्यामलाल ने की। मैंने इस सभा को सम्बोधित किया और मुझे लगा कि प्राचीन आर्य-जीवन की ब्रह्मचर्य-प्रणाली को पुनरुज्जीवित करने के लिए मैंने जो कुछ कहा, उससे राजनीतिज्ञ लोग भी प्रभावित हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

बाल-पाल-लाल

अगले वर्ष १९०० ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन दूसरी बार लाहौर में हुआ। इस संस्था के कार्यों के प्रति मेरी इतनी अधिक विरक्ति थी कि मैं अधिवेशन के समय लाहौर गया ही नहीं। मैं वहाँ तभी पहुँचा जब अधिवेशन समाप्त हो चुका था। मेरे लाहौर जाने का प्रयोजन सामाजिक सम्मेलन की बैठक में भाग लेना था। इस संस्था ने अपने नाम के आगे से 'राष्ट्रीय' शब्द को हटाकर बुद्धिमत्ता का ही काम किया था, और अब इसके द्वारा केवल हिन्दू समाज के सुधार-विषयक प्रस्ताव ही स्वीकार किये जाते थे। इस समय श्री रानडे बीमार थे, अतः इस संस्था की नौका को देखने का भार श्री गोखले पर आ पड़ा था और मुझे उनकी सहायता करने के लिए कहा गया था। कांग्रेस के इस अधिवेशन की अध्यक्षता सर (उस समय उन्हें यह उपाधि नहीं मिली थी) नारायण चन्द्रावरकर ने की थी और इसके थोड़े समय पश्चात् ही वे बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बना दिये गए थे। उस समय यह कहावत ही चल पड़ी थी कि कांग्रेस की अध्यक्षता हाई कोर्ट के न्यायाधीश पद तक पहुँचाने की एक सीढ़ी है।

लोकमान्य तिलक भी लाहौर अधिवेशन में आये थे। मैं एक बार पुनः उनसे भेंट करना और यह जानना चाहता था कि वे आर्यों की राज्य-व्यवस्था में वेदों को क्या महत्त्व देते हैं? किन्तु अपने पंजाब-प्रवास के अन्तिम दिन में वे इतने व्यस्त थे कि मैं उनसे एकान्त में बातचीत का कोई अवसर प्राप्त नहीं कर सका। जहाँ तक तिलक के व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, मैंने लखनऊ में ही अपनी धारणा बना ली थी, जो एस० वी० बापट द्वारा सम्पादित "लोकमान्य के संस्करण" में प्रकाशित हुई है। वहाँ मैंने लिखा है—"वेदों का अनुयायी होने के कारण मैं लोकमान्य से व्यक्तिशः भेंट करना चाहता था। जब सभा भोजन के लिए स्थगित हुई तो लोकमान्य वहाँ अकेले ही बैठे थे, और मैंने इस अवसर का लाभ उनसे वार्तालाप करने में उठाया। मैंने वर्णव्यवस्था-विषयक उस प्रसिद्ध वेदमन्त्र के बारे में उनसे चर्चा की और मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उनके एतद्-विषयक विचार आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द से मिलते हैं। (तिलक ने अपने इन विचारों को बाद में अपने ग्रन्थ गीता-रहस्य में उल्लिखित किया है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस आधे घण्टे में मैंने तिलक को निकट से देखा तथा उनसे बातचीत भी की। मैंने अनुभव किया कि वे सदा किसी ऐसे गम्भीर विषय पर निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं जिसमें उनकी आत्मा सर्वतोभावेन डूबी रहती है। मेरे एक नरमदली मित्र ने तिलक के बारे में एक बार मुझसे कहा था—"बौद्धिकता की दृष्टि से तिलक महान् हैं, किन्तु उनकी महत्त्वाकांक्षा भी खतरनाक है।" मैंने उन्हें एक भिन्न दृष्टिकोण से देखा और पाया कि उनकी कोई निजी आकांक्षा नहीं है। वे अपनी मातृभूमि के प्रति किये गए अन्यायों का ही चिन्तन करते हैं और अपने देश को स्वतन्त्र कराने का उनका दृढ़ निश्चय ही मुझे वास्तव में 'भयप्रद' लगा था।

अगले ६ वर्षों में मैं कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में कभी नहीं गया, किन्तु देश के राजनैतिक परिवर्तनों को सावधानीपूर्वक देख रहा था। अवसर आने पर मैं इन परिवर्तनों पर अपने साप्ताहिक पत्र सद्धर्मप्रचारक में स्वतंत्रतापूर्वक टीका-टिप्पणी भी करता था। इन्हीं स्मरणीय वर्षों में भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर दिया जिसके परिणामस्वरूप बंगालियों में उत्तेजना फैली और उससे भारत के समस्त शिक्षित नागरिक विद्युत् की-सी चेतना से भर गए। उन दिनों गरम दल का संचालन बाल, पाल और लाल की त्रिपुटी से होता था। "बाल" का अभिप्राय बालगंगाधर तिलक से था। 'पाल' नाम से विपिनचन्द्रपाल जाने जाते थे और लाला लाजपतराय 'लाल' कहलाते थे। यद्यपि राजनीति में नरम दल के पिता-तुल्य, मेरा अभिप्राय सर फीरोजशाह मेहता से है, जीवित थे, किन्तु दल के सक्रिय नेता गोपालकृष्ण गोखले ही थे। गरम और नरम दल के विवाद में मैंने श्री गोखले का समर्थन किया तथा अपने दृष्टिकोण को किसी से गोपनीय भी नहीं रक्खा। मैं राजनीतिज्ञों द्वारा ब्रिटिश नौकरशाही के खिलाफ प्रदर्शनों में विद्यार्थियों का उपयोग करने के विरुद्ध था। उस युग की राजनैतिक हलचल को देखकर ब्रह्मचर्य पर आधारित गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया था।

मई १९०७ ई० के आरम्भ में लाला लाजपतराय को देश से निष्कासित कर दिया गया। अंग्रेज नौकरशाही को खबर मिली थी कि लाला जी सरकार के विरोध में एक लाख से अधिक देहाती तथा नागरिक आन्दोलनकारियों का नेतृत्व करेंगे और उसे यह भी पता चला था कि सरदार अजीतसिंह लाला जी का दाहिना हाथ है। लाला जी को पंजाब के शिक्षित तथा विद्यार्थीवर्ग का नेता समझा जाता था। गुप्तचर विभाग ने सरकार को यही सूचना दी थी। किन्तु तथ्य इसके विपरीत ही थे। जब लाला जी को देश से निकाला गया, उस समय वे छात्रवर्ग में इतने अधिक अलोकप्रिय थे कि लाहौर की सार्वजनिक सभाओं में उनके लिए उपस्थित होना भी कठिन हो रहा था। अजीतसिंह तथा उसके साथी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके प्रभाव-क्षेत्र से निकल चुके थे तथा लाला जी को अपना प्रभाव-मण्डल पुनः बनाने में कठिनाई हो रही थी, क्योंकि देशनिकाला मिलने से कुछ पहले तक वे गुरुकुल तथा उसके संस्थापकों की घोर निन्दा करते रहे थे। किन्तु उनके निष्कासन ने ही सारी स्थिति को बदल दिया। अचानक ही लाला जी अखिल भारतीय नेता बन गए, और सबसे बड़ी बात तो यह कि उन्हें "राष्ट्रीय शहीद" की-सी ख्याति मिल गई। आश्चर्य यह है कि जब आर्यसमाज में उनके दल के लोगों ने ही उनके कामों की जिम्मेदारी लेने से इन्कार किया, तो गुरुकुल के पक्ष-धर ही उनकी निर्दोषिता को प्रमाणित करने के लिए आगे आये।

ऊपर वर्णित परिस्थितियों में नरम दल वालों ने यह सोचकर कि तिलकवादी गरम दल के केन्द्र नागपुर में कांग्रेस का अधिवेशन करना कठिन होगा, १९०७ ई० में सूरत में अधिवेशन करने का विचार किया। किन्तु नवम्बर के उत्तरार्द्ध में एक दिन प्रातः लाला जी को मांडले (बर्मा) से लाहौर उनके निवास-स्थान पर लाकर मुक्त कर दिया गया। नरम दल वालों ने निश्चय किया कि विख्यात विद्वान् तथा वकील डॉक्टर रासबिहारी घोष को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाए। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में गरम दल वाले डॉक्टर घोष के निर्वाचन का विरोध करने के लिए कृतसंकल्प थे, तथा उनके विरुद्ध लाला लाजपतराय को खड़ा करना चाहते थे। मेरी इस विवाद में रुचि नहीं थी, किन्तु आर्यसमाज के लोग इस अवसर पर वैदिक धर्म का प्रचार करने के इच्छुक थे, अतः मैं उनके निमंत्रण पर सूरत गया। मैं सूरत एक दिन विलम्ब से पहुँचा और इस प्रकार वहाँ प्रातः मेरे पहुँचने से पहले ही जूते फेंकने तथा कुर्सियाँ तोड़ने का भद्दा दृश्य समाप्त हो चुका था। लोकमान्य अपनी पूरी सेना के साथ एक बाड़ी में ठहरे हुए थे। नेता और उनके अनुयायी सभी धरती पर सोते और एकसाथ भोजन करते। वे एक-दूसरे के साथ प्रगाढ़ बन्धन में बँधे हुए थे। यह पवित्रतावादियों (Puritan) का एक मजबूत संगठन था। लाला जी वहाँ नहीं थे और वे दोनों दलों के बीच रहकर उनको जोड़ने के लिए सीमेंट का काम कर रहे थे। मैं नरमदलियों के शिविर में गया तो मैंने देखा कि वे लगभग एक दर्जन बंगलों में ठहरे हैं और प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा उन्हें उपलब्ध है। मैंने उसी समय अपने मित्रों और सहायकों से कह दिया था कि मातृभूमि का भविष्य उस दल की मुट्ठी में है जो आज गरमदली या अतिवादी कहे जाते हैं।

१९०९ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन तीसरी बार लाहौर में आमंत्रित किया गया। लाला हरकिशनलाल स्वागत-समिति के अध्यक्ष नियत हुए। पण्डित मदनमोहन मालवीय को इसकी अध्यक्षता करनी थी। लोगों की धारणा थी कि यह अधिवेशन नरमदलियों द्वारा ही प्रभावित रहेगा और वे यह भी सोचते थे कि सारी कार्यवाही पूर्णतया नियंत्रित ढंग से होगी। किन्तु लाला हरकिशनलाल का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषण किसी भी तरह नरम नहीं था तथा श्री गोखले ने उस अवसर पर दक्षिण अफ्रीका में बसे उन भारतीयों के लिए जो श्री गांधी को अपना नेता मानते थे, जो कुछ कहा, वह न केवल उच्चकोटि की वक्तृता का ही नमूना था, अपितु भारत के देशभक्तों के लिए अपनी आत्मा को टटोलनेवाली एक अपील भी थी। मैं उस समय पटियाला राज्य द्वारा वहाँ के आर्यसमाजियों पर दायर किये गए मुकद्दमे के कारण हवालात में रक्खे गए सैंकड़ों आर्यसमाजियों के बचाव में लगा हुआ था। यह अभियोग पंजाब सरकार की विशेष प्रेरणा और उत्तेजना से दायर किया गया था। इसी प्रसंग में मुझे उन दिनों लाहौर जाना पड़ा था।

मैं कांग्रेस की बैठक में एक दर्शक के रूप में सम्मिलित हुआ। इस अवसर पर दिये गए भाषण प्रभावशाली तथा देशभक्तिपूर्ण थे। बाबू भूपेन्द्रनाथ वसु, बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा सर आशुतोष चौधरी एवं अन्यों ने श्रोताओं को उत्साह से भर दिया। मैंने लाहौर के विख्यात वकील सर प्रतुलचन्द्र चटर्जी को पटियाला के तथाकथित अभियुक्तों का बचाव करने के लिए कहा। मैंने उन्हें प्रत्येक पेशी का मेहनताना ५०० रु० देने का भी वचन दिया। उन्होंने मेरे प्रस्ताव पर गौर करने का आश्वासन तो दिया किन्तु श्रीमती चटर्जी के विरोध के कारण अपना मन बनाने में असमर्थ रहे। कुछ अन्य आर्यसमाजी वकीलों से भी अनुरोध किया गया, किन्तु पटियाला के मामले को स्वीकार न करने में प्रत्येक के पास कोई-न-कोई बहाना था। मैंने बाबू सुरेन्द्र बनर्जी के माध्यम से सर ए० चौधरी से प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने केवल पाँच दिनों के लिए पेशी पर आना स्वीकार किया। उनकी शर्त थी कि प्रत्येक पेशी पर उन्हें १२५० रुपये दिये जायें और यात्रा के दिन भी उक्त पाँच दिनों में ही गिने जाएँ। केवल जालंधर के राय बद्रीदास एम० ए० तथा लाहौर के लाला द्वारकादास एम० ए० ही थे जिन्होंने हमें एक-एक पेशी पर उपस्थित होकर मदद की। यह तथ्य मैंने इसलिए प्रस्तुत किया है ताकि लोग यह जान लें कि यद्यपि आर्यसमाज पर हमला करने के पीछे ब्रिटिश नौकरशाही का ही हाथ था किन्तु उन लोगों को, जिनका एकमात्र अपराध यही था कि उन्होंने सरकारी अधिकारियों की चौखट पर कभी सिर नहीं झुकाया, बचाने के लिए देशभक्ति की भावना ने इन वकीलों को थोड़ा भी त्याग करने की प्रेरणा नहीं दी।

कांग्रेस का अगला अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ और इसकी अध्यक्षता के लिए इंग्लैण्ड से सर विलियम वेडरवर्न को आमंत्रित किया गया। आर्यसमाज ने इस अवसर पर वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए शानदार तैयारियाँ की थीं, क्योंकि इस अवसर पर सरकार की ओर से एक अपूर्व प्रदर्शनी भी आयोजित की जा रही थी और आशा थी कि अनेक लोग इसे देखने के लिए आयेंगे। मुझे वहाँ के आर्यसमाजियों की ओर से निमंत्रण मिला था। उधर श्री गोखले ने भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे इलाहाबाद जाकर सर विलियम वेडरबर्न से मिलने के लिए कहा था। इस प्रकार मुझे कांग्रेस अधिवेशन में एक दर्शक के रूप में सम्मिलित होने का अच्छा अवसर फिर मिल गया। तथापि सर डब्ल्यू० वेडरबर्न की उपस्थिति भी कांग्रेस के जीर्ण अंगों में शक्ति का संचार नहीं कर सकी।

हिन्दू व मुसलमानों के बीच तालमेल स्थापित करने तथा एकता लाने के लिए एक बोर्ड का गठन किया गया। सर विलियम के विशेष अनुरोध पर मैंने इसकी कार्यवाही में भाग लिया। इस बोर्ड की अन्तिम बैठक महाराजा दरभंगा तथा सर सुल्तान मुहम्मद (आगा खाँ) की सम्मिलित अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। प्रत्येक व्यक्ति ने इस बैठक से बहुत-सी आशाएँ लगाईं, किन्तु उनके सम्मिलित प्रयत्न भी निष्फल रहे। हिन्दी तथा उर्दू के प्रश्न पर गरमागरम बहस हुई। एक मुसलमान सज्जन ने कहा कि जब तक उर्दू को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक हिन्दुओं से कोई समझौता नहीं हो सकता।

सामाजिक सम्मेलन में उन तथाकथित अछूतों का प्रश्न आया जिनकी आगामी जनगणना में हिन्दुओं के अन्तर्गत गणना की जानी थी। पुराणपंथी विचारों के हिन्दू अब अपने आलस्य और प्रमाद से मुक्त हो चुके थे तथा इन अछूतों को हिन्दू समाज का अविभाज्य अंग मानने के लिए तैयार थे। मुझे भी बोलने के लिए कहा गया। मैंने हिन्दुओं से स्पष्ट तौर पर कहा कि उन्हें तो बहुत पहले ही जागृत हो जाना चाहिए था। मैंने उन्हें यह भी समझाने का प्रयत्न किया कि इन तथाकथित अछूतों को सभी सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकार दिये जाने चाहिएँ क्योंकि यह उनका न्याययुक्त अधिकार है, तथा यह केवल अपने राजनैतिक महत्त्व को बढ़ाने के लिए ही नहीं करना है।

इसके पश्चात् मैंने ६ वर्षों की दीर्घ अवधि तक कांग्रेस के कार्यों के बारे में कोई रुचि नहीं ली। इस बीच मैंने एक प्रेस-प्रतिनिधि के रूप में सम्राट् जॉर्ज पंचम के सिंहासनारोहण समारोह में भाग लिया। सर (अब लॉर्ड) जेम्स मेस्टन तीन बार गुरुकुल में आये, लॉर्ड हार्डिंग ने गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली पर विचार-विमर्श करने के लिए मुझे तीन बार साक्षात्कार का अवसर दिया तथा अक्टूबर १९१६ ई० के अन्त में लॉर्ड चैम्सफोर्ड ने भी गुरुकुल की यात्रा की। महात्मा गांधी भी अप्रैल १९१५ ई० में गुरुकुल में आये। यहाँ वे फोनिक्स के गुरुकुल के लड़कों को लौटा लेने के लिए आये थे जो गुरुकुल में अपने आचार्य, महात्मा गांधी की प्रतीक्षा करते हुए कुछ महीनों तक रहे थे।

दिसम्बर १९१६ ई० में सम्पन्न हुआ कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन स्मरणीय था। यहाँ पर ही गरम और नरम दल के लोगों के बीच समझौता हो सका। आदरणीय बाबू अम्बिकाचरण मजूमदार ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की। यहाँ उपस्थिति अभूतपूर्व थी। प्रसिद्ध मुसलमान नेता भी इसमें उपस्थित थे तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विख्यात हिन्दू-मुस्लिम समझौता भी यहीं सम्पन्न हुआ। लोगों का उत्साह चरम सीमा पर था। ऐसा प्रतीत होता था कि राजनैतिक भारत ने अपनी आत्मा को प्राप्त कर लिया है। एक-एक करके नेता लोग मंच पर आते और उनके प्रत्येक वाक्य पर अपार हर्षध्वनि होती। सुरेन्द्र बाबू द्वारा बंगाल के नवनियुक्त गवर्नर की आलोचना, श्रीमती ऐनी बेसेण्ट द्वारा अंग्रेजों को अनुभूतिहीन कहा जाना, साधु मजहरुलहक द्वारा मुसलमानों से सीधी-सादी अपील, राजा महमूदाबाद के देशभक्तिपूर्ण उद्‌गार—इन सभी को लोगों ने अत्यन्त उत्सुकता के साथ सुना। अन्ततः लोकमान्य तिलक अपनी साधारण धोती तथा मराठा जूते पहने उठे। लोगों ने उनका अभिनन्दन किया और उसके पश्चात् जनता में शान्ति छा गई। उनके मुख से अति सरल वाक्य स्वाभाविक रूप में निकलने लगे तथा उनके द्वारा उच्चरित प्रत्येक शब्द को हजारों की संख्या में उपस्थित लोगों ने शान्तिपूर्वक ग्रहण किया। अन्य बातों के अलावा उन्होंने कहा—"ब्रिटिश लोग हमें कहते हैं कि हम लोग, जो आर्यों के वंशज हैं, इस धरती के मूल निवासी नहीं हैं; हमने इस देश को आदिवासियों से प्राप्त किया है। मुसलमानों ने इसे आर्यों से छीना और अंग्रेजों ने मुसलमानों को जीतकर इसपर अधिकार किया। ठीक है, मैं उनकी इस बात से सहमत हूँ और अंग्रेजों से कहता हूँ कि वे अपना बोरिया-बिस्तर बाँधें और इस देश का अधिकार भीलों, गोंड़ों तथा द्रविड़ों आदि को सौंप दें। हम प्रसन्नतापूर्वक इस धरती के इन मालिकों की सेवा करेंगे।" इसपर लोग खूब हँसे तथा हर्ष मनाया। परन्तु आगे चलकर अपने कथन की व्याख्या करते हुए जब उन्होंने कहा कि **"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा"** तो सारा पण्डाल एक-सी हर्षध्वनि से गूंज उठा। इस समय उत्साह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया और सारा पण्डाल उससे प्रभावित हुआ।

कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में भी मैं एक दर्शक के रूप में ही सम्मिलित हुआ था, किन्तु पर्दे के पीछे रहकर मुझे उस समझौता-वार्ता में भी भाग लेना पड़ा, जो वहाँ हुई थी। इस नये हिन्दू-मुस्लिम समझौते पर मेरी उपस्थिति में ही गुप्त बातचीत हुई थी। पण्डित मदनमोहन मालवीय और सी० वाई० चिन्तामणि दोनों ही इस समझौते के विरुद्ध थे। वे साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व दिये जाने तथा साम्प्रदायिक चुनाव पर सहमत नहीं हो सके थे। अनौपचारिक वार्तालाप में मैं भी उनके विचारों से सहमत था। दूसरा विषय जिससे मेरा थोड़ा सम्बन्ध था, वह मेस्टन-मेरिस-कर्टिस विज्ञप्ति थी जिसमें सम्भावित सुधारों के आधार पर द्वैधशासन की सिफारिश की गई थी। लॉर्ड मेस्टन ने मुझे अपने निवास पर विशेष रूप से आमन्त्रित किया तथा श्री कर्टिस के विचार सुनने के लिए कहा, जो इस योजना के समर्थक थे। मैंने एक घण्टे से अधिक समय तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके विचार धैर्यपूर्वक सुने तथा अगले दिन महात्मा गांधी से उनकी भेंट कराने का वादा किया। मैंने अपना वचन पूरा किया और उन्हें महात्मा गांधी के समक्ष अपनी बात रखने का पूरा अवसर दिया। किन्तु इसी बीच दक्षिण अफ्रीका में ख्यातिप्राप्त श्री पोलक वहाँ आ गये और इस प्रकार श्री कर्टिस का काम अधूरा रह गया।

लॉर्ड मेस्टन ने मुझे श्री कर्टिस की सहायता करने के लिए कहा था, कारण कि उन्होंने मेरे आग्रह पर ही कांग्रेस अधिवेशन में आना मान लिया था जहाँ कि उनकी इस विज्ञप्ति की कटु आलोचना हुई थी। यहाँ के चरम उत्साह को देखते हुए भी मैं लखनऊ कांग्रेस की कार्यवाहियों के प्रति थोड़ा भी आकर्षित नहीं हुआ तथा यह मानता रहा कि जिस काम में मैं लगा हुआ हूँ वही मातृभूमि की मुक्ति का एकमात्र उपाय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

रोटी के बदले पत्थर

१९१६ ई० में श्रीमती (अब डॉक्टर) ऐनी बेसेण्ट कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए चुनी गईं। उन्होंने तिलक और गोखले के बीच समझौता कराने का प्रयास किया था तथा अपनी होमरूल लीग की स्थापना की थी। वह उन दिनों अत्यन्त लोकप्रिय थीं। थियोसोफिकल सोसाइटी से सम्बन्धित उनकी खब्तीभरी बातों को लोग भूल चुके थे तथा उस समय तो भारत के सभी राजनीतिज्ञ उनकी मुट्ठी में ही थे। इसी समय उन्हें सैनिटेरियम में दाखिल कराया गया तथा लॉर्ड पेंटलैण्ड की देखरेख में वे वहाँ रहीं। गोरी नौकरशाही के खिलाफ उस समय आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था तथा भारत का राजनीतिज्ञ-समुदाय इस तैयारी में था कि वह अपने शत्रुओं को उन्हीं के द्वारा बिछाई गई शतरंज की चाल में कैसे पराजित करे। मैंने अपने साप्ताहिक पत्र में कांग्रेस को परामर्श दिया था कि उसका काम बिना किसी बाधा के चलते रहना चाहिए। मैंने श्रीमती बेसेण्ट से भी कहा कि वे अपना अध्यक्षीय भाषण लिखें तथा कुर्सी पर उनका चित्र रख दिया जाये। तत्पश्चात् उनका भाषण किसी दूसरे के द्वारा पढ़ा जावे और उसके बाद अन्य प्रस्ताव स्वीकार किये जायें। अन्य पत्रों ने भी मेरे परामर्श को स्वीकार किया, किन्तु उसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका, क्योंकि ऐसा किये जाने से पूर्व ही श्रीमती बेसेण्ट को मुक्त कर दिया गया।

१९१८ ई० में दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन सम्पन्न होने के पूर्व ही श्री मॉण्टेग्यू भारत आये और उन्होंने देश को स्वायत्त शासन की ओर ले चलने वाले सुधारों के बारे में भारतीय नेताओं से चर्चा आरम्भ की। यह ठीक समय पर उठाया जानेवाला एक सही कदम था, क्योंकि भारत के राजनीतिज्ञों ने ब्रिटिश सरकार की उस समय सहायता की थी जब वह जर्मनी के समक्ष वाणिज्य तथा आर्थिक क्षेत्रों में अपने सर्वोच्च स्थान को खो बैठने के भय से भयभीत था। प्रत्येक नेता इसी आशा को लिये बैठा था कि उसे भी सलाह के लिए बुलाया जायगा। किन्तु मैंने अपने परिचित नेताओं को यही परामर्श दिया था कि यदि कोई गोलमेज सम्मेलन बुलाया भी जाये तो वे अपनी विस्तृत राय न दें। मैंने जो कुछ उन्हें लिखा, उसका सार इस प्रकार था—अंग्रेज लोग जन्मजात कूटनीतिज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उनकी यह कूटनीतिज्ञता गत एक हजार वर्षों से पृथिवी के दोनों गोलार्द्धों को प्रभावित किये हुए है। भारत का स्वच्छहृदय राजनीतिज्ञ उनके समक्ष किसी भी गोलमेज सम्मेलन में टिक नहीं सकता। अतः मैं आपको परामर्श देता हूँ कि आप लोग श्री मॉण्टेग्यू से पृथक् रूप से न मिलें। अच्छा तो यह होगा कि आप लोग पहले परस्पर मिलकर विचार-विमर्श करें तथा अपनी सम्मिलित माँगें उनके समक्ष रक्खें और उनसे कहें कि वे भारत के करदाता पर पड़े बोझ को कम करने के लिए उचित कदम उठावें।

मेरा यह परामर्श बहरे कानों में पड़ा, और यह उचित भी था क्योंकि राजनैतिक नेता किसी ऐसे व्यक्ति के परामर्श की ओर ध्यान ही क्यों देने लगे जो धार्मिक भावना से ग्रस्त था तथा उनके क्षेत्र के बाहर का भी था। श्री मॉण्टेग्यू के निजी सचिव श्री किश मुझे हरिद्वार में मिले। उन्हीं के एक मित्र श्री सी० हॉबर्ट ने, जो गुरुकुल के प्रशंसक तथा रुड़की में जाइंट मजिस्ट्रेट थे, उनको मुझसे मिलाया। हमने निकट भविष्य में किये जानेवाले सुधारों पर दिलचस्प बातचीत की। उन्होंने श्री मॉण्टेग्यू के समक्ष उपस्थित कठिनाई की चर्चा की तथा मैंने उसपर विजय प्राप्त करने के उपाय बताये। उसने मुझसे पूछा कि उन लोगों को कानून बनाने के अधिकार कैसे दिये जा सकते हैं जो अब तक कानूनों का परिपालन करना भी नहीं जानते? मैंने उत्तर में कहा कि यदि वायसराय की कार्यकारिणी के सभी सदस्य विधायिका सभाओं द्वारा चुने जायें तथा उस संस्था के प्रति अपना दायित्व समझें तो परस्पर के हितों में कोई वास्तविक टकराव नहीं होगा। मैंने श्री किश को यह भी कहा कि वे श्री मॉण्टेग्यू को महात्मा गांधी से मिलने के लिए प्रेरित करें। मैंने बाद में सुना कि मि० मॉण्टेग्यू महात्मा जी से मिले भी थे, किन्तु अपेक्षित सुधारों की व्यावहारिकता के सम्बन्ध में कोई राय देने के बजाय महात्मा गांधी ने सार रूप में उनसे कहा था—"मेरा देश भयंकर गरीब है और आपका प्रशासन अत्यधिक खर्चीला है। यदि महायुद्ध में भारत द्वारा की गई सहायता का आप कोई इनाम देना चाहते हैं तो करों का बोझ कम कर दें।" यदि इस अफवाह में कोई सचाई है तो यह कहने से कौन इन्कार करेगा कि महात्मा गांधी ही अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने वस्तुस्थिति को समझा था और एक चतुर राजनीतिज्ञ की-सी सलाह दी थी।

ऊपर वर्णित परिस्थितियों में दिसम्बर १९१८ ई० के अन्तिम सप्ताह में दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें सभी दलों के लोग अपनी पूर्ण ताकत के साथ एकत्र हुए—नरमदली, उग्रपंथी, होमरूलवाले। यह राय ठुकरा दी गई कि अकेले कांग्रेस को ही अपना प्रतिनिधि-मण्डल इंग्लैण्ड भेजना चाहिए। प्रत्येक दल ने अपने-अपने प्रतिनिधि इंग्लैण्ड भेजे। मुझे इनमें कतई दिलचस्पी नहीं थी। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कांग्रेस की दूसरी बार अध्यक्षता की और हकीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजमल खाँ स्वागत-समिति के अध्यक्ष बने। मैं तो कांग्रेस में केवल एक दिन के लिए, और वह भी दर्शक के रूप में सम्मिलित हुआ और उसमें जो कुछ देखा उसने मुझे बाद में भी इससे दूर ही रक्खा। मैंने पंजाब के दो नवयुवक उग्रपंथियों को अपने हेत्वाभासपूर्ण भाषणों तथा तर्कों के द्वारा अपना प्रभाव जमाते देखा। मैं उनके व्यक्तिगत चरित्र को जानता था और कुछ समय बाद जब वे मार्शल लॉ की पकड़ में आकर जेल में डाल दिये गये तो उन्होंने अपने-आपको कारागार से मुक्त कराने में निम्न से भी निम्न कोटि की तरकीब को अपनाने में संकोच नहीं किया।

अन्ततः कांग्रेस अधिवेशन भी समाप्त हुआ और इसके व्यवस्थापकों की सभी कार्यप्रवृत्तियों को भुलाकर मैंने अपने संन्यास आश्रम ग्रहण करने के दो वर्ष पूर्व निश्चित किये गये साहित्यिक कार्यों को पूरा करने में मन लगाया। किन्तु कहावत है—मनुष्य योजना बनाता है, किन्तु उसका क्रियान्वयन तो ईश्वराधीन होता है।

वायसराय की विधायिका सभा के सम्मुख रॉलेट बिलों का मसौदा आ चुका था और भारतवासी इसे देखकर भौंचक्के रह गये थे। जहाँ वे आशा करते थे कि उन्हें सुस्वादु भोज्य पदार्थ मिलेंगे, वहाँ उन्हें खाने के लिए पत्थर परोसे जा रहे थे। इसके कारण जो आन्दोलन की-सी स्थिति उत्पन्न हो रही थी, वह व्यापक तो थी ही, गम्भीर भी उतना ही थी। मेरे संरक्षण में 'विजय' नामक एक हिन्दी दैनिक निकाला गया जिसका सम्पादन गुरुकुल के एक स्नातक प्रोफेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति करते थे। इस पत्र ने न केवल दिल्ली की जनता में, अपितु सम्पूर्ण संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, पंजाब के समीपवर्ती जिलों, राजस्थान तथा बिहार में भी जागृति पैदा कर दी। इस पत्र की हजारों प्रतियाँ रोज प्रकाशित होतीं किन्तु लोगों की माँग खत्म नहीं हो रही थी। इसी पत्र ने तुर्की के पक्ष में लिखा और हिन्दुओं को प्रेरित किया कि वे अपने मुसलमान भाइयों के कार्य में उनकी सहायता करें। यदि सरकारी खबर को सच समझा जाय तो लॉर्ड चैम्सफोर्ड ने श्री मॉण्टेग्यू से अपने पत्र-व्यवहार में (मेरे विरुद्ध) जो लिखा था उसका एक कारण यह भी बताया गया कि इस उग्र हिन्दी पत्र का सम्पादन मेरा पुत्र कर रहा है, जिसने अधिकारीवर्ग की नाक में दम कर रखा है।

वायसराय की कौंसिल के उस साल के अधिवेशन में मुख्यतया रॉलेट बिलों पर ही विचार हुआ। लगभग सभी भारतीय सदस्यों ने बिलों का विरोध करने में सम्मिलित मोर्चा बनाया। श्री श्रीनिवास शास्त्री ने इसपर एक शानदार भाषण दिया। उनकी युक्तियाँ अकाट्य थीं। प्रत्येक देशभक्त सदस्य उत्साह और तर्कपूर्ण ढंग से बोला, किन्तु श्री शास्त्री की वक्तृता तो मुझे सर्वाधिक सशक्त लगी थी। सरकार अपनी जिद पर अड़ी रही और एक इंचभर विचलित नहीं हुई। पण्डित मदनमोहन मालवीय मेरे पास यह सन्देश लेकर आये कि यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्ततः सरकार की ओर से अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं होती है तो सभी सदस्य सदन से उठकर चले जायेंगे। किन्तु श्री शास्त्री भी ऐसा करेंगे, इसका उन्हें विश्वास नहीं है। मुझे कहा गया कि मैं इस प्रसंग में श्री शास्त्री से मिलूँ क्योंकि वे जानते थे कि स्व० गोपालकृष्ण गोखले से मेरे सम्बन्धों के कारण मेरा श्री शास्त्री पर भी कुछ प्रभाव है। मैं मेटकाफ हाउस में उनसे मिलने गया। मेरे बैठते ही श्री शास्त्री ने मुझे कहा—"आपने अपने महात्मा गांधी की नई सनक को देखा है? कृपया इसे पढ़िये। मैं इसके विरोध में अपना प्रतिवाद प्रकाशित कराऊँगा।" उनके यही शब्द मेरी स्मृति में दृढ़तापूर्वक सुरक्षित हैं।

'लीडर' के जिस अंक में महात्मा गांधी का सत्याग्रह-विषयक बयान छपा था, वह मुझे दे दिया गया। उसका प्राक्वचन पढ़ते ही मैंने कहा, "यह तो मानवाधिकारों का प्रथम सिद्धान्त है। मैं स्वयं इसपर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार हूँ। क्या गांधी जी ने अपना यह घोषणापत्र प्रकाशित करने से पहले आप लोगों से परामर्श नहीं किया था?" इसके उत्तर में कहा गया कि न केवल गांधी जी ने अपने घोषणापत्र की प्रतियाँ वायसराय और उसकी कौंसिल के सदस्यों को ही भेजीं, अपितु उनसे यह भी कहा था कि यदि वे कहीं गलती पर हों तो उन्हें आश्वस्त किया जाय। वे अपनी गलती को सुधारने के लिए तैयार हैं। मैंने शास्त्री जी से कहा कि एक न्यायोचित कार्य में वे बाधक न बनें और यह भी कहा कि आप एक ऐसी योजना का विरोध करने के लिए अपने निर्धारित पथ से क्यों हटते हैं जिसकी जिम्मेवारी आपकी नहीं है? यदि आप गांधी जी के विचारों से सहमत नहीं हैं, तो इस आन्दोलन में सम्मिलित न हों। शास्त्री का उत्तर था कि गांधी के इस हुक्मनामे के खिलाफ वे अपना प्रतिवाद प्रकाशित करायेंगे और मेरा उन्हें प्रत्युत्तर यही था कि मैं महात्मा गांधी को तार द्वारा तुरन्त यह सूचित कर दूंगा कि रॉलेट बिलों के विरोध में सत्याग्रह करने की प्रतिज्ञा पर मैंने हस्ताक्षर कर दिये हैं।

जब मैं अपने आश्रम में लौटकर आया और दैनिक 'लीडर' का अंक खोला तो मैंने उसमें शास्त्रीजी द्वारा लिखा महात्मा गांधी के घोषणापत्र का प्रतिवाद छपा पाया। मैंने उसी समय महात्मा गांधी को निम्न तार भेजा—"अभी मैंने सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किये हैं। धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने से प्रसन्नता है।" मेरा तार तो सम्भवतः गांधीजी तक पहुँचने के मार्ग में ही था और उधर वे स्वयं दिल्ली की ओर आ रहे थे। दूसरे दिन महात्मा गांधी दिल्ली पहुँचे और सेंट स्टीफन कॉलेज के प्राचार्य रुद्र के यहाँ ठहरे। दिल्ली में किसी अन्य व्यक्ति के यहाँ न ठहरकर वे श्री रुद्र के यहाँ ही क्यों ठहरे, इसका उत्तर इस पत्र से मिल जाएगा, जो उन्होंने मुझे लिखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोनिक्स, नैटाल
२१ अक्टूबर १९१४

प्रिय महात्मा जी,

श्री एण्ड्रज ने आपके नाम तथा आपके कार्य से मुझे परिचित कराया है। मैं सोचता हूँ कि मैं किसी अपरिचित को यह पत्र नहीं लिख रहा हूँ। अतः मैं आशा करता हूँ कि मैं आपको जिस शब्द से सम्बोधित कर रहा हूँ उसके प्रयोग के लिए मुझे क्षमा करेंगे, क्योंकि आपके तथा आपके कार्य के बारे में चर्चा करते समय मैं तथा श्री एण्ड्रज इसी सम्बोधन का प्रयोग करते हैं। श्री एण्ड्रज ने मुझे यह भी बताया है कि आप श्री रुद्र तथा गुरुदेव ने उन्हें किस प्रकार प्रभावित किया है। उन्होंने मुझे आपके शिष्यों द्वारा दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहियों के लिए किये गये सहायता-कार्य के विषय में भी बताया तथा उन्होंने गुरुकुल का ऐसा शब्द-चित्र उपस्थित किया जिसके परिणामस्वरूप यह पत्र लिखते समय मैं ऐसा अनुभव करता हूँ मानो मैं स्वयं गुरुकुल में ही पहुँच गया हूँ। निश्चय ही उन्होंने स्वयं के द्वारा वर्णित उन तीन स्थानों को देखने के लिए मुझे अधर्यवान् बना दिया है तथा इन तीन स्थानों के मुखिया, भारत के इन तीन श्रेष्ठ पुत्रों के प्रति अपना आदर प्रकट करने में भी मेरे धैर्य को समाप्त कर दिया है।

मैं हूँ आपका
मोहनदास क० गांधी

उपर्युक्त पत्र के कुछ सन्दर्भ व्याख्या चाहते हैं। १९१४ ई० में गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुनः चलाया था। महात्मा गांधी ने इन अवज्ञाकारियों की सहायता के लिए कुछ लाख रुपया एकत्र करने की अपील की थी। किन्तु उसका कुछ भी परिणाम नहीं निकल रहा था। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने एक महीने तक अपना घी और दूध बन्द कर तथा तीन दिनों की छुट्टियों में हरिद्वार बाँध पर साधारण मजदूरों की भाँति काम करके लगभग १५०० रुपये एकत्र किये थे। यह राशि श्री गोखले को तार द्वारा भेजी गई थी और उन्हें यह सन्देश तब मिला जब वे निराशा की सीमा तक पहुँच गये थे। मेरे शिष्यों के बारे में लिखते समय गांधी जी ने इसी बात की ओर संकेत किया था। गुरुदेव से उनका अभिप्राय विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से था। महात्मा जी से प्राप्त यह प्रथम पत्र था और जब अप्रैल १९१५ ई० में वे गुरुकुल में आये तो मैंने इसके सम्बन्ध में उन्हें उलाहना दिया। कारण यह था कि मैंने तो इस पत्र का उत्तर हिन्दी में ही दिया था और इसमें यह भी लिख दिया था कि जो व्यक्ति हिन्दी को अपने देश की राष्ट्रभाषा बनाना चाहता है, उसे अपने देशवासी से अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार करने का कोई अधिकार नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६

धार्मिक युद्ध

सत्याग्रह आन्दोलन का सम्पूर्ण संविधान पढ़े बिना ही मैं सत्याग्रह सेना में भर्ती हो गया। बम्बई में उस समिति का गठन किया गया जिसको यह तय करने का काम सौंपा गया था कि किन-किन अंग्रेजी कानूनों की किस प्रकार अवहेलना करनी है। एक प्रकार से सारे आन्दोलन का केन्द्रीकरण कर दिया गया था। किन्तु मेरे विचार से कानूनों की अवहेलना को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए स्थानीय स्तर पर स्वतन्त्रता दिया जाना आवश्यक था। मैंने महात्मा जी से कार्य की योजना-विषयक उनके सुझाव जानने चाहे। उन्होंने मुझे बताया कि प्रारम्भ में पुलिस को सूचना देकर जब्तशुदा साहित्य को बेचा जायगा। मेरा विचार था कि ऐसा करने पर चतुर नौकरशाही हमपर हँसेगी और मैंने अपने भी सुझाव उनके समक्ष रक्खे। मेरा प्रथम सुझाव पंचायत अदालतें स्थापित करने का था, जिससे कि ब्रिटिश न्यायालयों का परोक्ष रूप में बहिष्कार किया जा सके। मेरा दूसरा सुझाव यह था कि अक्टूबर १९१९ ई० तक, जब कि खरीफ की फसल का लगान दिया जाना था, दस ऐसे जिले तैयार किये जाते जहाँ जमीन का लगान तथा अन्य कर देने से लोग इन्कार कर दें। मैंने पंजाब में ऐसे पाँच जिलों को इस कार्य के लिए तैयार करने का वचन दिया, जहाँ हिन्दू जाटों का बहुमत था। मैंने महात्मा जी से निवेदन किया कि वे गुजरात में भी पाँच ऐसे जिले तैयार करें क्योंकि खेड़ा जिला सत्याग्रह तथा अहमदाबाद की मिलों के सत्याग्रह के कारण वहाँ महात्मा गांधी अपने प्रभाव के कारण ऐसा कर सकते थे। किन्तु महात्मा जी ने मुस्कराकर कहा—"भाई साहब, आप यह जान जायेंगे कि मैं सत्याग्रह के काम में अत्यन्त निपुण हूँ। मैं अपने काम को भलीभाँति जानता हूँ।" महात्मा जी के इस कथन को चुनौती देना निरर्थक ही था और मैंने उनके निर्णय के समक्ष अपना सिर झुका लिया।

एक अन्य कठिनाई भी थी। बम्बई की मुख्य सत्याग्रह समिति की अनुमति के बिना कोई स्थानीय सत्याग्रह समिति अपना कार्य आरम्भ नहीं कर सकती थी। अनुशासन-पालन की दृष्टि से महात्मा जी के विचारानुसार यह अत्यन्त आवश्यक भी था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली में एक सत्याग्रह समिति बनाई गई, जिसके अध्यक्ष डॉक्टर एम०ए० अन्सारी थे। डॉक्टर अब्दुर्रहमान तथा इन्द्र इसके मंत्री बने और लाला शंकरलाल को कोषाध्यक्ष चुना गया। सत्याग्रह के नवीन अनुयायियों की महात्मा गांधी से बहुत रोचक तथा लाभप्रद बातचीत हुई। महात्मा जी जब हिन्दू और मुसलमानों को समान रूप से सत्याग्रह के सूत्र समझा रहे थे, एक विख्यात नेता ने उनसे पूछा—"महात्मा जी, आप एक मुसलमान से सत्याग्रही का आचरण करने की आशा कैसे कर सकते हैं जो नित्य आधा सेर गोश्त खाता है? एक मुसलमान भेड़ के मेमने की भाँति पिटते रहना पसन्द नहीं करेगा और अन्त में वह दुराग्रही बने बिना नहीं रहेगा।" महात्मा जी हँस पड़े और बोले—"भाई, धीरे-धीरे ये लोग भी ठीक हो जायेंगे।"

७ मार्च १६१६ को एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई। इसमें महात्मा जी का भाषण श्री महादेव देसाई के द्वारा पढ़ा गया। इसके पश्चात् महात्मा जी वायसराय तथा गृह-सचिव से मिलने के लिए चले गये जिसके लिए कार्यक्रम पहले ही निश्चित किया जा चुका था। महात्मा जी अलीबन्धुओं को मुक्त करने के मामले में मध्यस्थता करने के लिए गये थे, जो उस समय छिन्दवाड़ा में नजरबन्द थे। एक-चौथाई शताब्दी से कुछ अधिक समय के बाद यह पहला ही अवसर था कि मैं एक राजनैतिक मसले पर बोलने के लिए खड़ा हुआ। लगभग १८ हजार की उपस्थिति थी। मुझे खड़ा देखकर लोग आश्चर्य करने लगे। मैंने अपनी भावनाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त किया और इस बात पर जोर दिया कि यह आन्दोलन राजनैतिक से कहीं अधिक धार्मिक है। आर्यसमाजी तो इस बात को सुनकर भौंचक्के-से रह गये, किन्तु एक अपवाद को छोड़कर सभी लोगों ने मेरे विचारों से सहमति प्रकट की। यहाँ तक कि जो लोग धार्मिक वाद-विवादों की अग्रिम पंक्ति में रहा करते थे, वे भी इस आन्दोलन के प्रति आकृष्ट हुए। वह दृश्य तो सचमुच देवताओं के लिए भी दर्शनीय था, जबकि आर्यसमाज के महोपदेशक पंडित रामचरण तथा इस्लाम के प्रचारक मौलवी अहमद सईद—दोनों ही अपने-अपने धर्मों के कट्टर हिमायती, एक-दूसरे के निकट बैठते हैं और ब्रिटिश नौकरशाही को प्रताड़ित करने में एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। प्रारम्भ में तो मैं सत्याग्रह की कार्यकारिणी सभा का मात्र एक सदस्य ही था। मैं १० मार्च को दिल्ली से बड़ौदा और बम्बई के लिए चल पड़ा। मैं वहाँ के प्रौद्योगिक तथा व्यावसायिक संस्थानों का अध्ययन करना चाहता था। इसका कारण यह था कि मैं स्वयं गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी में ऐसा ही प्रौद्योगिक तथा व्यवसाय-प्रशिक्षण आरम्भ करना चाहता था। बड़ौदा के कलाभवन के कार्य-कलापों का अध्ययन करने में ११ व १२ मार्च के दिन लगे। १३ मार्च को मैं बम्बई पहुँचा जहाँ महात्मा गांधी स्वयं सत्याग्रह आन्दोलन का संचालन कर रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। चौपाटी के समुद्र-तट पर एक विशाल जन-सभा आयोजित की गई। सत्याग्रह के प्रवर्त्तक को सुनने के लिए बहुत बड़ी संख्या में लोग उपस्थित थे। महात्मा जी अभी तक कमजोर थे, इसलिए उनका भाषण किसी अन्य के द्वारा पढ़ा गया। महात्मा जी की विशेष प्रार्थना पर श्री हार्निमेन तथा श्री जमनादास द्वारकादास के साथ मैं भी कुछ बोला। इस नये आन्दोलन के जाल में बम्बईवासियों ने मुझे भी एकदम जकड़ लिया और इस प्रकार मैं बैंगलोर के टाटा इन्स्टीट्यूट तथा मद्रास एवं बंगाल के अन्य प्रौद्योगिक संस्थानों को देखने के लिए वहाँ जाने से वंचित रह गया। मुझे बम्बई में पाँच भिन्न-भिन्न स्थानों पर बोलना पड़ा। महात्मा जी को मद्रास भी जाना था। किन्तु इसमें एक कठिनाई यह थी कि मिल-मजदूरों की मजदूरी में महत्त्वपूर्ण वृद्धि कराने में इन्हें जो सफलता मिली थी, उसकी वर्षगाँठ २० मार्च को पड़ रही थी। इस अवसर पर उन्हें मिल-मजदूरों के सामने बोलना भी था। जब तक कि इस दिन कोई अन्य व्यक्ति मजदूरों के समक्ष बोलने के लिए तैयार नहीं हो जाता, महात्मा जी का मद्रास जाना कठिन था। महात्मा गांधी ने मुझे अपना स्थानापन्न बनाया और मैं १७ मार्च की सायंकाल बम्बई से सूरत के लिए चल पड़ा। सूरत में १० हजार की उपस्थिति के सामने मुझे मैदान में बोलना पड़ा। मैंने १९ मार्च को अपनी यात्रा भड़ौच में स्थगित की, जहाँ एक उत्साहपूर्ण सभा को सम्बोधित किया। सत्याग्रह की सफलता का एक वर्ष पूरा होने के उपलक्ष्य में साबरमती के तट पर मुख्यतया मजदूरों की एक बहुत बड़ी सभा मध्याह्न में हुई जिसमें लगभग ३० हजार लोग उपस्थित थे। इस विशाल जनसमूह के समक्ष अपनी बात को समझाकर कहना एक बड़ा चुनौतीभरा काम था। उसी सायंकाल एक और सत्याग्रह सभा हुई जिसमें १५ हजार से कम उपस्थिति नहीं थी। मेरे इसी व्याख्यान की रिपोर्ट ने लॉर्ड चैम्स-फोर्ड को विचलित कर दिया और उन्हें मि० मॉण्टेग्यू को वह स्मरणीय संदेश भेजने के लिए विवश किया जिसमें मेरे महात्मा गांधी के साथ मिल जाने का विशेष रूप से उल्लेख किया गया था।

२१ मार्च १९१९ ई० को मैं सवेरे की मेल से साबरमती से चल पड़ा और दूसरे दिन दोपहर दिल्ली पहुँच गया। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सारा आन्दोलन समाप्त हो चुका है तथा मेरी अनुपस्थिति में एक भी सभा नहीं हो सकी है; सत्याग्रह-विषयक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कराने का अभियान भी रुका पड़ा है। २४ मार्च की सायंकाल को एक सभा आयोजित करने की सूचना प्रसारित की गई। लगभग ५ हजार की उपस्थिति थी। डॉक्टर अन्सारी ने इस सभा की अध्यक्षता की। मैंने सभा में उपस्थित लोगों से कहा कि वे अधिकाधिक संख्या में सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करें तथा सत्याग्रहियों से भी प्रेरणा की कि वे सभी परिस्थितियों में शान्त तथा अहिंसक रहें। वे हरगिज गृह-

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचिव सर विलियम विन्सेंट के हाथों में न खेलें जिसने कौंसिल-कक्ष में भविष्य-वाणी करते हुए कहा था कि सत्याग्रहियों की अहिंसा ही हिंसा को पैदा करेगी।

२७ मार्च को दूसरी सभा बुलाई गई। डॉक्टर अन्सारी इसमें अनुपस्थित थे क्योंकि अपने व्यवसाय के कारण उन्हें भोपाल जाना पड़ा था। मैंने इसकी अध्यक्षता की। उपस्थिति १२ हजार तक पहुँच गई। २९ मार्च को तीसरी सभा रक्खी गई। इसमें ३० मार्च १९१९ ई० को की जानेवाली हड़ताल के बारे में लोगों को आवश्यक निर्देश दिये जाने थे। ३० मार्च को ही वायसराय द्वारा रॉलेट एक्ट पर हस्ताक्षर किये जाने के बाद का दूसरा रविवार पड़ता था। यह दिन अत्यन्त विनम्रता और उपवास के साथ मनाना था तथा इस दिन सभी प्रकार के व्यवसायों को बन्द रखना था। लोगों को इस दिन व्रत रखने के लिए कहा गया तथा विरोधरूप में ऐसी बैठकें आयोजित करने के लिए भी कहा गया जिनमें सम्राट् से यह प्रार्थना की जानी थी कि वे पास किये गये इस बिल को अपने अधिकार से निरस्त कर दें। महात्मा गांधी द्वारा प्रसारित इस स्मरण-पत्र में मैंने एक चीज और जोड़ दी। वह इस प्रकार थी कि इस दिन प्रत्येक मनुष्य आधे घण्टे के लिए ध्यान करे और परमात्मा से प्रार्थना करे कि वे हमारे विरोधियों का हृदय-परिवर्तन कर दें। अपनी इस बात पर जोर देने के लिए मैंने कहा था—अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग कर हम सम्राट् जार्ज, प्रधान मन्त्री तथा इंग्लैण्ड में बैठे हुए मि० मॉण्टेग्यू के हृदयों को भी प्रभावित कर सकते हैं। इस दिन को अत्यन्त विनम्रता से मनाने के सम्बन्ध में हिदायतों का उल्लेख करनेवाला एक सूचनापत्र स्थानीय दैनिक पत्रों के द्वारा प्रसारित किया गया था। इसमें निम्न बातें लिखी थीं—

इस दिन हमें क्या करना है?

(१) ३० मार्च का दिन हम शोक-दिवस के रूप में मनायें।

(२) २९ मार्च की रात से आरम्भ कर ३० मार्च की रात तक सभी लोग उपवास रक्खें।

(३) नित्य के कार्यों से निवृत्त होकर सब लोग एकान्त, शान्त स्थान में बैठें और परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह हमें सहनशक्ति प्रदान करे तथा सरकार को ईमानदारी के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे जिससे कि भारत माता की विपत्तियों का निवारण हो।

(४) सारे व्यवसाय और दुकानों को बन्द कर सब लोग तमाम दिन देश के कल्याण की बात सोचने में ही व्यतीत करें। अपने को सुधारने तथा परोपकार के कार्यों में यह दिन लगायें।

(५) प्रत्येक पुरुष, नारी तथा बालक सायंकाल ५ बजे की सभा में अवश्य उपस्थित हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दिल्ली मॉर्निंग पोस्ट' नामक पत्र के ३० मार्च १९१९ ई० का अंक २९ की सायंकाल ही प्रकाशित हो गया। इसमें जो प्रमुख लेख छपा उसमें अत्यन्त शरारती ढंग से लिखा गया था कि दिल्ली के नेताओं ने लोगों को व्रत रखने के लिए उकसाया है ताकि वे आसानी से भड़क सकें। हमने २९ मार्च को एक और प्रारम्भिक बैठक की, जिसमें एक वक्ता ने 'मॉर्निंग पोस्ट' के उस प्रमुख लेख को पढ़ा तथा उसपर अपने विचार रक्खे। मैं उस दिन भी इस बैठक की अध्यक्षता करते हुए भारत की इम्पीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल में सर विलियन विन्सेंट द्वारा दी गई उस उपसंहारात्मक वक्तृता की बात याद कर रहा था जो रॉलेट बिल को पारित किये जाने के समय दी गई थी और जिसमें उसने यह संकेत दिया था कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन सक्रिय अवज्ञा के रूप में परिणत हो जायगा और ऐसा महात्मा गांधी से भिन्न अन्य लोग करेंगे। मैंने अपने उपसंहारात्मक भाषण में निम्न बातें भविष्यवाणी के रूप में कहीं—"इस ऐंग्लो-इण्डियन अखबार के कथन का एक गुप्त अभिप्राय है। स्थानीय अधिकारी सर विलियम विन्सेंट की भविष्यवाणी को सत्य करना चाहेंगे, इसलिये मैं आप लोगों से जोर देकर कहूँगा कि आप अपने-आपको बलि का बकरा न बनने दें।" मेरी जानकारी के अनुसार ३० मार्च को जो कुछ हुआ उसे मैंने ऐसोशियेटेड प्रेस के दिल्ली के संवाददाता के आग्रह पर ३१ मार्च १९१९ ई० की प्रातःकाल को लिख डाला था। उस समय सारी घटनाएँ मेरी स्मृति में पूर्ण ताजा थीं। मैं अपने इस बयान को लोगों के समक्ष रखता हूँ जैसा कि मैंने इसे दिल्ली में हण्टर कमेटी के समक्ष रक्खा था।

३० मार्च १९१९ ई० की घटनाएँ

रविवार ३० मार्च १९१९ ई० के दिन सवेरे से ही प्रत्येक दूकान तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठान बन्द थे। स्थानीय आर्यसमाज मंदिर में प्रातःकाल सत्संग में सम्मिलित होकर मैंने शहर में भ्रमण किया। ट्राम गाड़ियों का चलना बन्द हो गया था क्योंकि उनमें कोई बैठनेवाला ही नहीं था, यहाँ तक कि ताँगे भी नहीं चल रहे थे। सब ओर शान्ति थी। हजारों की संख्या में लोग पटरियों पर आ-जा रहे थे। चार बजे के बाद सार्वजनिक सभा में जाने के विचार से मैं १२ बजे दोपहर को अपने निवास पर लौट आया। लगभग दो बजे कुछ भद्र पुरुष रेलवे स्टेशन से दौड़ते हुए आये और कहा कि जब कुछ लोगों ने स्टेशन की दूकानों को बन्द करने के लिए कहा तो एक गोरे रेलवे अफसर ने उन्हें धमकाया। जब लोगों ने उससे कहा कि वह उनके काम में हस्तक्षेप न करे, तो उस अधिकारी ने सीटी बजाकर पुलिस को बुला लिया। पुलिस उपस्थित भीड़ में से दो व्यक्तियों को पकड़कर ले गई। इसपर भीड़ ने कहा कि यदि उसके आदमी छोड़ दिये जाते हैं तो वह हट जायेगी। इसके बाद पुलिस ने भीड़ को लाठियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीटना आरम्भ कर दिया। इधर तो वे इस बात की सूचना उन्हें देने के लिए आये हैं, उधर सिपाही मशीनगन लेकर आ रहे हैं।

मैं तुरन्त पैदल ही स्टेशन की ओर चल पड़ा। मैंने मशीनगन से अंधाधुन्ध गोलियाँ चलाये जाने की आवाज सुनी—परिणामस्वरूप लगभग एक दर्जन व्यक्ति या तो मारे गये या घायल हो गये। मृत और घायलों को खींच-खींचकर स्टेशनयार्ड में ले-जाया गया। मुझे बताया गया कि घायलों में एक रेल का मुसाफिर और एक स्त्री भी थी।

मैंने सामने की ओर से गोरखा पल्टन को दौड़ते आते देखा। गोरे सिपाही तो वहाँ पहले ही थे। मैं वहाँ उपस्थित कुछ यूरोपियनों के निकट गया जिनमें सिटी मजिस्ट्रेट मि० करी भी थे तथा उनसे सही तथ्यों की जानकारी चाही। उन्होंने मेरी उपेक्षा की। मि० करी तो मुँह मोड़कर खड़े रहे। मैंने उनसे कहा कि मैं लोगों को सभा के स्थान पर ले-जा रहा हूँ, हालांकि अभी सभा होने में काफी समय है, इसलिये उसे फौज तथा मशीनगनों का प्रदर्शन कर जनता को उत्तेजित नहीं करना चाहिए। सारी उपस्थित भीड़ जो तीन या चार हजार के करीब थी, मेरे पीछे-पीछे चलने लगी और कम्पनी बाग के मैदान में एकत्र हो गई।

लोगों की भीड़ धीरे-धीरे बढ़ती गई और अब उसकी संख्या २५ हजार तक पहुँच गई। मैं उनको सम्बोधित करने लगा। मैंने उन्हें सत्याग्रही की भाँति आचरण करने के लिए प्रेरित किया तथा अपने शोक एवं क्रोध को नियन्त्रित करने के लिए कहा। इस समय हमें यह समाचार मिल चुका था कि गोरे सिपाहियों ने चाँदनी चौक के निकट गोली चलाई है तथा लगभग १२ व्यक्ति गोलियों के शिकार हुए हैं। कुछ लोग पुनः उत्तेजित होते दिखाई पड़े और मैंने उन्हें शान्त किया।

किन्तु इसी बीच दो गोरे सैनिक अधिकारी घोड़ों पर सवार होकर तीव्र गति से हमारे निकट आये। उनके साथ कुछ सिपाही भी थे। वे मुझसे बात करना चाहते थे। मैं सभा-स्थल से बाहर आया और उन अफसरों से इस प्रकार बाधा देने का कारण जानना चाहा। मैंने उनसे कहा कि शान्त नागरिकों की यह सभा हो रही है और वे इस प्रकार सैनिक आक्रमण करके लोगों को भड़का रहे हैं। इस अफसर ने कहा कि वह शान्तिपूर्वक चलनेवाली सभा के काम में बाधा नहीं देना चाहता, किन्तु अभी-अभी एक ईंट का टुकड़ा उसके पास से फेंका गया है। मैंने उत्तर में कहा कि मुझे तो कोई टुकड़ा दिखाई नहीं दिया तथा इस बारे में उपस्थित लोगों से भी जानना चाहा कि क्या ऐसा हुआ है ? उत्तर में लोगों ने कहा कि नहीं, कोई ईंट नहीं फेंकी गई। अफसर अपने सवारों के साथ यह कहते हुए चला गया कि शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न होनेवाली सभा को अस्तव्यस्त करना उसका प्रयोजन नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीड़ बढ़ रही थी। मैदान में एक मंच स्थापित किया गया और हम लोग उधर ही चले गये। अभी लोग धीरे-धीरे व्यवस्थित हुए ही थे और मैंने उन्हें सत्याग्रह के नाम पर शान्त रहने की प्रेरणा दी ही थी तथा सर्वशक्तिमान् से प्रार्थना करने ही लगा था कि एक मुसलमान पुलिस अफसर के साथ ही वे ही सवार घोड़ा दौड़ाते हुए आते दिखाई दिये। उनके साथ श्री करी तथा चीफ कमिश्नर भी थे। इसी बीच मैदान के मध्य भाग तक एक मशीनगन भी ले आई गई। मैं मंच से उतरा और चीफ कमिश्नर के निकट गया। उसने मुझे पूछा कि हम लोग क्या कर रहे हैं और हमारी यह सभा कब तक चलेगी ? मैंने उत्तर में कहा कि रॉलेट बिल के विरोध में एक प्रस्ताव स्वीकार कर श्री मॉण्टेग्यू को भेजा जाएगा तथा सभा साढ़े छः बजे समाप्त होगी। उसने मुझसे वक्ताओं के नाम पूछे जो मैंने बता दिये। इसके बाद उसने मुझे कहा कि यदि मैं उन्हें इस बात का आश्वासन दूँ कि लोगों की भावनाओं को भड़काने जैसी कोई बात नहीं होगी तथा लोग शान्तिपूर्वक अपने घरों को लौट जायेंगे, तो वह मीटिंग के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

उत्तर में मैंने कहा कि सभा को शान्तिपूर्वक चलाने के लिए मैं व्यक्तिशः उत्तरदायी हूँ। मैंने तो उन लोगों को भी शान्त किया है जिनके सम्बन्धी या तो मारे गये हैं; या घायल हुए हैं। किन्तु मैंने यह भी कहा कि लोगों के घर लौटते समय यदि तुम्हारे सिपाहियों ने कोई परेशानी पैदा की, तो मैं जिम्मेदार नहीं हूँगा; उस स्थिति में जिम्मेदारी आपकी होगी। मैंने सारी बातें उसे समझाईं और कहा, "हमें सूचना मिली है कि घण्टाघर के निकट मशीनगन ने गोलियों की और बौछार की है।" उत्तर में चीफ कमिश्नर ने कहा कि घण्टाघर के समीप कोई मशीनगन नहीं चलाई गई। मैंने कहा कि तब तो मैं इन लोगों को पुनः आश्वासन दे सकूँगा कि घण्टाघर के निकट कोई व्यक्ति घायल नहीं हुआ है। इस पर चीफ कमिश्नर ने चुपके से कहा कि मशीनगन नहीं, किन्तु राइफिलें दागी गई हैं। इसपर मैंने पुनः पूछा—क्या कोई घायल भी हुआ है ? उत्तर मिला—मैं नहीं जानता, इसलिये कह नहीं सकता।

इसके पश्चात् चीफ कमिश्नर ने मुझे कहा कि मैं लोगों को यह संदेश दे दूँ कि उन्हें महात्मा गांधी के आदेशों के अनुसार ही चलना है और कोई बाधा खड़ी नहीं करनी है। मैं उससे काफी जोर से बोल रहा था और हजारों लोग हमारी बात सुन रहे थे। इसके पश्चात् मैं मंच पर चला गया तथा लोगों से अपने और चीफ कमिश्नर के बीच हुई बातें बताईं। लोगों ने मुझे आश्वासन दिया कि वे सत्याग्रह के सिद्धान्तों से भूलकर भी नहीं हटेंगे। उन्हें जो कुछ अत्याचार सहने पड़ेंगे, वे धैर्यपूर्वक सहेंगे। चीफ कमिश्नर यह कहते हुए चला गया कि यदि सभा शान्तिपूर्वक समाप्त होती है तो सेना या पुलिस हस्तक्षेप नहीं करेगी। सभा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यवाही चलती रही। श्री मॉण्टेग्यू को भेजा जानेवाला प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया। मैंने उपस्थित भीड़ से कहा कि वे मेरे पीछे चलें तथा ज्यों-ज्यों उनके निवास-स्थान आवें वे चले जायें। हम लोग सिलसिलेवार चल रहे थे। जब हम लोग घण्टाघर के निकट आये तो हमने सड़क के बीच में गोरखा सिपाहियों को दोनों रास्तों पर दोहरी पंक्ति बाँधे खड़ा देखा। हमें देखकर वे दाहिनी पटरी की ओर जाने लगे। हमने सोचा कि शायद हम लोगों को आगे चले जाने देने के लिए ही ये लोग सड़क छोड़कर पटरी पर चले गये हैं, किन्तु जब हम उनके निकट पहुँचे तो भीड़ पर राइफिल से एक गोली चलाई गई। इसपर हलचल मच गई और भीड़ की ओर से आपत्तिजनक आवाजें आने लगीं। किन्तु मैंने लोगों को रुकने के लिए कहा और उन्होंने मेरी बात मानी। अपने संन्यासी वेश में मैं अकेला ही पटरी तक गया और गोरखों से पूछा कि वे निर्दोष तथा शान्त लोगों पर गोली क्यों चला रहे हैं? तुरन्त मेरी ओर दो राइफिलें तानी गईं और वे लोग गुस्ताखीभरे स्वर में बोले—"तुमको (गोली से) छेद देंगे।" मैं उनके सामने चुपचाप खड़ा रहा और बोला—"मैं खड़ा हूँ, गोली मारो!" तुरन्त और आठ-दस राइफिलें मेरी छाती की ओर मोड़ दी गईं और धृष्टतापूर्ण बातें कही गईं।

अब भीड़ के लिए संयम बरतना कठिन हो गया। वह आगे बढ़ना ही चाहती थी कि मैंने अपना हाथ हिलाकर उसे अपनी प्रतिज्ञा की याद दिलाई, जिससे वह वहीं रुक गई। किन्तु लोग कह रहे थे—हम मर जायेंगे किन्तु आपको मरने नहीं देंगे। लगभग तीन मिनट तक राइफिलों की नोक मेरी छाती के आगे झुकी रही। इतने में ही एक घुड़सवार यूरोपियन वहाँ आया और उसने वहाँ उपस्थित एकाकी पुलिसवाले से पूछा कि क्या उसने गोली चलाने का आदेश दिया है? मैं आगे आया और मैंने यूरोपियन अफसर से पूछा कि क्या उसने राइफिल छूटने की आवाज सुनी है? उसने अधैर्यपूर्वक उत्तर दिया कि वह इसकी जाँच कर रहा है। बाद में मुझे पता चला कि यह अफसर गुप्तचर पुलिस का पी० एल० ओर्ड था।

मैं लोगों के साथ वहाँ से चला गया। मेरे समीप एक गोरखा आया जो अपनी खुखरी को कभी दायें और कभी बायें घुमा रहा था। लोगों ने उसका मजाक उड़ाया और वह हतोत्साहित होकर चला गया। एक बख्तरबन्द गाड़ी हमें घेरे में लिये हुए चल रही थी तथा उसपर लगी तोप लगातार हमें निशाना बनाये हुए थी। किन्तु इससे कोई भी व्यक्ति न तो घबराया और न उसने अपना धैर्य ही खोया। सभी लोग मुझसे प्रेमपूर्वक विदा लेकर अपने-अपने घरों की ओर चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

सत्याग्रह की वास्तविक भावना

३० मार्च रविवार की पूरी रात मैंने बिना पलक झपे जागते हुए बिताई। एक मुसलमान शहीद का शव बल्लीमारान मुहल्ले के भाइयों के द्वारा जैसे-तैसे प्राप्त कर लिया गया था, जिसे एक मस्जिद में रखा गया। अधिकारियों को जब इसकी भनक पड़ी तो उन्होंने मस्जिद पर अनेक बार छापे मारे और मृतक के प्रति शोक प्रकट करनेवालों को धमकी दी कि यदि लाश उन्हें नहीं सौंपी गई तो वे उन्हें गोली मार देंगे। इस तथा अन्य घटनाओं की सभी खबरें मुझे प्रत्येक घण्टे-घण्टे से मिल रही थीं और मैंने लोगों को इस घड़ी में दृढ़ रहने का परामर्श दिया। अन्ततः अधिकारियों ने अपनी धौंस-पट्टी का यह खेल बन्द किया। शहीद के जनाजे के पीछे हजारों की भीड़ थी। रास्ते में एक और मुसलमान शहीद का जनाजा भी मिला और दोनों जनाजे कब्रिस्तान की ओर ले-जाये गए। इनके साथ लगभग ३५ हजार हिन्दू-मुसलमान चल रहे थे। हमारे पीछे बख्तरबंद गाड़ियाँ चल रही थी जो कब्रिस्तान तक आईं। हकीम अजमल खाँ से मेरी मुलाकात इन शहीदों के कदमों में हुई और उस दिन से हम एक-दूसरे के लिए भाई के समान हैं। लोगों ने अपने मिजाज को काबू में रक्खा और जब हकीम अजमल खाँ तथा मैंने उनके समक्ष भाषण देते हुए आतमसंयम वरतने तथा अपनी दूकानें खोलने के लिए कहा, तो उन्होंने एक आवाज में इसे मंजूर किया। इधर तो हम सोच रहे थे कि दोपहर बाद दूकानें खुलाई जावें, उधर रेलवे स्टेशन तथा टाउन हाल के निकट गोलीबारी के शिकार हुए लोगों के शव प्राप्त किये गए। इसके लिए नगरपिताओं का एक प्रतिनिधि-मण्डल मध्यस्थ के रूप में चीफ कमिश्नर से मिला था। इस प्रकार प्राप्त शवों में से दो के जनाजे कब्रिस्तान की ओर ले-जाये गए। इनके साथ १५००० लोग चल रहे थे जिनमें अधिकांश हिन्दू थे। तीन अन्य शव हिन्दू श्मशानगृह की ओर ले-जाये गए जिनके साथ लगभग तीस हजार लोग चल रहे थे जिनमें मुसलमानों की संख्या अधिक थी। मुझे मुसलमान नेताओं ने हिंदुओं के शवों के साथ जाने के लिए विवश किया और उनमें से अनेक मेरे साथ चले। वह एक आश्चर्यजनक दृश्य था। मुसलमानों के जनाजे मुख्यतया हिन्दुओं के कंधों पर ले-जाये जा रहे थे और हिन्दुओं की अर्थियों को मुसलमान कंधों पर उठाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए थे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह थी कि इन शवों को उठानेवालों को बाद में इस बात का कभी अफसोस नहीं हुआ कि उन्होंने किसी काफिर को कंधा दिया या म्लेच्छ की अर्थी उठाई। जब सवेरा होने पर जनाजे को आखिरी नमाज के लिए रक्खा गया और कुछ मुल्लाओं ने मुझे तथा कतिपय अन्य हिन्दुओं को अपना मुँह दूसरी ओर कर लेने के लिए कहा तो हमारे साथ चलनेवाले इमाम दौड़े हुए आये और उन्हें रोकते हुए कहा—स्वामी जी, हम सभी खुदा के बंदे हैं। हम आपको भी अपनी नमाज में शरीक करना चाहते हैं। और मैं तहे-दिल से इसमें शरीक हुआ।

अब तक सत्याग्रह का पूरा बोलबाला रहा। हालाँकि मृतक लोगों के रिश्तेदार बहुत दुःखी थे तथा सभी लोग उनके लिए शोक प्रकट कर रहे थे, किन्तु सरकार के प्रति किसी भाँति की शत्रुता या हिंसा का भाव नहीं था। श्मशान-स्थल पर मैंने लोगों को प्रेरणा दी कि वे अपनी दूकानें खोलें और दूसरे दिन सवेरे से ही अपना व्यापार-व्यवसाय आरम्भ कर दें। मैंने सवेरे से ही भोजन-पानी कुछ भी नहीं लिया था, और चाहता था कि कुछ खाऊँ, इतने में ही मुझे डॉक्टर अब्दुर्रहमान के यहाँ से सलाह-मशविरे के लिए बुलावा आया। डॉक्टर एम० ए० अन्सारी अभी तक दिल्ली नहीं आये थे और सरकार का सामना करने तथा लोगों को नेतृत्व प्रदान करने जैसे कामों के लिए किसी अध्यक्ष की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इसलिए डॉक्टर अन्सारी की अनुपस्थिति में मैंने अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए अपनी सहमति प्रदान की। जब एक अप्रैल को डॉक्टर अन्सारी लौटकर आये तो उन्होंने मुझे स्थानीय सत्याग्रह सभा के अध्यक्ष-पद पर बने रहने के लिए मजबूर किया।

एक एप्रिल १९१९ ई० मंगलवार को मैं कुछ जल्दी घण्टाघर पहुँचा। ५ मिनट में ही लगभग ५ हजार व्यक्ति एकत्र हो गए और मैंने उन्हें अपनी-अपनी दूकानें खोलने का आग्रह किया। वे लोग इसके लिए जानेवाले ही थे कि उनमें से कुछ ने बताया कि टाउन हाल में सेना को भड़कानेवाली स्थिति में लाकर खड़ा किया गया है तथा नगरपालिका-उद्यान के दोनों दरवाजों पर, जो चाँदनी चौक में खुलते हैं, भारी पुलिस गार्ड को तैनात किया गया है। अब तक हकीम अजमल खाँ भी आ गए थे और भीड़ ५००० तक बढ़ चुकी थी। हकीम साहब और मैंने सन्तरियों से एक दरवाजे को खोलने के लिए कहा और भीतर जाकर गुप्तचर पुलिस के अधीक्षक पी० एल० ओर्डे से अनुरोध किया कि वह सेना को वहाँ से हटा लें ताकि हमें दूकानों को खुलवाने में कोई दिक्कत न हो। ओर्डे ने कहा कि वह इसके बारे में डिप्टी कमिश्नर से परामर्श करेगा और ऐसा करने के लिए उसने टेलिफोन उठाया। थोड़ी देर बाद वह आया और उसने जवानों को दूर चले जाने के लिए कहा। ओर्डे को धन्यवाद देकर हम लोग चले गए। अब सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन-नेताओं ने शहर का एक चक्कर लगाया और शहर के दूर कोनों तक की सभी दूकानें दोपहर १२ बजे तक खुल गईं तथा व्यापार-व्यवसाय पुनः आरम्भ हो गया। सुईवाला बाजार की आखिरी दूकान खुलने के बाद जब मैं वहाँ से लौट रहा था, मुझे खबर मिली कि पुलिस और सेना घण्टाघर बाजार में पुनः आ गई है। मैं तुरन्त उस जगह लौटा तो देखा कि हथियारबंद पुलिस की एक टुकड़ी, कुछ घुड़सवार फौज तथा पैदल सेना के जवान घोड़े पर सवार एक सैनिक अधिकारी के साथ चौक में खड़े हैं। ओर्ड साहब पैदल ही थे।

मैंने ओर्ड से इस सबका मतलब पूछा तो उसने बताया कि नेता लोग दूकानों को खुलवाने में सफल नहीं हुए हैं और एक बड़ी भीड़ वहाँ एकत्रित हो गई है, इसलिए उसे मजबूर होकर सेना तथा हथियारबंद पुलिस को बुलाना पड़ा है। इसपर मैंने लोगों से पूछा कि वे वहाँ क्यों इकट्ठे हुए हैं तो उनका उत्तर इतना ही था कि वे तो सेना को देखकर ही वहाँ इकठ्ठे हो गए हैं, यह भी बताया कि सारी दूकानें खुल गई हैं, किन्तु जब सेना आई तो भय के कारण कुछ दूकानें पुनः बन्द कर दी गईं। मैंने ओर्ड से कहा कि वह सेना और पुलिस को वहाँ से ले जाये, भीड़ की जिम्मेदारी मेरी होगी। मैंने यह भी कहा कि यदि उत्तेजनाप्रद स्थिति में सेना यहाँ बनी रही और कुछ गड़बड़ हुई तो उसके लिए वही जिम्मेदार होगा। ओर्ड ने तुरन्त मेरा अनुरोध स्वीकार किया और दस मिनट के भीतर ही सारी भीड़ तितरबितर हो गई।

दोपहर लगभग एक बजे मैंने एक गिलास पानी पिया और मोटर में बैठकर सारे शहर में घूमा। वाणिज्य-व्यवसाय यथापूर्व चल रहा था और लोगबाग शान्त नजर आते थे। मैं अपने स्थान पर लौट ही रहा था कि मुझे समाचार मिला जिसमें कहा गया था कि तीन बजे वायसराय की स्पेशल ट्रेन आई है तथा दिल्ली जंक्शन रेलवे स्टेशन पर स्थानीय अधिकारी वायसराय से परामर्श कर रहे हैं। कोई सवारी न मिलने के कारण मैं पैदल ही स्टेशन की ओर चल पड़ा, किन्तु मेरे पहुँचने के पहले ही वायसराय की स्पेशल वहाँ से जा चुकी थी। मैं वहाँ इस उद्देश्य से गया था, ताकि वायसराय से यह प्रार्थना करूँ कि वह दिल्ली उतरें और जनरल अस्पताल में पड़े घायलों से मिलें। इससे स्थिति में सुधार होगा, किन्तु ऐसा नहीं हो सका। मैं निराश तो हुआ किन्तु मुझे यह समाचार जानकर पुनः स्वस्ति का अनुभव हुआ कि वायसराय ने सारे मामले की एक गैर-सरकारी कमेटी से जाँच कराने का आदेश दिया है। किन्तु मुझे आश्चर्य और अन्ततः निराशा तो तब हुई जब बाद में वायसराय की विज्ञप्ति में स्थानीय अधिकारियों द्वारा प्रदत्त विवरण के आधार पर इकतर्फा रिपोर्ट छाप दी गई।

मैं सायंकाल लगभग ७ बजे अपने आश्रम में आया और लगभग ८ बजे भोजन किया। इसके बाद पूरे तीन घण्टे तक विचार-विमर्श चलता रहा, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यस्थ के रूप में निर्णय के लिए जो प्रार्थनापत्र आये थे उनपर भी विचार होता रहा। मैं रात को ११ बजे सोया और ढाई बजे उठ गया। पाँच बजे तक मैंने अपने नित्यकर्मों को किया और उसके तुरन्त बाद शहर को चल पड़ा। मेरा यह कार्यक्रम १९ एप्रिल १९१९ ई० तक चलता रहा। इस दिन हड़ताल पूरे तौर पर समाप्त हो गई। दोपहर बाद शर्बत या पानी का एक गिलास और रात को आठ बजे एक बार का भोजन, यही दिनभर का क्रम था। प्रति रविवार को मैं तब तक व्रत रखता रहा जब तक रॉलेट बिल को वापस नहीं ले लिया गया।

२ और ३ एप्रिल के दिन शान्ति से बीत गए। इसमें दिल्ली के डिप्टी कमिश्नर कर्नल बीडन का यह कथन जरूर अपवाद समझा गया जिसमें उसने इस बात पर खेद प्रकट किया था कि जिन्हें गोली मार देनी चाहिए थी वे आज खुले आम आजादी से घूम रहे हैं। उनका यह संकेत मेरे तथा मेरे साथियों के प्रति था। हिन्दू और मुसलमानों में बन्धुभाव उत्पन्न होने का एक अन्य परिणाम भी निकला। चोरी और दंगे खत्म हो गए, शराबी मयखानों में बैठने में संकोच करने लगे, यहाँ तक कि जुआघरों में भी उल्लू बोलने लगे। बीस दिनों तक लगा मानो रामराज्य आ गया है। दो पेचीदा दीवानी दावे पाँच वर्ष से लटके पड़े थे। हकीम साहब ने मुझे अकेले को पंच बनाकर इन्हें मेरे हवाले किया। एक मामले में हिन्दू और मुसलमानों का परस्पर विरोध था। इसकी जाँच कठिन नहीं थी। मैं दोनों पक्षों के मुहल्लों में गया। दोनों ने सचाई कुबूल की और उस राजी-नामे पर दस्तखत कर दिये जो मैंने उन्हें लिखाया था। अंग्रेजी न्यायालय की शरण लिये बिना ही डिगरी पर अमल हो गया। कांगड़ी बाजार में कुछ गड़बड़ हुई। मैंने इस मामले को लाला बुलाकीदास को सौंपा। अपराधी पक्ष, यद्यपि उच्च जाति के लोगों का था, किन्तु उसने तुरन्त क्षमायाचना की और सत्याग्रह कोष के लिए कुछ चंदा भेजा। इसकी सारी रिपोर्ट मेरे पास आई। मुझे यह तो पता नहीं कि हकीम अजमल खाँ साहब द्वारा कितने मामले निपटाये गए, किन्तु मुझे तो यह स्मरण है कि मैंने दो दर्जन से अधिक ऐसे मामलों का निपटारा किया, यदि उन्हें अंग्रेजी अदालतों में ले-जाया जाता तो वे वर्षों तक घिसटते जाते।

हिन्दू-मुसलमानों का यह बंधुत्वभाव सचमुच आश्चर्यजनक था। सभी प्रकार के शक और शुबहे खत्म कर दिये गए। एक विशिष्ट प्रकार का मामला मेरे अभिप्राय को स्पष्ट कर देगा। एक हिन्दू व्यापारी पाँच रुपये के कुछ नोट अपनी जेब में रक्खे कहीं जा रहा था। इनमें से एक नोट दिखाई पड़ रहा था। चौदह वर्ष के एक मुसलमान लड़के ने, जो पास से जा रहा था, उस नोट पर हाथ मारा और उसे उड़ा ले गया। ड्यूटी पर तैनात सिपाही ने उसे पकड़ लिया और दौड़-कर उसे उस हिन्दू के पास ले गया—"साहब, इस बदमाश ने आपके पॉकेट से यह नोट उड़ाया है।" लाला ने उस लड़के की ओर दया के भाव से देखा और अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोटों का बण्डल बाहर निकालकर जान-बूझकर उसे गिना और कहा कि उसके नोट तो पूरे के पूरे हैं। लाला ने लड़के को छोड़ देने के लिए आग्रह किया। जब लाला दूसरी गली में मुड़ा तो उस गरीब लड़के ने वह नोट लाला के हाथ पर धर दिया और उसके पाँवों में पड़कर फूट-फूटकर रोते हुए कहने लगा—'साहब, मेरी बूढ़ी माँ और मेरी छोटी बहिन आज दो दिन से भूख के मारे तड़प रही हैं, और हड़ताल के कारण मैं भी बेरोजगार हूँ। इसी कारण मुझे लालच आ गया। आप मुझे माफ करें।' इस हिन्दू व्यापारी की अन्तरात्मा ने सम्भवतः इससे पहले उसमें कभी पश्चात्ताप की भावना जागृत नहीं की थी। वह बालक के सत्यकथन से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने कहा—"मेरे बेटे, यह नोट तुम्हारा ही है। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारी माता के लिए कुछ उपहार दूँगा।" लड़का उस हिन्दू के घर ले-जाया गया और उसे कुछ आटा, घी, दाल आदि दिये गए जिससे कि वह अपने दुःखी परिवार को सान्त्वना दे सका। यह घटना १२ एप्रिल को हुई जब हड़ताल पूरे जोर पर थी, और यह पूरी कहानी उसी बशीर ने खुद मुझे सुनाई। गुण्डों का मानो अस्तित्व ही समाप्त हो गया था। प्रत्येक हिन्दू स्त्री प्रत्येक मुसलमान द्वारा बहिन या पुत्री की तरह समझी जाती थी, और इसी प्रकार प्रत्येक मुस्लिम महिला को हर हिन्दू अपनी माँ, बहिन या बेटी समझता था। काश, दिल्ली में उस एक सप्ताह की वह पुरानी भावना पुनः आ जाये, ताकि वर्तमान की अपवित्र भावनाओं के खिलाफ प्रतिक्रिया आरम्भ हो और सारे भारत में वही पवित्र भावना फिर प्रसरित हो सके!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

जामा मस्जिद में प्रवेश

४ एप्रिल का दिन दिल्ली में अत्यन्त महत्त्व का था। अंधाधुंध गोलीबारी के बाद का यह पहला शुक्रवार था और जामा मस्जिद में जुम्मे की सामूहिक नमाज अदा की जानी थी। जिम्मेदार मुसलमान नेताओं द्वारा एक विज्ञप्ति प्रचारित की गई थी जिसमें जनता से कहा गया था कि वह हिन्दू और मुसलमान शहीदों पर परमात्मा का आशीर्वाद माँगने के लिए इस स्मृति-सभा में एकत्रित हों।

सदा की भाँति मैं शहर का चक्कर लगा रहा था। उस समय अनेक हिन्दुओं ने मुझसे कहा कि हमारे मुसलमान भाई हमसे इस बात का आग्रह कर रहे हैं कि हम लोग मस्जिद में होनेवाली इस महत्त्वपूर्ण सभा में सम्मिलित होवें तथा उन्होंने मुझसे भी सलाह माँगी कि इस मामले में उन्हें क्या करना चाहिए। उनके पूछने का कारण यह था कि इस बड़ी मस्जिद में वहाँ की प्रबन्धकारिणी समिति की आज्ञा लिये बिना किसी गैर-मुसलमान को प्रविष्ट होने का अधिकार नहीं था, और वह भी उस समय जब वहाँ नमाज अदा की जाती हो। मैंने उन्हें प्रतीक्षा करने के लिए कहा और श्री अब्दुर्रहमान वकील से परामर्श करने के लिए गया। उनका कार्यालय समीप ही था। श्री अब्दुर्रहमान ने मुझे सलाह दी कि हकीम साहब से पूछे बिना वहाँ जाना ठीक नहीं है। हकीम साहब अपने घर पर नहीं थे, इसलिए मैं अपने आश्रम में लौट आया और निश्चय किया कि २ बजे तक, जब तक कि नमाज और शहीदों की यादगार में होनेवाली सभा समाप्त नहीं हो जाएगी, मैं मस्जिद में नहीं जाऊँगा।

मैं अपने लेखन-कार्य में व्यस्त था। तभी दोपहर के एक बजे के लगभग ५० मुसलमान सज्जन मेरे निवास पर आये और मुझे प्रेमपूर्ण आग्रह से नीचे ले गए। वहाँ एक ताँगा खड़ा था। मार्ग में उन्होंने कुछ अन्य वाहनों को भी लेने का प्रयत्न किया जो एक-दूसरे से अधिक तेज चल सकते थे। अन्ततः उन्हें एक खाली कार मिल गई। मुझे फुर्ती से उसी में बैठाया गया और मैं जामा मस्जिद की दक्षिण दिशा की सीढ़ियों पर पहुँचा। मैंने देखा कि कुछ लोग लौट रहे थे, किन्तु जब उन्होंने मुझे सीढ़ियों से चढ़ता हुआ देखा तो "महात्मा गांधी जी जय" तथा "हिन्दू-मुसलमान एकता की जय" के नारे लगने लगे और वे सभी लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः मस्जिद में प्रविष्ट हो गए। अन्दर ३० हजार से कम उपस्थिति नहीं थी। मैं वहाँ बैठे हुए आखिरी आदमी के पीछे बैठने ही जा रहा था कि अन्य मुसलमान भाई दौड़ते हुए आये और मुझे इमारत के भीतरी भाग में ले गए। उसके बाद मैं बाहर लाया गया, जहाँ धर्म-प्रवक्ता के लिए एक लकड़ी का मंच रक्खा हुआ था। उस समय मौलवी अब्दुलमजीद उपस्थित लोगों को सम्बोधित कर रहे थे। उन्होंने मुझे उपदेश-वेदी पर आने के लिए कहा। मुझे संकोच हुआ। हजारों लोगों की आवाजों ने मुझे ऊपर चढ़ने के लिए कहा। दो सीढ़ियाँ चढ़कर मुझे पुनः संकोच हुआ। भारी भीड़ पाँवों पर खड़ी थी और उसने एक स्वर से मुझे मंच पर जाने के लिए कहा। जब मैं व्याख्यान-वेदी पर पहुँच गया, तो सभी लोग बैठ गए।

मैं सोचता था कि मौलवी अब्दुलमजीद अपना प्रवचन जारी रक्खेंगे, किन्तु उन्होंने यह कहते हुए अपना कथन समाप्त कर दिया—"आप लोगों ने सुन लिया कि शहीदों के रक्त के बारे में कुरान मजीद क्या कहता है। स्वामी श्रद्धानन्द अब आपको बतायेंगे कि हिन्दू भाइयों के मतानुसार जो वेद में ईश्वरीय वाक्य कहे जाते हैं, वे भी यही बात कहते हैं।" यह एक अप्रत्याशित आमंत्रण था। मुझे खड़ा होना पड़ा। मैंने वेद के उस मंत्र का उच्चारण किया, जिसमें ईश्वर को पिता और माता कहकर सम्बोधित किया गया था—

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधाते सुम्नमीमहे।

मैंने उपस्थित अपार जनता को कहा कि वह शहीदों के बेकुसूर होने की साक्षी दे तथा उनसे अनुरोध किया कि वे उस परमात्मा के चरणों में नत होवें जो सबका पिता और सबकी माता है। मैंने एक उर्दू कवि का निम्न उद्धरण भी पढ़ा।—

हिन्दू सनम में जलवा पाया तेरा।
आतिश पै फिगां ने रस गाया तेरा।
देहरी ने किया देहर से ताबीर मुझे।
इन्कार किसी से बन न आया तेरा।।

जो लोग वहाँ उपस्थित थे, वे ही उस दृश्य का ठीक-ठीक बयान कर सकते हैं। और जब मैंने तीन बार 'ओम् शान्ति आमीन' कहा तो सारी सभा ने एक-स्वर से सारे स्थान को गुँजाते हुए उसे पुनः उच्चरित किया। यह एक प्रेरणादायक दृश्य था। मैं वेदी से नीचे उतरा और लोगों के साथ वहाँ से चला आया। उन लोगों के चेहरे ही बता रहे थे कि वे कितने प्रभावित हुए हैं।

इसके बाद तो सारे देश की मस्जिदों में मुस्लिम धर्म-वेदी से हिन्दू साधुओं के व्याख्यान देने तथा हिन्दू मन्दिरों में दोनों धर्मों के लोगों की मिली-जुली उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति में मुसलमान धर्मयाजकों द्वारा प्रवचन करने का सिलसिला ही चल पड़ा। उस महनीय दृश्य के बाद जो कुछ घटा है, उसके बावजूद मैं उस घटना की स्मृति से अब तक प्रभावित हूँ और इस आशा को धारण किये हूँ कि संदेह के बादल छटेंगे और विश्वास तथा सचाई का सूर्य अपने सम्पूर्ण प्रकाश के साथ पुनः प्रदीप्त होगा।

मस्जिद के भीतर तो यह सुन्दर दृश्य अभिनीत हो रहा था और इस विशाल मस्जिद के बाहर हथियारबन्द गाड़ियों में सेना और पुलिस लोगों को भड़काने के लिए हाजिर थीं। किन्तु अपने नेताओं से प्रेरणा प्राप्त करनेवाले लोगों ने अपनी मनःस्थिति को वश में ही रक्खा।

उसी सायंकाल दिल्ली के डिप्टी कमिश्नर लेफ्टिनेण्ट कर्नल बीडन ने शहर के सरकारी अफसरों और रईसों की एक बैठक बुलाई। इसमें उन्होंने अपना दो एप्रिल का वह स्मरणीय बयान लोगों के समक्ष पढ़ा जिसमें उन्होंने रेलवे स्टेशन पर एकत्र हुई भीड़ को बदमाशों का जमावड़ा बताया था। शाम को यही छपा हुआ नोटिस शहर के भिन्न-भिन्न स्थानों पर चिपका पाया गया और इससे लोगों में बड़ी उत्तेजना फैली। इसके पश्चात् ले० कर्नल बीडन ने एक अन्य सूचना प्रकाशित की, जिसमें जिन लोगों के रिश्तेदार मर गये थे या घायल हो गये थे, उनसे कहा गया था कि वे टाउनहाल आकर अपनी शिकायतें उनके समक्ष पेश करें किन्तु लोगों का उसके न्याय में विश्वास ही खत्म हो गया था, अतः किसी ने भी उसके कथन की ओर ध्यान नहीं दिया। स्थानीय सत्याग्रह समिति ने कर्नल बीडन के गलत वक्तव्य का प्रतिवाद प्रकाशित किया जो ६ एप्रिल १९१९ ई० को प्रातःकाल लोगों में बाँट दिया गया। सत्याग्रह समिति द्वारा प्रकाशित यह उत्तर स्पष्ट बतलाता है कि दिल्ली में तो हमने ३० मार्च को पश्चात्ताप और प्रार्थना का दिवस मना ही लिया था, हम तो उस शाम केवल सरकार के विरोध में एक सभा करना चाहते थे। हमारा लोगों को यह कहने का कोई इरादा ही नहीं था कि वे ६ एप्रिल १९१९ ई० को अपना कारोबार बन्द रक्खें। महात्मा गांधी ने भी समस्त भारत में इस दिन को विनम्रता दर्शाने और प्रार्थना करने के लिए ही घोषित किया था। स्थानीय सत्याग्रह समिति ने ऐसा ही प्रस्ताव स्वीकार किया तथा यही बताने के लिए सारे नगर से बड़े-बड़े पोस्टर चिपकाये थे।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि सत्याग्रह समिति के अधिकारियों तथा दिल्ली के अन्य नेताओं ने लोगों के अशान्त मनों को शान्त करने का जो कार्य आरम्भ किया था, उसे गुप्तचर विभाग के लोगों के शरारतभरे कारनामों ने कठिन बना दिया था। ३१ मार्च १९१९ ई० को जब हकीम अजमल खाँ, श्री ए० के० देसाई, मैं तथा अन्य लोग दूकानों को खुलवाने की कोशिश कर रहे थे, दो या तीन आदमी लोगों को यह कहकर भड़का रहे थे कि जब तक मृतकों के शव न दिये जाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तक उन्हें दूकानें नहीं खोलनी चाहिएँ। इनमें से एक को श्री देसाई ने गुप्तचर के रूप में पहचान लिया और वे उसे पकड़ने के लिए दौड़े। परन्तु वह आदमी भीड़ में गुम हो गया। एक एप्रिल को जब मैं रायबहादुर सुलतानसिंह के साथ फतहपुरी से घण्टाघर तक की दूकानों को खुलवा रहा था, हमने देखा कि लोगों की भीड़ को एक व्यक्ति सम्बोधित कर रहा है। हम लोग तुरंत लौट पड़े और रा०ब० सुलतानसिंह की गाड़ी पर खड़े होकर मैंने उस व्यक्ति से जो मुसलमान था, पूछा कि वह जो कुछ कह रहा है, उसका मतलब क्या है ? उसने जिस लहजे से मुझे उत्तर दिया वह काफी असरदार था; उसने कहा—जिन लोगों के नाते-रिश्तेदार मारे गये हैं, उनकी भावनाओं को आप क्या समझेंगे ? यदि तुम्हारा कोई रिश्तेदार मारा जाता तो तुम हड़ताल खत्म कर देने की सलाह कभी नहीं देते। इसपर मैंने उससे सीधा सवाल पूछा—तुम्हारा कौन-सा रिश्तेदार मारा गया है ? अब वह आदमी उलझन में पड़ गया और उसी समय उपस्थित भीड़ में से एक व्यक्ति ने उसे पहचान लिया कि वह गुप्तचर विभाग का कर्मचारी है। मेरा इधर तो यह पूछना था और उधर वह आदमी इस प्रकार गायब हो गया मानो धरती ने ही उसे निगल लिया हो। इसके बाद २, ३ और ४ एप्रिल को घण्टाघर की दीवारों पर हाथ से लिखे पोस्टर दिखाई पड़े जिनमें लोगों को कोतवाल की हत्या कर देने के लिए उकसाया गया था। यह भी गुप्तचर विभाग या पुलिस का ही कारनामा समझा गया और भारत के सभी दैनिक पत्रों में यही धारणा व्यक्त की गई। इसके अतिरिक्त, इस अवधि में मेरे पास अलग-अलग ही समय पर कई आदमी आते रहे जिनके बारे में बाद में पता चला कि वे गुप्तचर हैं। ये लोग हिंसा करने की अनेक योजनाएँ बनाकर लाते और मुझे उन्हें सत्याग्रह के अहिंसा तथा आत्म-त्याग के सिद्धान्तों को समझाने तथा उन्हें उनके अनुकूल बनाने में कई घण्टे लग जाते।

६ एप्रिल रविवार को जब सूर्योदय हुआ तो कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ थीं और लोगों ने दूसरी बार की हड़ताल को आश्चर्य से देखा। सारा कारोबार बिल्कुल बन्द हो गया। मृत व्यक्तियों के लिए प्रार्थना करने हेतु हजारों आदमी सवेरे के समय फतहपुरी मस्जिद में एकत्र हुए। मुझे फिर से प्रार्थना का संचालन करना पड़ा। दोपहर के समय १५ से २० हजार तक लोग एडवर्ड पार्क में एकत्र हुए। दिल्ली के लगभग सारे नेता उपस्थित थे। सत्याग्रह और स्वदेशी की भावना पर भाषण दिये गये तथा लोगों को कहा गया कि वे स्वयं को संयत रखें और अपने भीतर क्रोध की भावना पैदा न करें। सायंकाल डॉक्टर अन्सारी के दरियागंज-स्थित अहाते में एक बड़ी भीड़ एकत्रित हो गई। एक लाख से अधिक लोग इकट्ठे हो गये और ८ भीड़भरी सभाएँ हुईं। पुलिस की एक भी लाठी नजर नहीं आई और सभा की कार्यवाही शान्तिपूर्वक बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी बाधा के समाप्त हो गई। सभास्थल के पास कोई पुलिस या सेना का आदमी नजर नहीं आया, इसलिए उत्तेजना का भी कोई कारण नहीं था। दिल्ली के लोग मुझपर दबाव डाल रहे थे ताकि मैं महात्मा गांधी को यहाँ आने और उन हजारों लोगों को दर्शन देने के लिए कहूँ जिन्होंने उन्हीं से एक नवीन आध्यात्मिक पाठ ग्रहण किया है। ज्यों ही मैंने सुना कि महात्मा जी पंजाब तथा सिन्ध के दौरे पर जा रहे हैं, मैंने तार देकर उनसे दिल्ली में रुकने के लिए अनुरोध किया। मैंने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि महात्मा गांधी से लोगों का व्यक्तिगत सम्पर्क लोगों में सत्याग्रह के सिद्धान्तों को प्रविष्ट कराने के हमारे कार्य को सरल बना देगा। महात्मा जी का तार आया कि वे मंगलवार की संध्या को बम्बई से प्रस्थान करेंगे। मैंने उन्हें वापस तार दिया और कहा कि उनके इस तार के लिए हम उनके आभारी हैं। इसके बाद ८ एप्रिल को मुझे उनका निम्न तार मिला—

"कल शाम पहुँच रहा हूँ। कृपया मेरे आगमन के समाचार को गोपनीय रक्खें, कोई सार्वजनिक प्रदर्शन न करें।" मैंने केवल सत्याग्रह समिति के अन्य सभासदों को ही यह तार दिखलाया और यह उचित नहीं समझा कि इसके बारे में आम जनता को कुछ बताया जाए, क्योंकि कोई भी सार्वजनिक समारोह महात्मा जी के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता था।

तथापि पुलिस तथा सेना अपने पूरे जोर पर थी और गाड़ी आने के समय से दो घंटे पूर्व ही लान्सर सेना के सिपाही सायं ७-३० बजे से ही नगर में गश्त लगाने लगे थे। जब मैं अपने कुछ अन्य मित्रों के साथ दिल्ली जंक्शन के रेलवेस्टेशन पहुँचा तो देखा कि सारे प्लेटफॉर्मों पर गुप्तचर विभाग के लोग भरे पड़े हैं तथा प्लेटफॉर्म टिकटों का बेचा जाना भी बन्द कर दिया गया है। महात्मा गांधी के पलवल में ही गिरफ्तार कर लिये जाने के कारण गाड़ी भी विलम्ब से आ रही थी, तथापि जब गाड़ी स्टेशन पर आकर खड़ी हुई तो कुछ यूरोपियन यात्रियों ने यह जानकर कि हम महात्मा जी की प्रतीक्षा कर रहे हैं, आह्लादित होकर अपने हाथ खड़े किये और केवल इतना ही कहा—**गिरफ्तार हो गये**। इसके बाद महात्मा गांधी के सचिव श्री महादेव देसाई गाड़ी से उतरे और उन्होंने इस समाचार की यह कहते हुए पुष्टि की कि वे हम लोगों के लिए महात्मा गांधी का एक सन्देश लाये हैं।

श्री महादेव देसाई ने महात्मा गांधी का अपने देशवासियों के प्रति सन्देश लिखा और रात्रि को मैंने अपने आश्रम में उसे टाइप करा डाला। बाद में वह पत्रों में प्रकाशनार्थ भेज दिया गया। १० एप्रिल की प्रातः पुनः पूर्ण हड़ताल हो गई। सूचनाएँ प्रसारित करने के लिए समय का अभाव था, इसलिए मैं अपने निवास से प्रातः साढ़े सात बजे ही निकल पड़ा। लोग रास्ते में बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठे होते गये और आधे घण्टे में ही यह खबर फैल गई कि यमुना के किनारे पर लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उपस्थिति में महात्मा जी का सन्देश पढ़ा जाएगा। लगभग ६ बजे २० हजार व्यक्ति (स्त्री और पुरुष) सभा के स्थान पर पहुँच गये। महात्मा जी का सन्देश जो अब एक कालजयी अभिलेख की संज्ञा प्राप्त कर चुका है, मेरे द्वारा पढ़ा गया और मैंने ही उसकी व्याख्या भी की। परमात्मा से महात्मा जी के दीर्घ जीवन तथा सत्याग्रह की सफलता के लिए प्रार्थना भी की गई।

सायंकाल लगभग ७० हजार लोगों की एक और बड़ी सभा हुई। इसमें जो मुख्य प्रस्ताव रक्खा गया वह इस प्रकार था—"दिल्ली के नागरिकों की यह बृहत् सभा प्रत्येक भारतवासी को देश के प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन की प्रेरणा देती है तथा महात्मा गांधी ने पलवल में स्वयं की गिरफ्तारी देकर जो उदाहरण उपस्थित किया है, उसका ही अनुकरण करने के लिए कहती है। यह सभा रॉलेट बिल को वापस लिये जाने की माँग करती है। यदि ऐसा नहीं होता तो हम अपने-आपको गिरफ्तार करायेंगे।"

जब इस प्रस्ताव को मत-संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाना था कि एक आश्चर्यजनक घटना हुई। एक व्यक्ति जो लोगों के सबसे आगे खड़ा था, धीमी किन्तु चुभती हुई आवाज में बोला—बन्द करो! यह क्या कर रहे हो? पलवल में ३०० गोरे सिपाही मारे गये हैं और एक हजार जाट अपनी लाठियों के साये में गांधी जी को यहाँ ला रहे हैं। तुम यह प्रस्ताव कैसे पास कर सकते हो? सभा भौचक्की-सी रह गई और सभापति समझ ही नहीं पाये कि उन्हें क्या करना है। मैं एकदम खड़ा हो गया और जोर से बोला—"मुझे पक्की सूचना है कि कल रात गांधी जी को गिरफ्तार कर मथुरा ले-जाया गया था और उनके डिब्बे को आज सवेरे बम्बई मेल से जोड़ दिया गया है। ऐसा लगता है कि यह आदमी सी०आई०-डी० का है, इसे पकड़ लो। परन्तु वह आदमी गायब हो गया। उसके गुप्तचर होने का सन्देह पक्का हो गया क्योंकि वहाँ पर गुप्तचर विभाग का एक इंस्पेक्टर, दो डिप्टी इन्स्पेक्टर तथा लगभग १२ सिपाही मौजूद थे, किन्तु किसी ने भी उसे गिरफ्तार करने का प्रयत्न नहीं किया, जो इस प्रकार की भयानक तथा झूठी अफवाहें फैला रहा था।

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९

बैरन ने स्थिति सँभाली

पलवल में गिरफ्तार होने के पश्चात् महात्मा गांधी के मन में भारतवासियों को स्वदेशी के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा कराने का विचार आया। यह प्रतिज्ञा इस प्रकार थी—"ईश्वर को साक्षी रखकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आगे से मैं भारत में ही उत्पन्न सूत, ऊन तथा रेशम से बने वस्त्र पहनूंगा। सभी प्रकार के विदेशों में बने सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों को त्याग दूंगा। मेरे पास जो भी विदेशी वस्त्र हैं उनको जला डालने का भी वचन देता हूँ।" १० एप्रिल १९१९ ई० को श्मशान-भूमि में प्रातःकाल के समय सैकड़ों व्यक्तियों ने यह प्रतिज्ञा धारण की। ११ और १२ एप्रिल को भी हड़ताल जारी रही। जब भी हमने दूकानें खुलवाने का प्रयत्न किया, लोगों ने यही कहा कि जबतक गांधी जी को छोड़ नहीं दिया जाएगा तबतक हड़ताल खतम नहीं होगी। १२ एप्रिल को प्रातः मुझे निम्न तार मिला जो बम्बई से ११ एप्रिल की सायं भेजा गया था—

"नजरबन्दी से छूटकर अभी आया हूँ। दुबारा गिरफ्तार होने के लिए चेष्टा करूँगा। आगे सूचना दूंगा। खेद है कि कुछ स्थानों पर जन-हानि हुई। अत्यन्त आवश्यक है कि लोग अपने को काबू में रक्खें तथा हिंसा से बचें। यह समाचार लाहौर, अमृतसर आदि को भेजें—गांधी।"

यह तार मिलने पर मैंने निम्न संदेश लाहौर में लाला दुनीचन्द को तथा अमृतसर के पुराने कांग्रेस कार्यकर्ता लाला कन्हैयालाल को तार से भेजा—

'अभी बम्बई से तार मिला है कि महात्मा गांधी छोड़ दिये गये हैं। जन-हानि का उन्हें खेद है। आत्म-संयम रखने तथा हिंसा से बचने की सलाह देते हैं। मैं भी शान्तिपूर्ण संयम पर जोर देता हूँ। आगे समाचार मिलने पर सूचित करूँगा। ईश्वर और सत्य आपको मार्ग दिखलाये।" उपर्युक्त तार के मसौदे कुछ व्याख्या चाहते हैं। पंजाब में अधिकांश में जिन लोगों ने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा की थी, वे आर्यसमाजी थे, और उन्होंने इस आन्दोलन में इसलिए प्रवेश किया था क्योंकि मैं इसका नेतृत्व कर रहा था। इसलिए ये लोग आगे कार्य करने के लिए मुझसे ही दिशा-निर्देश एवं प्रेरणा लेते थे। लाहौर में लाला दुनीचन्द तथा अन्य नेता अभी तक कारागार से बाहर ही थे, किन्तु अमृतसर के डॉक्टर सत्यपाल तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉक्टर किचलू को गिरफ्तार कर किसी अज्ञात स्थान पर ले-जाया गया था। इसलिए मेरे पास इसके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं था कि मैं महात्मा गांधी का सन्देश कांग्रेस के पुराने नेता लाला कन्हैयालाल को भेज दूँ। बाद में मुझे पता चला कि मेरे दोनों तार बीच में ही रोक लिये गये। किन्तु अमृतसर भेजे गये इस तार ने गुप्तचर विभाग के लोगों को जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड में निरपराध और असावधान लोगों को पकड़ने के लिए एक संकेत दे दिया। सी० आई० डी० के एक आदमी ने खाली कनस्तर पीटते हुए यह घोषणा की कि लाला कन्हैयालाल जलियाँवाला बाग में एक व्याख्यान देंगे। हजारों लोग जो सामान्य परिस्थिति में अपने घरों में ही रहते, इस देशभक्त को सुनने के लिए जलियाँवाला बाग में एकत्र हो गये क्योंकि लाला कन्हैयालाल ने गत कई वर्षों से कोई सार्वजनिक भाषण नहीं दिया था। इनमें से अनेक खूनी डायर की गोलियों के शिकार हुए और जीवित अवस्था में ही भून दिये गये। यह तो प्रसंगवश लिखना पड़ा। गांधी जी के इस तार से अपने को बद्धकवच मानकर मैंने स्थानीय पत्रों में एक सूचना भी प्रकाशित कराई और लोगों को हड़ताल समाप्त करने के लिए कहा। मैं बम्बई से गांधी जी का यह सन्देश सुनने की प्रतीक्षा कर रहा था कि वे दिल्ली के लिए चल पड़े हैं, किन्तु १३ की सायंकाल यह समाचार सुनकर मुझे असमंजसभरा आश्चर्य हुआ कि गांधी जी ने सत्याग्रह कार्यक्रमों को ही स्थगित कर दिया है तथा अपने ही देशवासियों के विरुद्ध अनशन प्रारम्भ कर दिया है। महात्मा गांधी के इस विचित्र कारनामे पर कोई टिप्पणी न करके मैं अन्य जन-नेताओं के साथ शहर में गया और लोगों को हड़ताल खत्म करने के लिए कहा। हमने कुछ दूकान-मालिकों को इस बात के लिए रजामन्द कर लिया था कि वे अपनी दूकानें खोल देंगे। इसी बीच एक घोड़े पर सवार होकर कर्नल वीडन कुछ अन्य सवारों के साथ आ गये और उन्हें देखकर दूकानें फिर बन्द कर दी गईं। तथापि सायंकाल एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें उपस्थित लगभग ३५ हजार लोगों से मैंने महात्मा गांधी के आदेशों को पालने के लिए कहा तथा दूसरे दिन से सामान्य कामकाज आरम्भ करने की प्रेरणा दी। इस सभा में एक ही प्रस्ताव पास किया गया और उसकी प्रति वायसराय के सचिव को तार से शिमला भेज दी गई। यह तार इस प्रकार था—"दिल्ली के नागरिकों ने आज सायंकाल एक विशाल सभा करके निम्न प्रस्ताव स्वीकार किया है—"दिल्ली के नागरिकों की यह सभा दिल्ली प्रशासन द्वारा ३० मार्च की घटनाओं की जाँच कराने के खिलाफ अपना प्रतिवाद प्रस्तुत करती है। कारण यह है कि उस दिन अनेक निर्दोष नागरिकों की हत्या और उन्हें घायल करने में दिल्ली प्रशासन स्वयं उत्तरदायी था। इसलिए प्रशासन को स्वयं अपने ही कृत्यों की जाँच के लिए न्यायाधीश बनने का अधिकार देना न्याय और निष्पक्षता के किसी भी सिद्धान्त के विरुद्ध होगा। तथापि यह सभा शाही सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आमन्त्रित करती है कि वह दिल्ली प्रदेश के बाहर के कुछ अफसरों को नियुक्त करे ताकि वे इस दुःखद प्रसंग के कारणों की जाँच के लिए दिल्ली के लोगों द्वारा नियुक्त गैर-सरकारी आयोग को इस जाँच के कार्य में सहयोग करें।"

इधर तो हम लोग इस बैठक में भाग ले रहे थे और उधर तेज आग की भाँति यह खबर फैल गई कि दिल्ली के नेता गिरफ्तार कर लिये जायेंगे। यह भी कहा गया कि प्रकटतः तो डिप्टी कमिश्नर ने इन्हें विचार-विमर्श के लिए ही बुलाया है, किन्तु वास्तव में इन्हें पकड़कर किसी अज्ञात स्थान पर ले-जाया जायगा। जब मैं डॉक्टर अन्सारी और लाला प्यारेलाल के साथ मोटर में बैठने लगा तो लोग भागकर आये और उन्होंने मोटर को रोककर चिल्लाना आरम्भ किया—"मेहरबानी करके कर्नल बीडन के पास मत जाइये, आप लोग पकड़ लिये जायेंगे! यदि आप जाते ही हैं तो हमें भी साथ चलने दीजिए।" मुझे किसी ऐसी मीटिंग का पता ही नहीं था, इसलिए मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैं वहाँ (कर्नल बीडन के पास) नहीं जा रहा हूँ। उन्हें बार-बार आश्वस्त करने पर उन्होंने हमें छोड़ा और मोटर कश्मीरी गेट की ओर बढ़ी। रास्ते में डॉक्टर अन्सारी और लाला प्यारेलाल ने मुझे बताया कि उन्हें सचमुच ही कर्नल बीडन ने बुलाया है और इसमें अधिक समय भी नहीं है। मैंने उन्हें इस बात के लिए विवश किया कि कर्नल बीडन के पास जाने से पूर्व वे मुझे मेरे निवास पर छोड़ दें।

१४ एप्रिल १९१९ ई० के प्रातः से ही लाठी लिये हुए सिपाही दिखाई पड़े। दोपहर को चीफ कमिश्नर ने स्थानीय नेताओं की बैठक बुलाई और सभी लोग टाउनहाल में एकत्र हुए। मध्याह्नोत्तर ३-४ के बीच में एक आदमी ताँगे पर और दूसरा पैदल सदर बाजार की ओर यह चिल्लाते हुए दौड़े कि स्वामी जी को (उन का मुझसे अभिप्राय था) रेलवे स्टेशन ले-जाया जा रहा है और वहाँ एक गाड़ी खड़ी है जिसमें बैठाकर उन्हें किसी अज्ञात स्थान पर ले-जाया जाएगा। सदर बाजार के रहनेवाले कुछ लोग, जो कुछ सैंकड़ों की संख्या में थे, अपने हाथों में लाठियाँ लेकर रेलवे स्टेशन की ओर दौड़ पड़े। तभी उन्हें पता लगा कि मैं तो अपने घर पर ही हूँ। तब हजारों की संख्या में लोग इकट्ठे होकर मेरे साधारण-से निवास-स्थान पर आ गये और मुझे सीढ़ियाँ उतरकर नीचे जाना पड़ा, यह बताने के लिए कि मैं पकड़ा नहीं गया हूँ। यदि मैं ऐसा नहीं करता तो उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता कि सब-कुछ ठीक-ठाक है।

इसी बीच हकीम अजमल खाँ और अन्य नेता टाउनहाल से लौट आये और उन्हें हकीम साहब के निवासस्थान पर सुरक्षित देखकर लोगों ने एडवर्ड पार्क में जाकर एक सभा की। यहाँ सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर फकीर मुहम्मद तथा एक हैडकान्स्टेबिल पर लोगों ने हमला भी किया, किन्तु सत्याग्रहियों ने उन्हें बचा लिया। इसी दिन सायं ६ बजे मुझे डिप्टी कमिश्नर का एक पत्र मिला, जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे दूसरे दिन सवेरे टाउनहाल में आयोजित एक बैठक में सम्मिलित होने के लिए कहा गया था।

१५ एप्रिल को मैंने और हकीम साहब ने शहर का भ्रमण किया और कसाइयों से अनुरोध किया कि वे अपनी दूकानें खोलें। १० बजे के बाद हम टाउनहाल में पहुँचे। अन्य नेता भी वहाँ उपस्थित थे। डिप्टी कमिश्नर के साथ चीफ कमिश्नर, पुलिस तथा सेना के अधिकारी भी वहाँ थे। ज्यों ही मैं भीतर प्रविष्ट हुआ, बाहर चाँदनीचौक सड़क पर 'महात्मा जी की जय' तथा 'हिन्दू-मुसलमान की जय' के नारे लगाये गये। अधिकारियों ने मुझे बाहर जाकर लोगों को शांत करने के लिए कहा। मैं बाहर गया और उन्हें शान्त होने के लिए कहा। इसपर वे सब चुप हो गये। किन्तु थोड़ी देर बाद कुछ और हलचल मची और उसका कारण स्पष्ट था।

मैंने पीछे मुड़कर देखा तो पता चला कि कर्नल बीडन बाहर आ रहे हैं। मैंने लोगों को पुनः शान्त होने के लिए कहा और कर्नल बीडन को भीतर ले गया। मैंने उस समय देखा कि भीड़ में लाठीधारी लोग स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। एक घण्टे के विचार-विमर्श के पश्चात् तय हुआ कि शहर के चौधरी और अन्य प्रमुख लोगों को भी बुलाया जाए तथा दिन के ४ बजे अन्तिम निर्णय लिया जाए।

हकीम अजमल खाँ और मैंने ४ बजे के लगभग लोगों से कहा कि वे अपना धन्धा शुरू करें और जब हम टाउनहाल पहुँचे तो हमने देखा कि कोई ५० नागरिक चीफ कमिश्नर तथा अन्य अधिकारियों से परामर्श कर रहे हैं। सड़क पर रानी विक्टोरिया की मूर्ति के आगे लगभग १५-२० हजार आदमी खड़े हैं। इनमें से आधे से अधिक लोगों के हाथों में लाठियाँ हैं। रेलवे रोड की ओर से भी कोई ३-४ हजार आदमी खड़े हैं। लोगों ने मुझे स्पष्ट कहा कि वे अपने नेताओं की रक्षा के लिए आये हैं और यदि उनके साथ कुछ ऐसा-वैसा होता है तो वे अपने नेताओं के लिए प्राण भी दे देंगे। मैंने उन्हें शान्त करने का प्रयास किया और कहा कि वे गलतफहमी में हैं। उत्तर में उन्होंने मुझे कहा कि मैं ही गलती पर हूँ वे नहीं, किन्तु शान्त रहने के मेरे आदेश का पालन करने का भी वचन दिया।

मैंने देखा कि डिप्टी कमिश्नर, पुलिस के मि० स्कॉट तथा अन्य सेना-अधिकारी सभी घबराये हुए हैं। किन्तु लोगों की उत्तेजना का कारण स्पष्ट था। टाउनहाल का एक कमरा गोरे सिपाहियों से भरा हुआ था। एक दर्जन से अधिक सेना के अफसर, जिनके हाथों में भरे हुए रिवॉल्वर थे, बैठक में आये हुए हैं तथा हाल की सबसे ऊँची छत पर एक मशीनगन फिट कर दी गई है, और इस सब पर एक हवाई जहाज शहर के ऊपर उड़ रहा है। अफवाह फैली कि यह हवाई जहाज अचानक टाउनहाल की छत पर उतरेगा और नेताओं को किसी अज्ञात स्थान पर ले जाएगा। इसीलिए सवेरे की ही भाँति १५ एप्रिल की सायंकाल को भी, जब-जब भी हवाईजहाज लोगों के सिरों पर उड़ता दिखाई देता, लोग 'महात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी की जय' तथा 'हिन्दू-मुसलमान की जय' के नारे लगाने लगते।

प्रत्येक अधिकारी उत्तेजित दिखाई दे रहा था, किन्तु इनमें दिल्ली के चीफ कमिश्नर माननीय मि० बैरन अकेले शान्तचित्त दिखाई दिये। ज्यों ही लोगों के प्रतिनिधियों के द्वारा उन्हें यह ज्ञात हुआ कि १० एप्रिल की हड़ताल महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के प्रति दु:ख व्यक्त करने के लिए की गई थी और वह इसी लिए जारी रही, क्योंकि लोगों को भय था कि उनके नेताओं को परेशान किया जाएगा, वे एकदम वक्त की माँग के मुताबिक उठ खड़े हुए और उन्होंने अपना स्मरणीय घोषणापत्र लिखा। इसके हिन्दुस्तानी भाषा में अनुवाद की १० हजार प्रतियाँ दूसरे दिन सवेरे लोगों में बाँट दी गईं। यह एक स्मरणीय अवसर था। यदि प्रदेश का मुखिया ही उस समय अपना सन्तुलन खो देता तो भयंकर परिणाम निकलता। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि अकेले मि० बैरन ने ही उस दिन स्थिति को बिगड़ने से बचाया था।

यहाँ मैं प्रसंग से हटकर यह भी कहना चाहूँगा कि मि० बैरन ने हमें (मुझे, डॉक्टर अन्सारी और हकीम साहब को) ही विश्वास में लिया था जिसके परिणाम-स्वरूप दिल्ली को मार्शल लॉ के भयंकर रूप से बचाया जा सका था। मि० बैरन ने मुझे एकांत में वायसराय का वह गोपनीय आदेश दिखाया, जिसमें चीफ कमिश्नर को सारे अधिकार दे दिये थे। इस आदेश में वर्णित बातें इतनी भयानक तथा सांघातिक थीं कि उनको लिखना भी कठिन है। मि० बैरन ने मुझे कहा—"स्वामी जी, मैं भारत की राजधानी में और खून की एक बूंद भी गिराना नहीं चाहता।" मैंने उत्तर दिया—"मि० बैरन, मेरा धर्म तो मुझे सब काल में रक्तपात से परहेज करने के लिए कहता है। किन्तु दिल्ली के निवासी इस समय मेरे विशेष संरक्षण में हैं।" इसपर मि० बैरन बोले—"इसी विश्वास के कारण मैंने आपको इस मीटिंग में खास तौर से आमन्त्रित किया है।"

मि० बैरन की घोषणा का जब डॉक्टर अन्सारी द्वारा हकीम साहब की सहायता से अनुवाद किया जा रहा था, म्युनिसिपल-उद्यान के दोनों ओर खड़ी भीड़ अपना धैर्य खो रही थी। जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस के उप-महानिरीक्षक के अनुरोध पर मैं बाहर गया और मैंने लोगों को शान्त किया और चीफ कमिश्नर की स्वीकृति से शासन तथा जनता के बीच की उस दीवार को खत्म कर दिया जिससे लोग एकदम शान्त हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०

दुःखद घटनाएँ

मि० बैरन की घोषणा निम्न थी—"१५ एप्रिल १९१९ ई० को जो बैठक दिल्ली के चीफ कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर तथा विभिन्न व्यवसायों के प्रतिनिधियों एवं समाज के नेताओं की उपस्थिति में हुई थी, उसमें यह कहा गया था कि हड़ताल के चलते रहने का कारण यह है कि अधिकारीवर्ग उन्हीं नेताओं को हानि पहुँचाना चाहता है जिनके साथ वह बातचीत कर रहा है। इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि इस धारणा के आधारहीन होने की घोषणा की जाए तथा चीफ कमिश्नर यह आशा करते हैं कि लोग उनके कथन का विश्वास करेंगे।

यह भी घोषणा की गई कि बूचड़खाने आज शाम खुल गये हैं तथा नागरिकों को अपने वचन के अनुसार अपनी दूकानें खोलनी चाहिएँ।

(**नोट**—दिल्लीवाले अपनी दूकानों को तबतक खोलना नहीं चाहते थे जबतक कसाई लोग अपनी हड़ताल खत्म न करें।)

चीफ कमिश्नर ने भारत सरकार को यह सूचित करने का वादा किया कि हड़ताल के जारी रहने का कारण था मि० गांधी का नजरबंद किया जाना। मि० गांधी ने तार भेजा है कि वे छोड़ दिये गये हैं और अहमदाबाद में स्वस्थ हैं।"

जब मि० बैरन ने इस घोषणा-पत्र का मसौदा मेरे हाथ पर रक्खा, उस समय अँधेरा हो रहा था और बाहर खड़े लोगों का धैर्य भी समाप्त हो रहा था। मैं तुरन्त बाहर आया और क्वीन्स गार्डन के द्वार के खोले जाने की प्रतीक्षा किये बिना ही तारों की जाली से बाहर कूद गया। बाहर खड़ी लगभग २० हजार से अधिक लोगों की भीड़ ने मुझे घेर लिया। उस समय प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में लाठी दिखाई दी। मैंने लोगों से कहा कि वे मेरे साथ डॉक्टर अन्सारी के घर तक चलें। उनका घर नगर के दूसरे छोर पर काफी दूर था। मैं पैदल ही चल पड़ा। लोग इतने अधिक उत्तेजित थे कि वे अपनी लाठियों से बिजली के लट्टुओं तथा सफाई के पात्रों को तोड़ते-फोड़ते चले। मैं एकदम रुका और तेज आवाज में उनसे कहा—"मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूंगा। मुझे लौट जाने दो। तुमने वादा किया है कि प्रत्येक व्यक्ति और सम्पत्ति के साथ अहिंसात्मक व्यवहार करोगे तथा केवल आत्मिक शस्त्र से ही अपनी लड़ाई लड़ोगे, और अब तुम अपना वादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोड़ रहे हो।" सारी भीड़ क्षण-भर को एकदम शांत हो गई। लाठियाँ भी नीचे कर ली गईं तथा एक आवाज गूंज उठी—"हम अपनी गलती मानते हैं। हम भौतिक शस्त्रों का प्रयोग नहीं करेंगे, हरगिज नहीं करेंगे। हम केवल आध्यात्मिक शक्ति का ही प्रयोग करेंगे।" इसके बाद तो वे बिना कुछ गड़बड़ किये सभास्थल तक आधा मील से अधिक रास्ते पर चुपचाप चलते रहे। वहाँ लगभग ५० हजार की उपस्थिति थी और मैंने उपर्युक्त घोषणा-पत्र को उनके समक्ष पढ़ा और उसे समझाया। डॉक्टर अन्सारी ने ध्वनि-विस्तारक के द्वारा अपनी बात कही, ताकि उनके कथन का प्रत्येक शब्द उस अपार भीड़ तक पहुँच सके। इसके बाद हम लोग लौट गये।

१५ एप्रिल की सायंकाल का दृश्य मेरे लिए आँखें खोल देनेवाला था। लाठियाँ लिये लोग अधिक संख्या में दिखाई दे रहे थे और काम के अभाव में कुशल मजदूर तथा अकुशल सामान्य श्रमिक आवारागर्द बन रहे थे। १४ एप्रिल को २० से अधिक सिरकीवाले मेरे पास आये और शिकायत की कि काम न मिलने से वे लोग भूखों मर रहे हैं। हकीम साहब ने उन्हें मेरे पास भेजा था और मैंने उनमें कुछ रुपया बाँटकर थोड़ी देर के लिए उन्हें चुप कर दिया। १९ तारीख को सवेरे वे फिर मेरे पास आये और जब मैं फिर उन्हें कुछ दानरूप में देने लगा तो उन्होंने उसे लेने से इन्कार कर दिया और कहा—"स्वामी जी महाराज, आप जल्दी ही हड़ताल को समाप्त करने का प्रयास कीजिये, अन्यथा हम लोग अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए लूट-खसोट करने पर उतर आयेंगे।" यह वास्तव में एक खतरनाक विचार था, किन्तु इसका कोई उपाय भी नहीं था।

इसके बाद एक और ५ एप्रिल के बीच हमारे आन्दोलन में सम्मिलित होने का विचार लेकर आनेवाले लगभग २० अत्यधिक सम्मानित सरकारी कर्मचारी भी मेरे पास आये। मैंने उन्हें ऐसा कदम, जो बाद में सुधारा नहीं जा सकता, उठाने के पहले १५ दिन तक इस मामले पर गम्भीरता से विचार करने के लिए कहा। अब वे जब फिर मेरे पास आये तो मैंने उन्हें वास्तविक स्थिति समझाई। इस प्रकार वे लौकिक हानि उठाने से बच गये। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि अपने ही देशवासियों के खिलाफ अनशन आरम्भ करते समय महात्मा गांधी ने ही स्पष्ट लिख दिया था कि वीरमगाँव, अहमदाबाद तथा अन्य स्थानों पर हुई गड़बड़ के पीछे किसी चालाक व्यक्ति या समूह का हाथ है। महात्मा जी के इसी वाक्य को अब वायसराय तथा भारत-मन्त्री के द्वारा भी इस तथ्य के प्रमाणरूप में उद्धृत किया जाने लगा कि सत्याग्रह आन्दोलन के पीछे बोल्शेविक लोगों का दिमाग तथा धन की शक्ति काम कर रही है। दिल्ली के सत्याग्रहियों ने तो एक विश्वसनीय तथा योग्य व्यक्ति के माध्यम से महात्मा जी को एक प्रतिवाद-पत्र भी भेजा। इस व्यक्ति ने साबरमती में महात्मा जी से व्यक्तिशः इस बात पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चा भी की, किन्तु उसे जो उत्तर दिया गया, वह कतई सन्तोषप्रद नहीं था।

१६ एप्रिल के सवेरे तक इस प्रकार की स्थिति थी, जबकि सारे नेता चाँदनी चौक की दूकानों को खुलवाने में लगे हुए थे। अभी यह कार्य आधे चाँदनी चौक तक ही पहुँचा था कि अचानक घोड़े पर सवार कर्नल बीडन, पुलिस के मि० स्कॉट तथा सिपाहियों की एक बड़ी टुकड़ी को लेकर घण्टाघर से फतहपुरी की ओर आये। दुकानों को पुनः बन्द करने का यह एक संकेत था। हमने लोगों को हड़ताल बन्द कर देने के लिए मनाया, किन्तु उन्होंने कहा—"जो आदमी हमें बदमाश कहता है वह यही कहेगा कि हड़ताल तुड़वाने में उसे सफलता मिली है। वह ऐसा नहीं कर सकेगा।" दोपहर तक हम प्रयत्न करते रहे, उसके पश्चात् हमने यह प्रयास त्याग दिया और हकीम अजमल खाँ के घर पर विचार-विमर्श किया।

लगभग ३ बजे हमें समाचार मिला कि पुलिस की तमाम अतिरिक्त टुकड़ियों को शहर से हटाया जा रहा है और सामान्य पुलिस का आधा भाग भी दूर भेजा जा रहा है। लोगों ने इस परिस्थिति के अनुकूल आचरण किया और नगर की रक्षा तथा रात की चौकदारी के लिए सैंकड़ों लोगों ने स्वयंसेवक के रूप में अपनी सेवायें दीं। उस रात में किसी भी अपराध की कोई सूचना नहीं मिली।

१६ एप्रिल को अर्धरात्रि के समय जन-प्रतिनिधि पारस्परिक विचार-विमर्श के लिए पुनः बैठे, क्योंकि मि० बैरन के सहानुभूतिपूर्ण रुख के प्रति हमें अपना रवैया भी जाहिर करना था। उस रात की बैठक में मैं शरीक नहीं हो सका क्योंकि पूरे १६ दिनों की असाधारण घटनाओं के दबाव ने मेरे स्वास्थ्य को प्रभावित किया था। रात को १२ बजे के बाद हकीम अजमल खाँ, रायबहादुर सुलतानसिंह और डॉक्टर अन्सारी मेरे निवास पर आये और मुझे जगाया। उन्होंने मुझे बताया कि डिप्टी कमिश्नर (कर्नल बीडन) ने फोन पर कहा है कि अगले दिन सवेरे के लिए वे हमें पुलिस को सहायता दे सकते हैं और इसके बारे में उन्होंने मेरी राय पूछी। मैंने उत्तर में उन्हें कहा कि यदि पुलिस हस्तक्षेप करेगी तो दुकानें खुलवाने के काम में मैं उनकी सहायता नहीं करूँगा तथा १७ एप्रिल को उनके इस कार्य में सम्मिलित नहीं होऊँगा। उन्होंने कर्नल बीडन को फोन पर मेरे विचार बताने का वादा किया और कहा कि यदि पुलिस की सहायता नहीं लेनी होगी तो वे मेरे लिए सवारी भेजेंगे।

दूसरे दिन कुछ बहकावे में आये लोगों के विरोध के बावजूद हम दोपहर तक सभी व्यापारिक प्रतिष्ठानों को खुलवाने में सफल हुए। किन्तु अपने वादे के खिलाफ लगभग ११ बजे डिप्टी कमिश्नर ने लाठियों से लैस पुलिस की कई दर्जन टुकड़ियाँ वहाँ भेज दीं जो गली-कूचों में गश्त लगाने लगीं। हमने जिला-मजिस्ट्रेट तथा पुलिस-अधीक्षक को फोन पर कहा कि वे दो घण्टों के लिए पुलिस को वहाँ से हटा लें, किन्तु कुछ भी नहीं हुआ। अन्ततः आखिरी दुकान को भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुलवाकर जब हम लौट रहे थे, हमने घण्टाघर के निकट भारी शोरगुल सुना। जब हम नजदीक आये तो लोगों को चिल्लाते हुए सुना—

"तुम लोगों ने हमें बरबाद कर दिया है। तुम तो दूकानें खुलवा रहे हो और उधर पुलिस हमारे आदमियों को घसीटकर टाउनहाल की ओर ले-जा रही है। बन्दूकों के कुन्दों से घायल होकर उनके शरीर से रक्त बह रहा है।" मैंने लोगों से कहा कि वे संयम से काम लें, किन्तु कार में रायबहादुर तथा मोटरों के व्यापारी लाला प्यारेलाल को मेरे पास बैठा देखकर वे उनपर लाठियों का प्रहार करने के लिए तैयार हुए। ड्राइवर ने बहुत बहादुरी के साथ उन प्रहारों को अपने हाथ पर ही झेल लिया और इस प्रकार दोनों नेता पीछे के दरवाजे से निकल गये। मैं नीचे उतरा और लोग मेरे चारों ओर एकत्र हो गये। वे सब उत्तेजना-वश एक-दूसरे के कथन का प्रतिवाद कर रहे थे, अपने नेताओं को बुरा-भला कह रहे थे तथा सब प्रकार की धमकियाँ भी दे रहे थे। इसी समय मैंने अपना सिर उनके आगे कर दिया और कहा—"ऐसा लगता है कि जब तक तुम लोग किसी का सिर नहीं तोड़ दोगे तब तक शान्त नहीं होंगे। यह मेरा सिर तुम्हारे आगे है, इसे तोड़ दो। यही करो और इसके बाद ही मैं तुम्हारी बात सुनूंगा।" इसपर गम्भीर शान्ति छा गई और इसके बाद वे लोग एकस्वर से बोले—"हम आपके लिए जान दे देंगे। हमें आपमें पूरा विश्वास है।" तब मैं कार में बैठ गया और कहा—"अब आप सब यहीं रहें। मैं टाउनहाल जाता हूँ और पता लगाता हूँ कि माजरा क्या है ?" किन्तु भीड़ चिल्ला उठी—"हम आपको वहाँ नहीं जाने देंगे। वे राक्षस आपको मार डालेंगे और तब हमें कौन रास्ता दिखायेगा ?" लोगों ने अपनी पूरी शक्ति से कार को धकेला और मुझे जबरदस्ती हकीम अजमल खाँ के घर पर ले आये। वहाँ से मैंने टाउनहाल से टेलीफोन पर तीन बार बात करनी चाही किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। उसके पश्चात् गोली चलने की आवाज सुनाई दी और मैं फिर टाउनहाल की ओर चल पड़ा। मैं अभी पचास कदम से अधिक नहीं चला होऊँगा कि लोगों द्वारा अपने कन्धों पर बिठाकर लाये गये घायल व्यक्ति दिखाई दिये। मैं लौट पड़ा और इन घायलों की देखभाल करने लगा। डॉक्टर हरिशंकर को फोन पर सूचना दी। वे तुरन्त आ गये और लोगों के घावों पर पट्टी बाँधकर उन्हें वहाँ से ले गये।

जब मैं हकीम साहब के घर पर आया तो पता चला कि वे स्वयं डॉक्टर अन्सारी के साथ टाउनहाल की ओर चले गये हैं। उन्होंने कर्नल बीडन से पूछा कि वे गिरफ्तार किये गये नौजवान (गौरीशंकर—आयु लगभग २० वर्ष) को उन्हें दिखायें। उन्होंने कहा कि उसके शरीर पर कोई घाव नहीं है और कर्नल बीडन से उन्होंने उसे ले-जाने की आज्ञा माँगी ताकि लोगों को यह कहकर शान्त किया जा सके कि उसे कोई चोट नहीं आई है। हकीम साहब ने मुझे बतलाया कि ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से सरकार की प्रतिष्ठा को आँच आएगी। उसने आज्ञा नहीं दी और इसी बीच गोलियाँ छूटने की आवाज सुनकर वे भौचक्के-से रह गये। मैंने तुरन्त तार भेजकर वायसराय को उस दिन की स्थिति से सूचित किया, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला।

ऐसा लगता है कि जब मैं हकीम साहब के घर की ओर ले-जाया जा रहा था, टाउनहाल के बाहर गुण्डों का एक गिरोह इकट्ठा हो गया। पुलिस ने इसपर हवा में गोलियाँ चलाईं। इसपर भीड़ फतहपुरी की ओर बढ़ी। रास्ते में उन्हें बिना वर्दी पहने पुलिस का एक हैड कान्स्टेबिल मिला जो अपने परिवार के लिए दवायें लेकर घर जा रहा था। नेताविहीन भीड़ उस आदमी पर टूट पड़ी और उसे मृतप्राय करके छोड़ा। तब उन्हें बल्लीमारान चौक में पुलिस की टुकड़ी दिखाई दी जिसे उन्होंने भगाने का प्रयत्न किया। अब पुलिस को केवल आत्म-रक्षा में ही गोली चलानी पड़ी। इसपर गुण्डे तो भाग गये किन्तु लगभग एक दर्जन निर्दोष तमाशबीन गोलियों का शिकार हुए।

इस प्रकार उस शानदार आन्दोलन का अन्त हुआ जिसे दिल्ली में एक पखवाड़े से अधिक समय तक जारी रक्खा गया था। दिल्ली के लिए उसी शाम से षड्यन्त्रकारी सभाओं के प्रतिरोध का कानून लागू कर दिया गया और सारे नेता गायब हो गये। परिणाम यह निकला कि १८ एप्रिल को जब सूर्योदय हुआ, तो नेताओं का एक भी अवशेष नजर नहीं आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११

त्यागपत्र

रात को १२ बजे तक मैं घायलों के समीप रहा और १८ एप्रिल को प्रातः संध्या समाप्त कर जनरल अस्पताल में उन घायलों को देखने के लिए गया जिनमें से दो की हालत बहुत चिन्ताजनक थी। ये दोनों हिन्दू थे। इनमें से एक की बड़े सवेरे मृत्यु हो गई। दूसरा जो १४ वर्ष का पहाड़ी बालक था, स्वयंसेवकों की देखभाल में था। मृत व्यक्ति का शव ११ बजे से पहले शवपरीक्षण किये बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता था, इसलिए मैंने शहर का एक दौरा किया। नगर में पूरी हड़ताल थी, किन्तु लोगों में मानो जान ही नहीं थी। इनमें से अच्छे व्यक्तियों का भी उत्साह भंग हो चुका था। सभी नेता लोग अपने घरों में घुसे बैठे थे और मुसलमान हिन्दुओं पर खुलेआम कायरता दिखाने का आरोप लगा रहे थे। कुछ लोगों ने यहाँ तक कहा बताया कि ये धोतीप्रसाद लाला घायल मुसलमानों को छोड़कर भाग खड़े हुए। इन घायल मुसलमानों में से एक तो मर गया है जबकि कोई हिन्दू नहीं मरा। अब कोई हिन्दू दिखाई भी नहीं पड़ता।

साढ़े ग्यारह बजे मैं अस्पताल लौटा और अपने दिवंगत भाई की अर्थी तैयार कराने की व्यवस्था की। कुछ मुसलमान शुक्रवार की नमाज के लिए जामा मस्जिद की ओर, समीप से जा रहे थे। जब उन्होंने मुझे वहाँ देखा तो वे आश्चर्य में बोल पड़े--अरे म्याँ, शर्माजी तो यहाँ हैं! वे भीतर आये और उन्होंने माफी माँगी। उन्होंने कहा—लोग कहते हैं कि आपने लोगों को छोड़ दिया है। ऐसा कहनेवाले झूठे हैं। आप हमें नहीं छोड़ सकते। और जब उन्होंने सुना कि मृतक हिन्दू है तो वे मेरे पैरों में पड़ गये—"स्वामीजी, आप हमें केवल डेढ़ घण्टे का समय दीजिये, हम आपके पास आ जायेंगे।" अर्थी तैयार करने में हमें एक घण्टा और लगा। अस्पताल में केवल ३५ हिन्दू ही एकत्र हुए थे, किन्तु जब हम जामा मस्जिद के पास पहुँचे तो हजारों मुसलमान अर्थी के साथ हो लिये और हर एक हिन्दू भी उनके पीछे-पीछे चला। नई सड़क एक किनारे से दूसरे किनारे तक लोगों से भर गई थी। सभी लोग नंगे सिर थे। पुलिस या सेना को हस्तक्षेप करने का साहस ही नहीं हुआ।

श्मशान में अन्तिम समय तक लगभग २० हजार व्यक्ति मौजूद थे। 'षड्यंत्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी मीटिंग प्रतिरोध कानून' की प्रत्यक्ष अवहेलना कर हमने मीटिंग की। अनेक भाइयों द्वारा उपदेश दिये गये। इसके समाप्त होने पर लोगों ने मुझसे पूछा कि अब आगे क्या करना चाहिए? मैंने उन्हें कहा कि उन्हें बिना नेता के नहीं रहना चाहिए। मैंने यह सुना था कि पुराने नेताओं के प्रति उनका विश्वास समाप्त हो गया है। मैंने उन्हें कहा कि नये नेताओं को चुने बिना उन्हें यहाँ से नहीं जाना चाहिए। पाँच मिनट तक शान्ति छाई रही, और उसके बाद लोगों ने सम्मिलित स्वर में पूछा—क्या आपका पुराने नेताओं में विश्वास है? उत्तर में मैंने कहा कि उनके प्रति मेरा विश्वास तो हिला नहीं है। वहाँ उपस्थित हजारों लोगों ने एक-स्वर से कहा कि वे अपने नेताओं का अनुसरण करेंगे। अब हड़ताल को समाप्त करने का सवाल आया। मैंने इस बारे में उन्हें सलाह देने से तब तक के लिए इन्कार किया जब तक कि वे उसे शब्दशः नहीं मानते। उन्होंने मुझे ऐसा करने का वचन दिया और मैंने उन्हें स्पष्ट शब्दों में कहा—"कल सवेरे ८ बजे तक सारी दुकानें अपने-आप खुल जानी चाहिएँ। यमुना-स्नान और विलम्ब से पूजा आदि करने का कोई बहाना नहीं सुना जाएगा।" यह वादा लोगों ने किया और सब लोग चले गये।

१९ एप्रिल को मैं सवेरे पौने नौ बजे घर के नीचे उतरा ही था कि भाई सी०एफ० एण्ड्रूज मेरे घर की ओर आये। मैं उनकी कार में बैठा और उनसे सुना कि मार्शल लॉ लागू करने की सारी तैयारियाँ की जा चुकी हैं और यदि ९ बजे तक दूकानें नहीं खुलीं तो शहर का प्रशासन सेना ले लेगी। हम लोग धीरे-धीरे चले ताकि ९ बजे घण्टाघर पहुँच सकें। खारी बावली का बाजार खुला हुआ था और जब हम फतहपुरी मस्जिद के पास पहुँचे तो लगा कि एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारा चाँदनीचौक कारोबार में लगा हुआ है। जब हम घण्टाघर पहुँचे, उस समय ठीक ९ बजे थे। टाउनहाल के दरवाजे से कर्नल बीडन घोड़े पर सवार होकर निकले, किन्तु जब उन्होंने देखा कि सारा बाजार खुला हुआ है तो उन्हें लौट जाना पड़ा और चिन्ता की घड़ी थोड़ी देकर के लिए बीत गई। मैं इन बातों के विस्तार में तो नहीं जाऊँगा कि किस प्रकार कर्नल बीडन स्थानीय नेताओं को अपमानित करना चाहता था और किस प्रकार हमने भाई एण्ड्रूज की सहायता से उसे ऐसा करने से रुकवाया, विपत्ति के समय दिल्ली के शहीदों के परिवारों की किस प्रकार सहायता की गई, आगे हड़ताल और होने की अफवाहों का मैंने किस प्रकार प्रतिवाद किया, स्थानीय मुकद्दमे-मामलों में फँसाये गये बेकुसूर लोगों को कैसे बचाया गया और उनकी मदद की गई, और दिल्ली को पंजाब के मार्शल लॉ के दिनों की विभीषिका से कैसे बचाया गया। मैं अपने कथन को उन्हीं तथ्यों तक सीमित रक्खूंगा कि महात्मा गांधी के सत्याग्रह से मेरा सम्बन्ध कैसे टूटा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निम्न तथ्यों की जानकारी के बिना सत्याग्रह समिति से मेरे त्यागपत्र की बात समझ में नहा आएगी—

(१) गांधी जी ने सत्याग्रह को वापस लेते समय जो घोषणापत्र जारी किया था उसमें सरकारी फौज और पुलिस के द्वारा शान्त नागरिकों को मारे जाने की जिम्मेदारी भी सत्याग्रहियों के कंधों पर ही डाली थी। दिल्ली के लोगों के द्वारा किये गये प्रतिवाद का भी उनपर कोई असर नहीं हुआ था और वे अपनी राय पर दृढ़ थे।

(२) लाला शंकरलाल पर यह झूठा इलजाम लगाया गया था कि सी० आई० डी० के इन्स्पेक्टर फकीरमुहम्मद को पीटने के लिए उन्होंने लोगों को भड़काया। लाला शंकरलाल इसके लिए गिरफ्तार कर लिये गये थे। गांधीजी ने शंकरलाल को तार भेजकर कहा कि वे अपना कोई बचाव नहीं करें और सच्चे बयान दें। मैंने इसका प्रतिवाद करते हुए गांधी जी को लिखा कि वे तथ्य को जाने बिना हस्तक्षेप न करें। जब और जहाँ फकीर मुहम्मद को पीटा गया था वहाँ तो लाला शंकरलाल मौजूद भी नहीं थे। अतः महात्मा गांधी का यह कहना कि वे सच्चे बयान दें और अपना बचाव न करें, क्या अर्थ रखता था ? इसका उत्तर एक बंद लिफाफे में आया जिसमें कहा गया था कि उपर्युक्त परिस्थितियों में हमें लाला शंकरलाल के बचाव की आज्ञा दी जाती है। मेरा विचार था कि गांधी जी के तार ने अदालत को हमारे कामों के प्रति पूर्वाग्रही बना दिया है। हमने उनका बचाव किया। नागपुर से वकील अभ्यंकर गवाहियों से जिरह करने के लिए आये और स्व० देशबन्धु चित्तरंजनदास ने इस मामले में बहस की, जिसके कारण हमारा भाई सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया।

(३) हर डाक से गांधी जी द्वारा भेजे गये ऐसे पोस्टर आते थे, जिनमें सत्याग्रहियों से कहा जाता था कि यदि वे पुलिस द्वारा वांछित हैं तो वे अपने-आपको गिरफ्तार करा दें। अन्य प्रकार के आपत्तिजनक पोस्टर भी नित्यप्रति आ रहे थे। मैंने इन सभी पोस्टरों को जला डालने का आदेश दिया और बिना किसी से सलाह लिये महात्मा गांधी द्वारा जारी किये जानेवाले इन अनावश्यक हुक्मनामों के विरोध में स्थानीय सत्याग्रह समिति से अपने-आपको विघटित कर लिया।

(४) महात्मा गांधी के इन आदेशों से ताकत पाकर पुलिस आई और समिति के मंत्रियों से उन लोगों की सूची माँगी जो सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर चुके थे। मंत्रियों ने गुप्तचर विभाग के उप-अधीक्षक को मुझसे सम्पर्क करने के लिए कहा। मैंने उससे स्पष्ट कहा कि हमारी समिति तो विघटित की जा चुकी है और मैं उसे ऐसी कोई सूची नहीं दूँगा। जब उसने इसके नतीजों की बात कही तो मैंने उसे कहा कि वह अपना काम देखें और जाकर मुझपर मुकद्दमा चलायें।

अवशिष्ट कारण मैंने दिल्ली की कथा कहते समय बता ही दिये हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबका परिणाम २ मई १६१६ ई० को मेरे त्यागपत्र के रूप में आया। इसे बम्बई में सत्याग्रह समिति के समक्ष पढ़ा गया। इसी के परिणामस्वरूप श्री जमनादास द्वारकादास तथा अन्यों का भी त्यागपत्र आया, और यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो ऐसे अनेक लोग जो सत्याग्रह आन्दोलन में जाने की इच्छा लेकर ही वहाँ गये थे, वे भी उससे दूर हट गये। मैं यहाँ अपने त्यागपत्र को उद्धृत कर रहा हूँ जिससे सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी—

"सरकार द्वारा उठाये गये रॉलेट बिल जैसे असाधारण कदम के सम्बन्ध में आपके द्वारा प्रस्तावित सत्याग्रह का व्रत लेने से पूर्व ही मैं न केवल अहिंसा और सत्य को दृढ़ता के साथ व्यवहार में लाने का ही उपदेश देता था, अपितु यम और नियमों में वर्णित अन्य सद्‌गुणों को भी धारण करने पर बल देता था। मैं ब्रह्मचर्य के नियमों के पालन पर विशेष जोर देता था क्योंकि मैं इसे ही सब गुणों का मूल मानता हूँ। मेरा विचार था कि अकेले ब्रह्मचर्य के पालन से ही संसार के वर्तमान संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है। सत्याग्रह का व्रत लेने के पश्चात् मैंने पत्रों के माध्यम से सत्याग्रहियों के लिए एक संदेश प्रसारित किया, जिसमें ब्रह्मचर्य को सफलता की एक आवश्यक शर्त कहा गया था।

आप जानते हैं कि मेरी प्रचलित राजनीति में भाग लेने की कतई रुचि नहीं थी। मॉण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड द्वारा प्रस्तावित सुधारों से तो मेरा और भी कम वास्ता रहा। मेरी सदा से यह धारणा रही है कि भारत के राजनीतिज्ञ अपने शासकों से गोलमेज सम्मेलनों के द्वारा कुछ भी हासिल नहीं कर सकेंगे क्योंकि ये लोग गत हजार वर्षों से दुनिया की कूटनीति पर छाये हुए हैं। मेरी राय में राजनैतिक अधिकारों को प्राप्त करने का एक ही तरीका है कि हम खुद अपने शासकों को सुधार की योजनायें बनाने की इजाजत दे दें।

किन्तु रॉलेट कानून ने मानवी स्वतन्त्रता तथा न्याय के इन प्राथमिक सिद्धांतों की जड़ पर ही कुठाराघात किया है, इसलिए जब आपकी ओर से यह आह्वान आया तो मैंने उसे अपने सम्पूर्ण हृदय तथा आत्मा से स्वीकार किया, यह जानकर कि आप हमारी पुरातन आध्यात्मिक संस्कृति के मूर्तिमान रूप हैं।

जब रॉलेट विधेयक का एक अंश पारित हो गया और उसने कानून की शक्ल ले ली, तो आपका आदेश आया कि हमें विनम्रता तथा प्रार्थना के रूप में एक दिन मनाना चाहिए। सारे देश ने आपके आह्वान का अभूतपूर्व इच्छाशक्ति से अनुकूल उत्तर दिया। ३० मार्च १६१६ ई० के बाद दिल्ली में क्या घटित हुआ, इसे सारा भारत जानता है। तब दिल्ली की ओर आते हुए आप रास्ते में गिरफ्तार कर लिये गये और सारा देश इससे पूर्णतया हिल उठा। सरकार के इस अनुचित क़दम के परिणामों से सब लोग भली-भाँति परिचित हैं।

अहमदाबाद, वीरमगाँव, अमृतसर तथा कसूर आदि स्थानों पर बहकाये हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा विकृतबुद्धि लोगों के द्वारा जो अत्याचार और अनाचार किये गये, उनकी निन्दा करने में मैं भी आपके साथ रहा हूँ। इसी प्रकार सामाजिक सम्पत्ति को नष्ट करने और आग लगाने, खासतौर से अमृतसर और गुजराँवाला में गिरजाघरों को जलाने के जो बीभत्स कृत्य किये गये उनके प्रति मैंने अपनी घृणा के भाव को प्रकट किया है। हिन्दुस्तानी ईसाई धर्मयाजकों को मार डालने तथा स्त्रियों पर पाशविक हमले किये गये, उससे मुझे भी भयंकर धक्का लगा है। मैं आशा करता हूँ कि अमृतसर और अन्य स्थानों के लोग इन गिरजाघरों के पुनर्निर्माण के कार्य में सहायता पहुँचाकर अपने अपराधों का परिमार्जन करेंगे और इस प्रकार उन यूरोपियन तथा भारतवासी भाइयों के परिवारों से व्यावहारिक सहानुभूति दिखायेंगे जो मार डाले गये हैं।

किन्तु दिल्ली तथा कई अन्य स्थानों पर अधिकारियों के द्वारा जो जानबूझकर उत्तेजना पैदा की गई तथा कानून और व्यवस्था के नाम पर पंजाब में जो भीषण कृत्य किये गये, उनके प्रति आपके मौन से भी मैं सहमत नहीं हूँ।

सरकारी अधिकारियों द्वारा लोगों के प्रति किये गये अत्याचारों तथा निरंकुशतापूर्ण कृत्यों के विरोध में यदि मैं अपनी आवाज नहीं उठा सका हूँ तो उसका कारण भी यही है कि पंजाब सरकार के कहने में आकर दिल्ली के समाचार-पत्रों का गला घोंट दिया गया है तथा दिल्ली से भेजे जानेवाले तारों तथा पत्रों पर अंधाधुंध सेन्सर बिठा दिया गया है। अब आपको यह पत्र लिखने के अवसर के सम्बन्ध में निवेदन करूँ। मेरे हृदय में आपके व्यक्तित्व तथा आपके साधु चरित्र के प्रति अत्यधिक सम्मान का भाव है, इसलिए किसी खास मुद्दे पर आपसे मतभेद रखते हुए मुझे अत्यन्त पीड़ा का अनुभव होता है। किन्तु यदि मैं तात्त्विक दृष्टि से आपसे मतभेद रक्खूँ और फिर बात को प्रकट न कर तथा उसके परिणामों को न झेलूं तो यह अपने प्रति असत्याचरण होगा।

आपने ब्रिटिश कानूनों की अवज्ञा करने के आन्दोलन को अस्थायी तौर से स्थगित कर दिया है, क्योंकि आपकी राय में देश में इस समय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है और यह आन्दोलन समय के अनुरूप नहीं है। आपको फिर भी आशा है कि जब देश का वातावरण पुनः शान्त हो जाएगा और लोग सत्याग्रह के सिद्धान्तों को पूर्णतया आत्मसात् कर लेंगे तो इसे पुनः आरम्भ किया जा सकेगा। किन्तु मेरी तो यह धारणा है कि जब तक सरकार का वर्तमान ढाँचा जारी रहता है, तब तक देश में शान्ति स्थापित होने की कोई सम्भावना नहीं है और न अधिकांश लोगों में, जिसे आप सत्याग्रह के वास्तविक सिद्धान्त कहते हैं, उन्हें समझने की भावना ही पैदा हो सकेगी। क्योंकि केवल कागज पर सत्याग्रह के प्रति सहानुभूति प्रकट कर देने से ही ऐसा नहीं होता। अतः मैं इस बात का पूर्णतया कायल हूँ कि भारत की वर्तमान परिस्थितियों में, आम जनता में बहुत बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन लाये बिना विदेशी कानूनों की अवज्ञा सर्वथा असम्भव ही है। इसलिए आपके विचारों के ही अनुरूप मैं भी यह मानता हूँ कि रॉलेट एक्ट से भिन्न अन्य कानूनों को न मानने के लिए अनुकूल अवसर निकट भविष्य में आना असम्भव हो है। मेरी यह भी राय है कि जब भारत में वास्तविक शान्ति स्थापित हो जायेगी और रॉलेट एक्ट खत्म हो जाएगा, तब भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का कोई भी अवसर नहीं आएगा। इस सबका परिणाम यह है कि सत्याग्रह की आपके द्वारा निर्धारित प्रतिज्ञा के पत्र पर हस्ताक्षर करने का वास्तविक कारण ही अब समाप्त हो गया है, इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप अपने द्वारा स्थापित सत्याग्रह सभा से मेरा नाम पृथक् कर दें। एक संन्यासी होने के नाते मैं धर्म के उन शाश्वत सिद्धांतों को प्रचारित करने का कार्य जारी रक्खूंगा जो सत्य, अहिसा तथा ब्रह्मचर्य की धारणाओं में निहित हैं।

व्यक्तिश:, पारित रॉलेट एक्ट तथा प्रस्तावित रॉलेट बिल के बारे में मेरी धारणा अपरिर्वातित ही है और यह मेरा धार्मिक कर्त्तव्य होगा कि जब भी इन कानूनों के अन्तर्गत कोई आदेश प्रसारित किये जायेंगे तो मैं उनका पालन नहीं करूँगा।

इन कानूनों को वापस लिये जाने के लिए मैं अपनी आध्यात्मिक साधना को जारी रक्खूंगा। किन्तु धर्मप्रचार के अतिरिक्त मेरे देशवासियों के प्रति निम्न रचनात्मक कार्य हेतु मेरी सेवायें सदा उपलब्ध रहेंगी—

(१) भारत की एकता जिसके अनुसार हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख तथा ईसाई आदि सभी को एक समान मंच पर लाना तथा सामूहिक पंचायतों के द्वारा उनके मतभेदों में सामंजस्य लाना।

(२) स्वदेश-निर्मित वस्तुओं को लोकप्रिय बनाना।

(३) हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित करना, तथा

(४) प्रचलित सरकारी विश्वविद्यालयों की प्रणाली से भिन्न शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली को विकसित करना।"

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२

कांग्रेस अधिवेशन का स्थान

हड़ताल के समाप्त होनेवाले दिन मैंने हरिद्वार-स्थित गुरुकुल के वार्षिकोत्सव में जाने का विचार किया। किन्तु दिल्ली के नेताओं ने मेरे दरवाजे पर धरना दे दिया और मुझे तब तक नहीं छोड़ा जब तक कि मैंने वहाँ जाने का विचार ही त्याग नहीं दिया। कर्नल बीडन ने सभी रईसों के नाम विशिष्ट कान्स्टेबिलों के रूप में अपनी सूची में अंकित कर लिये थे और उन्हें आदेश दिया गया था कि वे अपने समीप के पुलिस स्टेशन पर जाकर रिपोर्ट किया करें। यह सारी व्यवस्था मि० बीडन ने ही की थी। इसलिए बेचारे बहुत-से रईस तो शिमला चले गये, जहाँ उनके विचार में वे अधिक सुरक्षित थे।

इसी बीच सर माइकेल ओडायर वायसराय के कानों में निरन्तर यह फूंक मारते रहे कि पंजाब में जो गड़बड़ हुई उसकी योजना मैंने ही दिल्ली बैठे-बैठे बनाई है और जब तक मुझे गिरफ्तार नहीं किया जाता, तब तक पंजाब की अशान्ति समाप्त नहीं होगी। दिल्ली के चीफ कमिश्नर को शिमला बुलाया गया। जब मि० बैरन लौटकर आये तो यह बाजारू गप्प फैली कि बैरन ने मुझे गिरफ्तार करने से इन्कार कर दिया है। इस अफवाह की सचाई को प्रमाणित करना मेरे लिए सम्भव नहीं था। किन्तु आगे जो कुछ हुआ, उसकी जानकारी मुझे दिल्ली के रईसों के एक वर्ग से मिली जो इससे सम्बन्धित था। गुप्तचर विभाग के तत्कालीन निदेशक सर चार्ल्स क्लीवलैण्ड ने एक हिन्दू वकील को बुलाया। उन तीनों से मुझे गिरफ्तार करने के विषय में पूछा और कहा—"यदि शान्ति और व्यवस्था के हित में स्वामी श्रद्धानन्द को पकड़ना अत्यन्त आवश्यक हो जाये, तो उसमें आपकी क्या राय है?" मेरे इन विगत काल के साथियों ने सलाह दी—"यदि शान्ति और व्यवस्था कायम रखने में गिरफ्तारी की जाती है तो उन्हें गिरफ्तार कर लेना चाहिए।" रईस लोग तो यह कहकर बाहर आ गये, किन्तु चतुर वकील ने इस बात पर जोर दिया कि यदि मेरे पकड़े जाने पर शहर में उपद्रव और हलचल मचे तो इन्हीं राय देनेवालों को पकड़ना चाहिए। इसपर यह तिकड़ी पुनः लौटकर आई और सर चार्ल्स से कहा कि यदि मुझे पकड़ना आवश्यक ही हो तो मुझे दिल्ली से बाहर गिरफ्तार किया जाना चाहिए। इस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मेरी गिरफ्तारी का यह षड्यन्त्र यहीं समाप्त हो गया।

इधर पुलिस ने यह अफवाह फैला दी कि मेरी गिरफ्तारी होने वाली ही है और दिल्ली के नागरिकों ने मेरी सुरक्षा के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। मैंने उन्हें धन्यवाद देकर लौटा दिया। मैं घर के दरवाजों को रात-दिन खुले ही रखता ताकि पुलिस यदि अपना कर्त्तव्यपालन करने आये तो उसे कठिनाई न हो। इस-पर पुलिस ने यह अफवाह फैलानी शुरू की कि मैं दिल्ली में पूरे तौर पर आजाद हूँ, किन्तु मुझे यहाँ से बाहर जाने की इजाजत नहीं है। मैं अवसर की प्रतीक्षा में था और वह शीघ्र ही आ गया।

पण्डित मोतीलाल नेहरू हमारी गैरसरकारी जाँच कमेटी की अध्यक्षता करने के लिए आये थे। उन्होंने आगामी कांग्रेस अधिवेशन के लिए उपयुक्त स्थान के सम्बन्ध में मेरी राय माँगी। मैंने उनसे कांग्रेस का अगला अधिवेशन अमृतसर में करने का आग्रह किया, क्योंकि ऐसा करने से ही लोगों की हिम्मत और इच्छा-शक्ति को प्रबल बनाये रक्खा जा सकता था। पण्डित नेहरू ने कहा कि इस वर्ष के कांग्रेस के अध्यक्ष पण्डित मदनमोहन मालवीय किसी अन्य प्रान्तवालों को प्रेरणा कर रहे हैं कि वे कांग्रेस अधिवेशन के लिए अपना निमन्त्रण भेजें तथा ८ जून को आनन्द भवन में आयोजित कांग्रेस कार्यकारिणी में इस प्रश्न पर विचार किया जायगा।

मैं ६ जून १९१९ को रात्रि की गाड़ी से दिल्ली से चल पड़ा। रेलवे प्लेट-फॉर्म पर कम-से-कम २० गुप्तचर उपस्थित थे। मैंने इण्टर क्लास का टिकट खरीदा और कोने में एक सीट पर चुपचाप बैठ गया। सी०आई०डी० वाले मुझे द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में ढूंढ रहे थे। वे मुझे वहाँ न पाकर आश्चर्य में रह गये। मुझे उन्होंने दिल्ली जंक्शन स्टेशन पर देखा था, तब क्या धरती मुझे निगल गई? अन्ततः उन्होंने रेलवे के बाबुओं को इण्टर क्लास के टिकटों को जाँचने के लिए मजबूर किया। जिस डिब्बे में मैं बैठा था, टिकट-चैकर उसमें आया और उसने अपना काम शुरू किया। मैंने उस बाबू तथा मुसाफिरों के प्रति दया दिखाते हुए अपना टिकट उसे दिखाया। मैंने उसे कहा कि वह दूसरे मुसाफिरों को तंग नहीं करे और मेरे टिकट का नम्बर नोट कर चला जाय। उसने ऐसा ही किया और इससे मैं पहचान लिया गया। इसका परिणाम यह निकला कि मेरे मना करने पर भी एक पूरी सीट मेरे लिए खाली कर दी गई। मेरे साथी मुसाफिर प्यासे थे और ठण्डा पानी प्राप्त करना कठिन था। गाड़ी छूटी, किन्तु जब वह गाजियाबाद पहुँची तो एक आदमी पानी की एक बाल्टी भरकर ले आया और चिल्लाते हुए बोला—"स्वामी जी कहाँ हैं? मैं उनके लिए ठण्डा पानी लाया हूँ।" ऐसा लगता है कि पुलिस ने मेरी निगरानी रखने के लिए गाजियाबाद के अधि-कारियों को फोन कर दिया था। परिणाम यह निकला कि मुझे तथा मेरे साथी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रियों को बर्फ जैसा शीतल जल उपलब्ध कराया गया। यह तो मैंने यों ही लिख दिया है।

मैंने इलाहाबाद में कार्यकारिणी को जोर देकर कहा कि वह कांग्रेस के स्थान का परिवर्तन न करे और मैं अपने लक्ष्य में सफल भी हुआ। इलाहाबाद से लौट-कर मैंने दिल्ली के मामलों से सम्बन्धित सारे काम निपटाये। पंजाब जाने के पहले मैंने चीफ कमिश्नर से पूर्वप्राप्त आज्ञा के आधार पर लोकमान्य की वर्षगाँठ का उत्सव भी मनाया तथा वाणिज्य-व्यवसाय-सम्बन्धी विवादों को निपटाने के लिए यहाँ के प्रमुख हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी तथा ईसाई प्रतिनिधियों का एक पंचमण्डल नियुक्त किया। हकीम अजमल खाँ इसके संयोजक नियुक्त हुए; किन्तु उन्होंने इसकी कभी कोई बैठक नहीं बुलाई।

मैं उस कहानी को यहाँ नहीं कहूँगा कि किस प्रकार मैंने इलाहाबाद सेवा-समिति का उपाध्यक्ष-पद स्वीकर किया और लगभग सवा लाख रुपया एकत्र कर पंजाब के मार्शल लॉ से पीड़ित लोगों को राहत पहुँचाई, इस रकम से बचा हुआ एक लाख से अधिक रुपया कांग्रेस के अध्यक्ष पण्डित मदनमोहन मालवीय के सुपुर्द किया जिन्होंने इस रकम के आधार पर समिति में स्थाई कोष का निर्माण किया। यह कहना भी जरूर नहीं कि अन्ततः मैंने इस समिति से त्यागपत्र भी दे दिया। मेरा उद्देश्य तो केवल यही बताना है कि कांग्रेस तथा राजनैतिक आन्दोलन में मेरी रुचि न होने पर भी मैं किस प्रकार इनमें लपेट लिया गया। सारी स्थिति इस प्रकार थी। मध्य पंजाब का भ्रमण करते समय मैंने अनुभव किया कि मार्शल लॉ के दौरान किये गये अत्याचारों के कारण बहादुर पंजाबी नैतिक पतन की किस सीमा तक पहुँच चुके हैं। इसलिये यदि केवल परिणाम के भय से ही कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में किये जाने के प्रस्ताव को टाल दिया जाता, तो सारा राजनैतिक आन्दोलन ही धराशायी हो जाता। इसलिये स्वागत-समिति के निर्माण का कार्य आरम्भ करना अत्यावश्यक हो गया। किन्तु अमृतसर के लोगों में इतना साहस ही नहीं था कि वे इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव लेकर सामने आते। किसी सी० आई० डी० वाले को यह भनक पड़ गई कि यहाँ कुछ होनेवाला है, इसलिए उसने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसके सम्बन्ध में यह दावा किया गया था कि इसपर अमृतसर के अनेक प्रमुख नागरिकों के हस्ताक्षर हैं तथा इसमें अमृतसर में कांग्रेस का आगामी अधिवेशन बुलाने का विरोध इस आधार पर किया गया है कि ऐसा होने से शान्ति भंग होने का खतरा है। अब हमारी बारी थी। उस विज्ञप्ति पर जिनके हस्ताक्षर थे, उन तथाकथित हस्ताक्षरकर्ताओं ने इस बात से इन्कार किया कि उन्होंने किसी ऐसी विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर किये हैं। कुछ अन्य प्रमुख नागरिकों के साथ उन्होंने उपर्युक्त विज्ञप्ति के विरोध में एक अन्य विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसमें पंजाबवासियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन को सफल बनाने के लिए कहा गया था। स्वागत-समिति का गठन हुआ, उसके मन्त्रियों का मनोनयन हुआ, एक या दो उपाध्यक्ष भी चुने गये और सही तौर पर कार्य आरम्भ हुआ। किन्तु बहादुर पंजाब में किसी को भी स्वागत-समिति के अध्यक्ष का दायित्व सम्भालने के लिए राजी नहीं किया जा सका। यहाँ उन लोगों के नाम गिनाना बेकार है, जिन्होंने इस सम्मान को ग्रहण करने से इन्कार किया। किन्तु इन लोगों में दो व्यक्ति ऐसे भी थे जो हमेशा निर्भीक देशभक्त तथा अटल राष्ट्रवादी समझे जाते थे। किन्तु इन लोगों ने भी अभी हाल ही में ओडायर के शासन में डायर के अत्याचारों के भय से भयभीत होकर अपना रंग बदल लिया था। राजनीति के सैनिक तो वहाँ थे, किन्तु उन्हें नेतृत्व देनेवाला कौन था? नेता लोग जेलों में फाँसी या देशनिकाले की सजाओं की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनमें से कइयों को सजायें दी जा चुकी थीं। लाला हरकिशनलाल, लाला दुनीचन्द, डॉक्टर सत्यपाल और डॉक्टर किचलू तथा पण्डित रामभज दत्त एकत्र हुए और औपचारिक रूप से एक प्रस्ताव पास कर मुझसे स्वागत-समिति का अध्यक्ष बनने की प्रार्थना की। इसके बाद जब हम जेल की इन कोठरियों में गये, जहाँ फाँसी की सजा पाये हुए चौधरी, बग्गा तथा रतनचन्द थे। उन्होंने मृत्युदण्ड न दिये जाने की दया की याचना की अर्जियों पर अपने हस्ताक्षर करने का तो मजाक उड़ाया, किन्तु अपनी यह अन्तिम इच्छा प्रकट की कि मुझे अमृतसर कांग्रेस को सफल बनाना चाहिए। मैंने अभी तक कोई निर्णय नहीं किया था तथा परामर्श के लिए महात्मा गांधी को भी लिखा था। कारण यह था कि अनेक प्रमुख हिन्दू और आर्यसमाजी मुझे राजनीति के क्षेत्र में प्रविष्ट होकर संन्यास की अवमानना करने से विरत करना चाहते थे।

ऐसे ही अनिश्चय के समय महिलाओं का एक प्रतिनिधि-मण्डल मुझसे मिलने के लिए आया। इसमें कुछ देवियाँ उन सिंहों की पत्नियाँ भी थीं जो आज सांकलों में बँधे थे। इन महिलाओं की प्रवक्ता ने मुझसे एक ही वाक्य कहा—"हमारे पितातुल्य स्वामी जी, हमें अपने पतियों से बिछुड़ने का तनिक भी खेद नहीं है क्योंकि एक उच्च ध्येय के लिए वे शहीद हो रहे हैं। किन्तु उनकी आत्माओं को तभी सन्तोष प्राप्त होगा यदि अमृतसर का कांग्रेस अधिवेशन समुचित रीति से सम्पन्न होता है।" उसी सायंकाल महात्मा गांधी की सलाह भी आ गई जो हिन्दी में इस प्रकार थी—"तिथि भाद्रपद शुक्ला १०, १९७५ वि०, साबरमती। भाई साहब, मुझे आपका पत्र मिला। मेरा विश्वास है कि जब तक हम धार्मिक उद्देश्य को लेकर राजनीति के क्षेत्र में प्रविष्ट नहीं होते, तब तक हम भारत के पवित्र और सच्चे उत्थान के कार्य में सफल नहीं हो सकते। यदि आप स्वागत-समिति के अध्यक्ष बनते हैं तो आप कांग्रेस में धार्मिक भावनाएँ प्रविष्ट करा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पायेंगे, इसलिए आपको स्वागत-समिति का अध्यक्ष-पद स्वीकार कर लेना चाहिए। यही राय मैं आपको दे सकता हूँ।''

इस पत्र ने आखिरी फैसला कर दिया और मैं कांग्रेस का सदस्य न होते हुए भी स्वागत-समिति का अध्यक्ष बन गया।

स्वागत-समिति की प्रथम बैठक में ही मुझे अपने पद की कठिनाइयों का आभास हुआ। मुझे पता लगा कि समिति के जो मन्त्री चुने गये हैं उनमें कई ऐसे हैं जिनपर सत्याग्रह के दिनों में उन लोगों के साथ गद्दारी करने का इल्जाम लगाया गया है जिन्होंने इनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम किया था। इनमें से कुछ ने मेरे काम में बाधा देने का भी प्रयास किया, किन्तु ईश्वर की कृपा तथा कांग्रेस के उन अधिकारियों की सहायता से, जो इस कार्य के प्रति समर्पित थे, हम लोग इस कार्य को पूरा कर सके। फिर सरकारी हस्तक्षेप का भी भय था। कांग्रेस अधिवेशन के लिए किसी उपयुक्त स्थान का चुनाव सबसे कठिन था। नगर से एक मील दूर कृषि की भूमि किराये पर लेकर मैंने इस समस्या का समाधान किया। इससे अधिकारीवर्ग भी होश में आ गया और जो स्थल चुना गया उससे इस अधिवेशन की सफलता को कम श्रेय नहीं मिला। इस प्रकार मैं इस संघर्ष में सघनता के साथ जुड़ गया। अब मैं निश्चय ही कांग्रेस में था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३

कांग्रेस में वास्तविक प्रवेश

इसे आप अच्छा कहें या बुरा, मैं महान् राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अंग बन गया। मेरे मार्ग में एक अन्य बाधा थी जो अधिकारियों के खामोश रवैये के कारण उत्पन्न हुई बताई गई। बम्बई, मद्रास तथा बंगाल प्रान्तों से हजारों प्रतिनिधियों के आने की सम्भावना थी। उत्तर भारत के प्रचण्ड शीत के कारण इनका तम्बुओं में रहना सम्भव नहीं था। इनके लिए पक्के आवासों की नितान्त आवश्यकता थी। परन्तु अखाड़ों तथा धर्मशालाओं के महन्त और स्कूलों के प्रबन्धक मार्शल-लॉ के अत्याचारों के शिकार लोगों को अपने स्थान प्रदान करने के अनिच्छुक थे क्योंकि ऐसा करने से उनके जीवन तथा सम्पत्ति को खतरा था। यह भी चर्चा थी कि इस अवसर पर बड़ी संख्या में अंग्रेज और गुरखा सिपाही तैनात रहेंगे। सर माइकेल ओडायर का उत्तराधिकारी मुझसे तब से परिचित था जब वह लॉर्ड हार्डिंज के समय में भारत के शिक्षा-सदस्य के सचिव के रूप में काम करता था। मैंने उससे समय निर्धारित कर भेंट की तथा उसे व्यक्तिशः कांग्रेस में आने के लिए आमन्त्रित किया और कहा कि उन्हें औपचारिक निमन्त्रणपत्र बाद में भेजा जायगा। वैसे एडवर्ड साफ दिल के, किन्तु कमजोर इन्सान थे। उसने मुझे औपचारिक निमन्त्रण न भेजने का आग्रह किया और कहा—आप स्वभावतः मेरे पूर्ववर्ती महानुभाव के कार्यों की आलोचना करेंगे ही। यदि मेरी आलोचना की जावे तो मैं उसकी परवाह नहीं करूँगा, किन्तु आपका आमन्त्रण स्वीकार कर मैं एक कठिन परिस्थिति में पड़ जाऊँगा। इसके पश्चात् उसने मुझे अमृतसर में कांग्रेस-अधिवेशन बुलाने से निरुत्साहित करने का प्रयत्न किया। ऐसा करने में उसका मुख्य कारण निम्न था—भारत के सभी भागों से आनेवाले लोग जलियाँवाला में इकट्ठे होंगे और इससे उन्हें उत्तेजित होने का मौका मिलेगा। उत्तर में मैंने कहा कि यदि अधिकारीवर्ग सेना तथा पुलिस का प्रदर्शन नहीं करेंगे तो प्रत्येक कार्यक्रम के शान्तिपूर्वक घटित होने की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। इसके साथ ही मैंने उसे यह कहा कि वह अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर को हमारे मार्ग में बाधायें खड़ी न करने की सलाह दें। सर एडवर्ड ने कृपापूर्वक इच्छित कार्य करने की प्रतिज्ञा की तथा वह अपने वचनों के प्रति सच्चा ही रहा। सेना के अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल नहीं मँगाये गये। जो लोग पहले से ही वहाँ मौजूद थे उन्हें अपनी बैरकों में ही रहने के लिए कहा गया। पुलिस से कहा गया कि जब कांग्रेस के बड़े जुलूस निकलें तो उस समय वह प्रायः अदृश्य ही रहे, तथा जब तक मैं प्रार्थना न करूँ तब तक वह व्यवस्था रखने में मदद हेतु कांग्रेस के पण्डाल के समीप भी दिखाई न पड़ें। मैंने ऐसी मदद के लिए कभी पुलिस से अनुरोध भी नहीं किया। कमिश्नर तथा डिप्टी कमिश्नर से सभी प्रकार की सहायता दिये जाने का आश्वासन भी मिला।

किन्तु कांग्रेस के भीतर से ही एक अन्य बाधा पैदा हो गई। कांग्रेस के इस वर्ष के अध्यक्ष पण्डित मदनमोहन मालवीय थे। वे दिसम्बर १९१८ ई० में दिल्ली अधिवेशन की भी अध्यक्षता कर चुके थे। उन्होंने अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन आयोजित किये जाने के विरोध में एक बड़ा अच्छा कारण प्रस्तुत किया। पंजाब के तथाकथित विद्रोह तथा उसके बाद मार्शल लॉ की घटनाओं की जाँच करने के लिए हण्टर कमेटी वहाँ आ चुकी थी। कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता दास, नेहरू, मालवीय तथा अन्य सभी लोग कांग्रेस द्वारा संचालित, पंजाब में उत्पन्न अशान्ति की जाँच के कार्य में लगे हुए थे। साथ ही हण्टर कमेटी के समक्ष बचाव-पक्ष को प्रस्तुत करना भी उनके ही जिम्मे था। तब भला मेरे जैसा अनुभवहीन व्यक्ति बिना इन नेताओं की सलाह या मदद के इस अधिवेशन को कैसे सफल बना सकता था? मैं अमृतसर में था और नेतागण लाहौर में थे। मेरी दृढ़ धारणा थी कि यदि अधिवेशन अमृतसर में ही और वह भी प्रतिवर्ष की भाँति दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में ही होता है, तभी स्थिति को बचाया जा सकेगा, अन्यथा कम-से-कम आनेवाले पचास वर्षों के लिए राजनैतिक गतिविधियों का अन्त हो जायगा। मैंने भाई सी० एफ० एण्ड्रूज को भेजा कि वह मालवीय जी को मेरे दृष्टिकोण के अनुकूल बनायें। विश्वविद्यालय के किसी कार्य से मालवीय जी बनारस जा रहे थे और एण्ड्रूज ने मुझे तार भेजकर उनसे अमृतसर के रेलवे स्टेशन पर मिलने के लिए कहा। मैं वहाँ उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। अपने डिब्बे से निकलकर एण्ड्रूज ने मुझे बतलाया कि वह मालवीय जी को मेरे विचार के अनुकूल बनाने में असफल रहे हैं। तब मैंने मालवीय जी से सीधी बात की और उन्होंने अपनी एक ही आपत्ति यह कहते हुए बताई कि अन्य नेतागण मुझे सहायता देने में अपनी अक्षमता प्रकट कर रहे हैं। इसपर मैंने अधिवेशन को सफल बनाने की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। जैसी कि एक स्कॉटिश कहावत है—एक दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति अपना रास्ता निकाल ही लेता है। मुझे अब अपना कार्य पूरा करने की आजादी मिल गई। परिणाम सबके सामने स्पष्ट ही है। अमृतसर-अधिवेशन आरम्भ होने के पहले मेरे सामने एक ही कठिनाई आई। पण्डाल का निर्माण एक बहुत बड़ा कार्य था तथा ठेकेदार ने बड़े दिन (२५ दिसम्बर) से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग एक पखवाड़ा पहले ही काम आरम्भ किया। कार्य शुरू किये एक सप्ताह ही व्यतीत हुआ कि असाधारण वर्षा हो गई। खोदे हुए गड्ढे तीन बार वर्षा के जल से भर गये और तीनों बार मशीनों से इस पानी को बाहर फेंकना पड़ा। जब पण्डाल का गुम्बज पूरा बन गया तथा २४ दिसम्बर को लगभग एक दर्जन स्पेशल गाड़ियाँ आनेवाली थीं, इतनी भयंकर वर्षा हुई जैसी विगत २० वर्षों में भी नहीं हुई थी। संयुक्तप्रान्त तथा पंजाब के जो प्रतिनिधि आ चुके थे तथा जिन्हें तम्बुओं में ठहराया गया था, वे घुटनों तक पानी में खड़े थे। सभी चीजें पानी में तर-ब-तर हो चुकी थीं और मैं स्वयं अपने पाँवों को पानी में डाले काम में लगा था। एक दिन पहले मैंने कारें तथा बसें मँगा लीं और निवास-स्थानों की तलाश में निकला। इस अवसर पर अमृतसर ने जैसी शानदार जवाबदारी दिखाई, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। तीन भवन मेरे अधिकार में दे दिये गये जिनमें उन सभी अतिथियों को ठहराया जा सकता था जो तम्बुओं में थे। इसके पश्चात् जो विशेष गाड़ियों से आये, उन्हें अन्यत्र ठहराया गया। परन्तु इसपर भी कहा जा रहा था कि यदि और आयें, तो क्या होगा ? जो भवन हमारे सुपुर्द किये गये थे वे अभी पूरे तैयार नहीं थे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी तथा रेलवे स्टेशन से सूचना आई कि प्लेटफॉर्म कांग्रेस-प्रतिनिधियों से भरे पड़े हैं, यहाँ तक कि स्टेशन का प्रवेशद्वार भी अटा पड़ा है। इस समय ईश्वर से प्रेरित एक घटना घटी। मैं पानी में सराबोर हुआ मोटर में जा रहा था कि एक सज्जन दौड़ते हुए आये और चिल्लाते हुए बोले —'मेरी कोई नहीं सुनता। स्वामीजी, कृपया मेरी बात सुनें।' मैं रुका और प्रेम तथा सहानुभूति के उस दूत ने मुझसे कहा—'मैं अपने घर पर पचास प्रतिनिधियों को ठहराने के लिए तैयार हूँ। ऐसे और भी अनेक लोग हैं जो ऐसा करने के लिए तैयार हैं। हमारे बन्धु प्रतिनिधियों को हमारे घरों पर भेजिये।' मैंने उत्तर में कहा—'प्यारे भाई, तुम हाल गेट चले जाओ और जो भी प्रतिनिधियों को अपने यहाँ रखना चाहे उसे रोक लो। जब प्रतिनिधि लोग आवें तो प्रत्येक मेजबान अपने-अपने मेहमानों को अपने घर ले जावें।' ईश्वर का वह दूत हाल गेट की ओर चल पड़ा। मैं कार में बैठकर नगर की सड़कों तथा गली-कूचों में जाकर गुरुओं की नगरी के निवासियों से अनुरोध करने लगा कि वे हाल गेट जावें तथा आतिथेय (मेजबान) बनें। परिणाम यह निकला कि २ बजे रात तक ऐसा कोई प्रतिनिधि नहीं रहा जिसको सम्भाला नहीं गया था। रेलवे स्टेशन पर हमारे विनम्र तथा आडम्बररहित नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय भोजन तथा जल की स्वाभाविक इच्छाओं को भी सर्वथा भूलकर कार्य कर रहे थे। वे स्टेशन पर तब तक रहे, जब तक कि हमारा अन्तिम अतिथि अपने निश्चित निवासस्थान पर नहीं पहुँच गया। पंजाब में पण्डित मालवीय जी से मेरा जो सम्बन्ध जुड़ा, उसके कारण मेरी उनके प्रति प्रीति अधिकाधिक बढ़ी तथा मैं उनमें विद्यमान सहिष्णुता तथा अनुशासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भावना का प्रशंसक बना।

मैं यहाँ केवल एक ही उदाहरण दूँगा। हण्टर कमेटी उन दिनों लाहौर में ही थी। पंजाब सरकार ने जाँच के दिनों में भी नजरबन्द नेताओं को रिहा करना मंजूर नहीं किया था। महात्मा गांधी ने इस बात पर आग्रह किया कि हमारे बचाव-पक्ष की कार्यवाही की एक मुख्य शर्त को पूरा नहीं किया गया है, अतः हमें बचाव की कार्यवाही करनी ही नहीं चाहिए। परन्तु कांग्रेस के वे नेता जो जेलों से बाहर थे, तथा उनकी सम्मति को आदर देते हुए जो लोग कांग्रेस के अध्यक्ष पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में बाहर से आये थे, सभी चाहते थे कि हमें बचाव-पक्ष की कार्यवाही करनी है। जब महात्मा गांधी की सम्मति के प्रतिकूल उक्त निर्णय लिया गया तो महात्मा गांधी ने दो पत्र लिखवाये—एक पंजाब सरकार को तथा दूसरा प्रेस के लिए। इसमें यह साफ तौर पर कहा गया था कि वे बचाव की कार्यवाही करने के खिलाफ हैं, इसलिये उनका वहाँ उपस्थित रहना भी व्यर्थ है अतः वे शीघ्र ही पंजाब से चले जायेंगे। इन पत्रों का मजमून भाई एण्ड्रूज के पास ही था और वे उसे लाला हरकिशनलाल के घर पर ठहरे पण्डित मालवीय जी को दिखाने ले ही जा रहे थे कि मैं अमृतसर से आ गया। एण्ड्रूज ने चिट्ठियों का यह प्रारूप मुझे दिखाया जिसे पढ़कर मैं चकित रह गया। गांधी जी से इस प्रकार पृथक् हो जाने पर बचाव-समिति की प्रतिष्ठा पसेभर भी नहीं रहेगी। मैं भीतर गया तो पता लगा कि अमृतसर में लाला गिरधारीलाल को टेलिफोन पर सूचना दी जा रही है कि जब हण्टर कमेटी के सदस्य जलियाँवाला बाग काण्ड के दिन घटी घटनाओं का निरीक्षण करने के लिए उपर्युक्त स्थान तथा अन्यत्र आवें तो वे उनके साथ रहें। मैंने फोन करनेवाले जीवनलाल (लाला हरकिशनलाल के पुत्र) को एकदम रोका और कहा कि वे लाला गिरधारीलाल को अगली गाड़ी से लाहौर आने के लिए कहें। मैंने सविनय प्रतिवाद करते हुए पण्डित जी को प्रेरणा दी कि वे उसी दोपहर बाद एक बैठक बुलायें ताकि पूर्व लिये गये उस निर्णय को बदला जा सके, जिसमें हण्टर कमेटी के समक्ष गवाही देने की बात कही गई थी।

गांधी जी जहाँ ठहरे थे, उसी स्थान पर समिति की बैठक हुई। किन्तु कार्यवाही आरम्भ होने के पहले ही मैंने पण्डित नेहरू (मोतीलाल नेहरू) तथा श्री चित्तरंजनदास को विश्वास दिला दिया कि गवाही देना हमारे ही प्रतिकूल जायगा। मैं उन युक्तियों के विस्तार में यहाँ नहीं जाऊँगा, और न ही उन तथ्यों का वर्णन करूँगा जो मैंने उनके समक्ष प्रस्तुत किये थे। इतना कहना ही पर्याप्त है कि वे मुझसे सहमत हो गये। किन्तु पंजाब के दो नेता अपनी माँग पर अटल रहे और मालवीय जी ने उनका समर्थन करने का वादा किया था। पूरे चार घण्टों तक पूर्ण शान्ति छाई रही। तब मैं मालवीय जी को एक ओर ले गया तथा उनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठक में उत्पन्न गत्यवरोध का कारण जानना चाहा। वे एक तरफ तो बहुमत का विरोध करना नहीं चाहते थे, किन्तु दूसरी ओर उनका स्वयं का निर्णय उन दो अल्पमतीय नेताओं से सहमति रखता था। मैंने उन्हें सलाह दी कि वे उसपर मतदान करायें तथा खुद अल्पमतवालों का साथ दें। उनके कंधों पर का बोझ मानो सहसा उतर गया। वे लौटे और उन्होंने अल्पमतवालों के साथ अपना मत दिया। किन्तु जब बहुमत ने हण्टर कमेटी के समक्ष गवाही देने से इन्कार किया तो पण्डित मदनमोहन मालवीय ने पंजाब के गवर्नर को एक सख्त चिट्ठी लिखी तथा सारा दायित्व अपने ऊपर ले लिया। निःस्वार्थता तथा लोकतान्त्रिक भावना का यह एक प्रोज्ज्वल उदाहरण था। मालवीय जी द्वारा राजनैतिक नेताओं के लिए उच्च आदर्शों को प्रस्तुत करने के अनेक अवसरों में से एक अवसर यह भी था।

अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन का वर्णन करने से पूर्व एक अन्य घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। मुख्य प्रस्ताव राजनैतिक सुधारों से ही सम्बन्धित था। इस प्रस्ताव की विषय निर्धारिणी समिति में क्या गति हुई, इसका उल्लेख यहाँ नहीं करूँगा; यह भी नहीं बताऊँगा कि अनेक सन्देहास्पद अवस्थाओं से होकर उसे किस प्रकार पारित किया गया; किन्तु इतना तो स्पष्ट हो ही गया कि खुले अधिवेशन में इसपर तूफानी बहस होगी तथा इसपर रक्खे जानेवाले अनेक संशोधनों पर सदन के विभाजित हो जाने की भी आशंका थी, यहाँ तक कि दास तथा तिलक द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव के मुख्य अंश पर भी मत-भिन्नता की गुंजाइश हो गई थी। अतः ३१ दिसम्बर की बैठक के अन्त में यह घोषित किया गया कि अगले दिन पण्डाल में दर्शकों का प्रवेश निषिद्ध रहेगा। इसका कारण यह बताया गया था कि एक प्रमुख प्रस्ताव पर रक्खे गये कुछ संशोधनों पर प्रतिनिधियों को मतदान करना होगा।

एक जनवरी १९२० ई० को प्रातः मैं प्रमुख नेताओं से औपचारिक भेंट हेतु सदा की भाँति गया। मैंने अपना यह कार्यक्रम उस स्थान से आरम्भ किया जहाँ गांधी जी तथा मालवीय जी ठहरे हुए थे। मुझे देखकर मालवीय जी मुझे एकान्त में ले गये और कहा कि कांग्रेस को उसकी कूटनीतिक तथा कुटिलतायुक्त नीतियों से उबारने में मैं उनका तथा महात्मा जी का साथ दूं। विस्तृत ब्यौरा बताये जाने का आग्रह करने पर मालवीय जी ने कहा कि उस दिन वे तथा महात्मा जी पण्डाल में नहीं जायेंगे तथा विरोधरूप में मुझे भी उनका साथ देना चाहिए। मैं मालवीय जी को ऊपर ले गया तथा महात्मा जी से उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण चाहा। उन्होंने मालवीय जी के विचार से ही सहमति व्यक्त की। उत्तर में मैंने कहा—"इस क्षण मैं मेजबान की हालत में हूँ जिसने कांग्रेस को निमन्त्रित किया है। सारे प्रतिनिधि मेरे अतिथि हैं। मैं भला कैसे अनुपस्थित रह सकता हूँ?" महात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ने मेरे तर्क की दृढ़ता को समझा, किन्तु मालवीय जी ने कहा कि अधिवेशन के समाप्त होने पर मैं उनके साथ कांग्रेस से बाहर आ जाऊँ तथा उसके सुधार हेतु काम करूँ।

इसपर मैं महात्मा जी की ओर मुड़ा और बोला—"आपने मुझे कांग्रेस का आध्यात्मीकरण करने के लिए इसमें प्रविष्ट होने की सलाह दी थी। यदि आप कांग्रेस में रहकर ही इसका सुधार करने का विचार रखते हैं तब तो मैं आत्मा तथा अन्तःकरण से आपके साथ हूँ। किन्तु यदि आप कांग्रेस का विरोध करने के लिए उससे पृथक् होना चाहते हैं तो मुझे इससे कोई मतलब नहीं है।" महात्मा जी ने पुनः मुझे कहा कि मालवीय जी ने उनकी स्थिति को नहीं समझा है। उन्हें इसका पक्का निश्चय नहीं है कि दर्शकगण मतदान में भाग नहीं लेंगे तथा उनकी अन्तरात्मा इस प्रकार अपने पक्ष में कराये जाने वाले मतदान के लिए आज्ञा नहीं देती। मैंने महात्मा जी को विश्वास दिलाया कि सभी दर्शकों को पण्डाल के बाहर रखने का जिम्मा मेरा खुद का होगा तथा यदि मतविभाजन होता है तो मतों की गणना भी नियमित रूप से कराई जायगी। महात्मा जी को इसमें सन्देह था कि जिन बातों का मैंने वादा किया है उन्हें निभा पाने में मैं सफल हो पाऊँगा, किन्तु लाला हरकिशनलाल ने, जो उसी समय वहाँ आ गये थे, महात्मा जी को विश्वास दिलाया कि मैं उस वादे को पूरा करूँगा जो मैंने उनसे किया है। विचार का बिन्दु यही था कि क्या घोषित सुधारों को निराशाप्रद कहकर लांछित किया जाय, तथा क्या मि० मॉण्टेग्यू को उन साधारण कोटि की अनुकम्पाओं के लिए धन्यवाद दिया जाय जो इन सुधारों से प्राप्त होने वाली हैं? यह भी विचारणीय था कि क्या शाही घोषणा में अभिव्यक्त भावनाओं के प्रति कोई प्रतिक्रिया प्रकट की जाये? स्वागत-समिति के अध्यक्ष के रूप में मैंने अपने अभिभाषण में इस बात पर जोर दिया था कि सम्राट् द्वारा प्रदर्शित सद्भावना के संकेत पर अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की जावे तथा मि० मॉण्टेग्यू को सुधारों के लिए धन्यवाद दिया जाय। विशेष रूप से इसलिए कि इन्हें ब्रिटिश संसद् द्वारा इसी अवसर पर पारित किया गया है। किन्तु चित्तरंजनदास तथा उनका दल इसके विरोध में था। उन्होंने लोकमान्य को उनकी इच्छा के प्रतिकूल अपने अकृतज्ञ दल में सम्मिलित होने के लिए मना लिया था। उनके मुख्य प्रस्ताव पर महात्मा गांधी ने अपना संशोधन स्वीकार कराया।

मैं अपने वचन का पक्का रहा और मैंने सभी दर्शकों को मतदान के समय पण्डाल से बाहर करवा दिया। मतविभाजन तथा मतगणना के लिए भी सारे प्रबन्ध कर लिये गये। किन्तु आखिरी वक्त में महात्मा जी ने समझौता कर लिया तथा अत्यधिक चर्चित शब्द 'निराशात्मक' को यथावत् रहने दिया। शाही घोषणा के सन्दर्भ को हटा दिया गया तथा उसके स्थान पर मि० मॉण्टेग्यू को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरम शब्दों में धन्यवाद का एक वाक्य रक्खा गया। जब समझौते की घोषणा हो गई तो मालवीय जी को वक्ता के मंच से हटाते हुए देशबन्धु दास वहाँ पहुँचे तथा समझौते की अपनी ही व्याख्या प्रस्तुत की, जिससे उनके पक्ष की ही स्पष्ट विजय ध्वनित होती थी। मालवीय जी तो समझौते की बात को हिन्दी में समझाने के लिए वहाँ गये थे। जब संशोधित प्रस्ताव मतदान के लिए प्रस्तुत हुआ तो उसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया तथा पण्डाल 'महात्मा गांधी की जय' के सम्मिलित घोष से गूँज उठा। सब लोगों को राहत महसूस हुई तथा सबने इस पुरानी कहावत से सहमति व्यक्त की—अन्त भला सो भला। कुछ बंगाली प्रतिनिधि तथा पत्रकार इसके अपवाद थे जो कानाफूसी करते हुए कह रहे थे—'मूर्खो लोक, गांधी का जय कहाँ हुआ, दाश का जय क्यों नहीं बोलता ?' इसके पश्चात् अध्यक्ष की ओर से एक दर्जन से अधिक प्रस्ताव रक्खे गये जो ध्वनि-मत से स्वीकार हुए। मेजबानों और मेहमानों के पारस्परिक धन्यवाद के आदान-प्रदान के पश्चात् यह स्मरणीय अधिवेशन समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४

अमृतसर से कलकत्ता

राष्ट्र के हुतात्माओं की स्मृति में जलियाँवाला बाग को एक स्मारक का रूप देने की योजना थी। इसके लिए इस बाग को खरीदना था। इस कार्य हेतु चन्दा इकट्ठा करने के लिए कहीं बाहर जाने की अपेक्षा मैं गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी की ओर उड़ चला। अपने उत्तराधिकारी की प्रतीक्षा किये बिना ही इस गुरुकुल के आचार्य-पद पर कार्य करनेवाले सज्जन ने धमकी दी थी कि वे फरवरी १९२० ई० के मध्य तक अपना पद त्यागकर चले जायेंगे। इसलिए गुरुकुल की प्रबन्धकारिणी समिति के अध्यक्ष ने पण्डित मालवीय तथा महात्मा गांधी से निवेदन किया कि वे मुझे जलियाँवाला स्मारक हेतु चन्दा एकत्र करने के लिए की गई मेरी प्रतिज्ञा से मुक्त कर दें। कांग्रेस अधिवेशन (अमृतसर) की स्वागत-समिति के अध्यक्ष की हैसियत से दिये गये अपने भाषण में मैंने यह भविष्यवाणी की थी कि इस पवित्र स्थल का नाम जलियाँवाला से बदलकर 'अमर वाटिका' कर दिया जायगा, और यदि मैं गुरुकुल की सेवा से मुक्त कर दिया जाता तो निश्चय ही इस दिशा में प्रयत्न करता, किन्तु यह होना ही नहीं था।

अमृतसर कांग्रेस तक महात्मा जी कट्टर सहयोगवादी थे, किन्तु जब मार्शल-लॉ के शिकार हुए लोगों की अपीलें प्रिवि कौंसिल द्वारा लॉर्ड हाल्डेन की अध्यक्षता में स्वीकार कर ली गईं तथा लॉर्ड केन की अध्यक्षतावाली न्यायिक समिति के समक्ष सुनवाई के लिए प्रस्तुत किये जाने के उपरान्त नौकरशाही के दबाव के कारण खारिज कर दी गईं तो महात्मा जी का भी ब्रिटिश सरकार के प्रति असहयोग का रुख बन गया। इसमें अली भाइयों की अनजाने की गई प्रेरणा का भी हाथ था। इस उपयुक्त अवसर पर अली भाइयों ने भारतीय मुसलमानों को हिजरत करने के लिए कहा, क्योंकि उनके विचार में हिन्दुस्तान अब दारुल-अम्न नहीं रहा था और उनके मतानुसार यदि कोई मुल्क दारुल-हरब हो जाता है तो एक सच्चे मुसलमान के लिए एकमात्र यही विकल्प रहता है कि या तो वह वहाँ से हिजरत करे, अर्थात् उस देश को छोड़कर चला जाय या उसे पुनः दारुल-अम्न बनाने के लिए जिहाद (धर्मयुद्ध) का मार्ग अपनाये। जिहाद का तो कोई सवाल ही नहीं था क्योंकि अंग्रेजों की हथियारों से सुसज्जित नौकरशाही सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आगे भारत सर्वथा शक्तिहीन था, अतः मुसलमानों के लिए हिजरत के सिवा कोई दूसरा मार्ग ही नहीं था। हिन्दू लोग मुसलमानी खिलाफत आन्दोलन में कुछ इस तरह से फँस गये थे कि अनेक लोग सरकारी सेवा तथा अन्य कामों को छोड़कर मुहाजरीनों से मिल गये थे। मैंने महात्मा जी को इस नाजुक हालत में कतिपय भारतवासियों के अपनी मातृभूमि को छोड़कर बाहर जाने के प्रतिरोध-रूप में पत्र लिखा क्योंकि बाहर जाकर तो उन्हें शत्रु की दया पर ही रहना होगा। मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे इस देश के पुत्रों को यह परामर्श दें कि वे यहाँ से बाहर तब जायें, जब उन्हें कहीं भी शरण मिलने की सम्भावना बाकी न बची हो। उस स्थिति में वे हजारों की नहीं बल्कि लाखों की संख्या में काबुल चले जावें। उन्हें वहाँ के सुलतान की दया पर निर्भर रहना पड़ेगा और यह देखना होगा कि वह अपने देश की आबादी से कहीं अधिक संख्यावाले इन मुहाजरीन मुसलमानों को खिलाने की सामर्थ्य रखता है या नहीं। मैंने महात्मा जी को जोर देकर कहा कि वे अपने प्रभाव को काम में लाकर हमारे मुसलमान भाइयों को हिजरत (देश-त्याग) करने से रोकें, क्योंकि यदि असम्भव भी सम्भव हो जाता है और काबुल के अफगान अंग्रेजों को भी भारत से बाहर निकाल देते हैं तो इस प्रकार से प्राप्त किया गया स्वराज्य किसी काम का नहीं होगा, कारण कि पड़ोसियों की वीरता से प्राप्त स्वर्ग भी हमारे लिए नरक बन जायगा। मैंने अति प्रसिद्ध फारसी पद्य को इस प्रसंग में उद्धृत किया था—

हक्का की बा अकावत, दोजख बराबर अस्त।
रफ्तन बा पैमारदिय हमसाया दोर बिहिश्त॥

मैंने उन्हें जोर देकर यह भी कहा कि वे लोगों को सरकार की नागरिक और सैनिक सेवाओं का बहिष्कार करने के लिए भी उत्तेजित न करें; क्योंकि इन सेवाओं का बहिष्कार करनेवालों के जीवन-निर्वाह के लिए सार्वजनिक सहायता-कोष का प्रावधान किये बिना ऐसा किया जाना हानिकर होगा। यदि इन सेवाओं का बहिष्कार अत्यन्त आवश्यक ही हो (मेरी राय में यह न तो सुविधाजनक ही था और न आवश्यक) तो मैंने महात्मा जी से कहा कि ऐसा करने के लिए वे सर्वोच्च सेवाओं में नियुक्त मुसलमानों को अपनी सेवाओं का त्याग कर मार्ग-दर्शन करने के लिए कहें। मैंने कहा—"यदि सर मुहम्मद शफी तथा कुछ अन्य मुसलमान जो राज्य की सेवाओं में सर्वोच्च स्थानों पर हैं, अपना पद त्याग देते हैं तो उनके हिन्दू साथी भी उनका पदानुसरण कर सरकार का ध्यान उनकी माँगों की ओर आकृष्ट करेंगे। इसके पश्चात् ही साधारण श्रेणी के लोगों को त्यागपत्र देने के लिए कहना उपयुक्त रहेगा, क्योंकि तब तक उन्हें राष्ट्रीय पुलिस में भर्ती करने के लिए आवश्यक कोष भी एकत्रित कर लिया जायगा।"

महात्मा जी का उत्तर उनके चरित्र के सर्वथा अनुकूल ही था। उन्होंने कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मुसलमानों को हिजरत करने का परामर्श उनका नहीं है। किन्तु यदि हमारे मुसलमान भाई इसे अपने धर्म की अनुज्ञा मानते हैं तो वे क्या कह सकते हैं ? तथापि वे उन्हें ऐसा करने से विरत करने की चेष्टा करेंगे। साधारण लोगों द्वारा सरकारी नौकरियाँ छोड़ देने का परामर्श भी वे तब तक नहीं देंगे जब तक कि उन लोगों के निर्वाह की व्यवस्था न की जा सके। वे मेरी इस बात से भी सहमत थे कि पड़ोसियों की सहायता से प्राप्त की गई स्वाधीनता किसी भी कीमत की नहीं हो सकती।

गांधी जी अपने वचन के पक्के थे तथा वे खिलाफत के समर्थकों की हिजरत-विषयक धारणा का प्रतिवाद करने के लिए सिंध तक गये। इसी प्रान्त के लोग हिजरत-आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। किन्तु उनके इस गम्भीर परामर्श की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसका जो परिणाम निकला वह पूर्वानुमान के अनुसार ही था, क्योंकि मुहाजरीनों की कठिनाइयाँ इतनी पीड़ादायक थीं कि उसकी चर्चा न करना ही उपयुक्त होगा। उपर्युक्त पत्र-व्यवहार उस समय गुरुकुल से प्रकाशित होनेवाली मेरी साप्ताहिक पत्रिका 'श्रद्धा' में छपा था।

अगस्त १९२० ई० में मैंने गुरुकुल के लिए एक स्थायी कोष स्थापित करने का विचार किया और इस कार्य को कलकत्ता से ही आरम्भ करने के लिए वहाँ गया। मैंने वहाँ गुरुकुल के प्रचार का कुछ कार्य किया ही था कि खिलाफत आन्दोलन के परिशिष्ट रूप में कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन आमन्त्रित किया गया। ब्रिटिश सरकार के प्रति पूर्ण सहयोग के एकांगी दृष्टिकोण से हटकर अब महात्मा गांधी उसके प्रति पूर्ण असहयोग के पक्षपाती बन गये थे तथा अपनी स्वाभाविक गम्भीरता के साथ वे देश का भ्रमण भी कर चुके थे। देशबन्धु चित्तरंजनदास इस समय पटना में थे। वे डुमराँव के महाराजा द्वारा अपने स्वर्गीय दीवान के पुत्रों के विरुद्ध दायर मुकद्दमे की पैरवी के लिए वहाँ गये थे। दीवान के पुत्रों की पैरवी पण्डित मोतीलाल नेहरू कर रहे थे। ये दोनों नेता जो पक्के राष्ट्रवादी तथा मित्र थे, कानूनी दावपेचों के कारण एक-दूसरे के विरोधी के रूप में व्यूहबद्ध होकर खड़े उस समय पटना में थे। मैं वहाँ उपस्थित सभी नेताओं से मिलता था, किन्तु मैंने अपने मस्तिष्क को खुला रख छोड़ा था। सत्य तो यह है कि समकालीन राजनीति में मेरा विश्वास दुर्बल होने लगा था, यद्यपि मैंने अपनी आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्त नहीं किया था। किंतु महात्मा गांधी के आगमन ने मेरी मनःस्थिति को धीरे-धीरे बदला। मैंने देखा कि महात्मा गांधी अपने अहिंसात्मक असहयोग कार्यक्रम के प्रति अत्यधिक भावना-प्रवण हैं और जिन आशाओं को उन्होंने मन में सँजोया है, यदि उन्हें लेकर उन्हें निराश होना पड़ा, तो यह एक महती राष्ट्रीय क्षति होगी।

इस विशेष कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता लाला लाजपतराय ने की, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी राय दुविधाग्रस्त थी। महात्मा गांधी का विरोध चित्तरंजनदास ने किया जिन्हें सभी बंगाली नेताओं का सहयोग प्राप्त था। लाला लाजपतराय का मस्तिष्क तो बंगाल के बौद्धिक दिग्गजों का समर्थन करता था, जब कि उनका हृदय साबरमती के सन्त की अपीलों की ओर आकृष्ट था। महात्मा गांधी की दयनीय आशा को अन्ततः किस प्रकार विजय मिली, यह सब जानने के लिए इस विशेष अधिवेशन की रिपोर्ट पढ़नी होगी, किन्तु विषय-समिति में असहयोग के पक्ष में मत देकर भी मैं खुले अधिवेशन में कराये गये मत-विभाजन के समय तटस्थ क्यों रहा, यह सब बताने के लिए एक लम्बे संवाद की आवश्यकता है।

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५

कलकत्ता में

विषय-समिति में नेहरू जी (मोती लाल नेहरू) के साथ समझौता कर लेने के कारण गांधी जी को उनका समर्थन प्राप्त हुआ। कांग्रेस के उद्देश्यों में पंजाब तथा खिलाफत आन्दोलन के प्रति किये गये दुर्व्यवहार की क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त स्वराज्य-प्राप्ति की भी बात कही गई थी। मैंने भी एक संशोधन की सूचना दी थी जिसे पण्डित मोतीलाल नेहरू के साथ समझौता-वार्ता कर लेने के पश्चात् वापस ले लिया गया।

गांधी जी द्वारा जो मूल प्रस्ताव रक्खा गया था उसमें 'बहिष्कार' शब्द का बड़ी नरमी के साथ प्रयोग किया गया था तथा लोगों को केवल स्वदेशी वस्त्र काम में लाने के लिए ही प्रेरित किया गया था। सलेम (मद्रास) के श्री सी० विजय राघवाचारियर ने प्रस्ताव में निम्न वाक्यांश जोड़ने का आग्रह किया— सभी प्रकार के विदेशी माल का बहिष्कार। वस्तुतः यह महात्मा गांधी के अभिप्राय को निष्फल बनाने का एक प्रयत्न ही था क्योंकि महात्मा जी ऐसे शब्दों का प्रयोग पसन्द नहीं करते थे जिनसे घृणा तथा हिंसा की गंध आती है। अध्यक्ष ने श्री विजयराघवाचारियर के संशोधन को छोड़कर अन्य सभी संशोधनों को मतदान के लिए प्रस्तुत किया और मूल प्रस्ताव बहुमत से मंजूर हो गया। श्री आचार्य ने आग्रह किया कि उनका संशोधन तो मूल प्रस्ताव का अंश बन चुका है, अतः इसे भी स्वीकृत माना जाय। दूसरे दल ने इसका प्रतिवाद किया। इसपर मैंने एक अन्य संशोधन का नोटिस दिया जिसमें सभी विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को हटा देने के लिए कहा गया था। ऐसा करने के कई अच्छे कारण थे। यदि यह धारा पास हो जाती तो हमें भारत में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता (जिसमें महात्मा गांधी भी सम्मिलित होते) जो इस आदेश का अपनी सम्पूर्णता के साथ पालन कर सकता। लाला लाजपतराय ने मुझसे कहा कि मैं संशोधन न रक्खूं क्योंकि श्री आचार्य का संशोधन प्रस्ताव का अंश नहीं है, और यदि इसे विचारार्थ प्रस्तुत किये जाने पर जोर भी दिया गया तो उसका पृथकशः विरोध भी होगा। मेरे एक गुरुकुलीय स्नातक ने, जो मेरे साथ इस आश्वासन के पश्चात् आये थे कि मैं खुले अधिवेशन में सभी विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के प्रस्ताव का विरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूँगा, मुझे बाहर बुला लिया। किन्तु मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा जब खुले अधिवेशन में मुझे ज्ञात हुआ कि जब मैं विषय-समिति से थोड़ी देर के लिए चला गया था, तो श्री आचार्य ने सदन को यह विश्वास दिला दिया कि उनके द्वारा प्रस्तावित संशोधन उस मूल प्रस्ताव का ही भाग है जो स्वीकार किया जा चुका है। इसपर मैंने उक्त धारा को हटा देने के लिए पुनः नोटिस दिया, किन्तु अध्यक्ष ने उसे अनियमित करार दिया क्योंकि इसके लिए विषय-समिति में नोटिस नहीं दिया गया था। मैंने अध्यक्ष को उन्हीं के द्वारा दिये गये आश्वासन का स्मरण कराया जिसमें उन्होंने कहा था कि यह तो एक पृथक् प्रस्ताव है, किन्तु उनका उत्तर था कि नियमानुसार मेरा संशोधन इस चरण में स्वीकार नहीं किया जा सकता। मुझे सम्पूर्ण प्रस्ताव का या तो समर्थन करना है या उसका सम्पूर्ण विरोध।

महात्मा गांधी ने अपनी उसी सहज योग्यता से प्रस्ताव को रखते समय अपने दृष्टिकोण की व्याख्या की। यह भलीभाँति जानते हुए कि सभी विदेशी पदार्थों का बहिष्कार स्वयं उनके लिए भी असम्भव है, उन्होंने एक अपवाद के साथ इस प्रस्ताव को रक्खा। जब मेरी बारी आई तो मैं उठ खड़ा हुआ और अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि यद्यपि मैं प्रस्ताव के बहुलांश से सहमत हूँ और मैंने इसके पक्ष में विषय-समिति में मत भी दिया है, मुझे इसका विरोध करने के लिए इसीलिए खड़ा होना पड़ा क्योंकि मेरे द्वारा भेजे गये एक संशोधन को रखने की स्वीकृति अध्यक्ष ने नहीं दी। विषय-समिति में रक्खे गये अपने संशोधन की कथा जब मैं कह ही रहा था कि अध्यक्ष ने मुझे रोक दिया और निर्णय देते हुए कहा कि विषय-समिति में जो कुछ हुआ है, उसे यहाँ नहीं कहा जा सकता। मैंने अपनी स्थिति को साफ करने के लिए विषय-समिति की कार्यवाही को सन्दर्भित करने की आज्ञा चाही, किन्तु उन्होंने अपने निर्णय के पालन पर जोर दिया अतः मैं बिना कोई प्रतिवाद किये बैठ गया। इस सारी घटना का ब्यौरा उस समय मैंने पूरे विस्तार के साथ लाला लाजपतराय की आज्ञा से अमृतबाजार पत्रिका को दिया था।

अस्पृश्यता-निवारण-विषयक अपने प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए ही मैंने कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया था। मैंने इस आशय का एक प्रस्ताव भी भेजा था, किन्तु इसे जान-बूझकर विषय-समिति ने ताक पर रख दिया। यहाँ तक कि महात्मा गांधी ने भी इसके महत्त्व को अनुभव नहीं किया और वे अपने अहिंसायुक्त असहयोग-विषयक प्रस्ताव की चर्चा करने लगे। कारण स्पष्ट था। अहिंसात्मक असहयोग का प्रस्ताव खिलाफत कमेटी द्वारा स्वीकार किया जा चुका था और महात्मा जी ने धमकी दी थी कि यदि इसे कांग्रेस में पास नहीं किया गया तो वे कांग्रेस के बाहर इसे रोकेंगे। मैं इसे दुर्भाग्य मानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि महात्मा गांधी भारत के सर्वाधिक पुराने राजनैतिक आन्दोलन से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते। इसलिए विषय-समिति में चुप रहने के बजाय मैंने इसके समर्थन में मत जुटाने का प्रयत्न किया तथा विषय-समिति में महात्मा जी के प्रस्ताव पर कम-से-कम २५ मत जुटाने में कृतकार्य हुआ। किन्तु जब मेरी रुचि का प्रस्ताव नेताओं की सहानुभूति अर्जित करने में असफल रहा तो मैं गुरुकुल लौट गया। उधर महात्मा जी भी दक्षिण की ओर प्रस्थान कर गये। मद्रास प्रान्त का दौरा करते समय उन्हें दक्षिण के तथाकथित पंचम संज्ञाधारी अछूतों के प्रश्नों का सामना करना पड़ा जिसमें उन्होंने पूछा था कि आत्म-निर्णय का राष्ट्रीय अधिकार प्राप्त हो जाने पर उन लोगों की समाज में क्या स्थिति होगी? इसका परिणाम यह हुआ कि स्वराज्य की शीघ्र प्राप्ति का एक उपाय अस्पृश्यता-निवारण को भी मान लिया गया। अक्टूबर के अन्त में मैं गुरुकुल के लिए धन-संग्रह हेतु बर्मा गया तथा दिसंबर १९२० ई० के प्रथम सप्ताह में लौटा। बर्मा में एक पुलिस-उप-अधीक्षक, दो निरीक्षक तथा दो पुलिस थानेदार पूरी यात्रा के दौरान मेरे साथ रहे और उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं अपने व्याख्यानों में राजनैतिक चर्चा से दूर रहूँ। किन्तु मैंने न तो उनके अनुरोध की ओर कोई ध्यान दिया और न उनकी धमकियों से ही डरा। भारतीयों और बर्मा-निवासियों की मनोवृत्ति में समान रूप से जो विद्रोह के भाव उमड़ रहे थे, उन्हें मेरे बर्मा में रहते तथा वहाँ से चले जाने के बाद श्री अब्बास तैयबजी ने प्रमाणित किया।

मौलाना शौकत अली की कार्यवाहियों के बारे में एक विशिष्ट तथ्य है, जिसे मैं यहाँ प्रस्तुत करूँगा। कलकत्ता कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में जबकि अहिंसा के महत्त्व की चर्चा चल रही थी, मंच पर बैठे लगभग ५० लोगों को सुनाते हुए मौलाना शौकत अली ने कहा—"महात्मा गांधी एक चालाक बनिया है। तुम लोग उसके वास्तविक उद्देश्य को नहीं समझते। तुम्हें अनुशासन में रखकर वह छापा-मार युद्ध की तैयारी कर रहा है। जैसा तुम लोग सोचते हो, वैसा वह कट्टर अहिंसावादी नहीं है।" बड़े अली भाई के मुँह से यह सुनकर मुझे धक्का-सा लगा; मैंने उसके समक्ष इसका प्रतिवाद भी किया जिसे उसने मजाक ही माना। कलकत्ता में महात्मा गांधी से इस सम्बन्ध में चर्चा करने का मुझे मौका ही नहीं मिला। इसके बाद नागपुर का सामान्य अधिवेशन हुआ जिसमें मैं भी उपस्थित था। यहाँ भी मैंने बड़े अली भाई को इसी प्रकार की चुहलबाजी करते देखा। उस अवसर पर मैं महात्मा गांधी को इस बारे में चेताना चाहता था, किन्तु दुर्भाग्यवश मुझे इन्फ्लुएंजा हो गया तथा मैं अधिवेशन की अन्तिम बैठक में भाग नहीं ले सका। इसपर भी मैंने महात्मा जी को लिखा कि मैं उनके समीप नहीं आ सकता, तथा उनसे अनुरोध किया कि वे मेरे पास आयें क्योंकि मुझे एक महत्त्वपूर्ण बात उन्हें कहनी है। उन्होंने मेरे पास आने में अपनी विवशता दर्शाई क्योंकि विभिन्न प्रांतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आये प्रतिनिधि मण्डल जो उनसे मिलने आये थे, उन्हें घेरे हुए थे। इस कारण महात्मा जी ने अपने सचिव श्री महादेव देसाई को मेरे पास भेजा। मैंने गांधी जी के लिए अपना संदेश उन्हें दिया और कहा कि उन्हें सावधान रहना होगा क्योंकि उनके विश्वसनीय साथियों के द्वारा ही उनके अभिप्रायों को गलत ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है। मैंने महात्मा गांधी का ध्यान एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर भी आकृष्ट किया। हम दोनों एक रात में नागपुर में एक साथ खिलाफत सम्मेलन में गये थे। मौलाना लोग उस अवसर पर कुरान की जो आयतें पढ़ रहे थे, उनमें काफिरों को कत्ल करने तथा जिहाद के अनेक सन्दर्भ आये थे। किन्तु जब मैंने खिलाफत आन्दोलन के इस पहलू की ओर महात्मा जी का ध्यान खींचा तो वे मुस्कराकर बोले—"ये अंग्रेज नौकरशाही की ओर संकेत करते हैं।" उत्तर में मैंने कहा कि यह सब अहिंसा के विचार का उच्छेदक है और जब इनकी भावनाओं में आकस्मिक प्रतिक्रिया होगी तो वे इन्हीं आयतों को हिन्दुओं के खिलाफ प्रयुक्त करने में संकोच नहीं करेंगे।

नागपुर में मैं इन्फ्लुएंजा से पीड़ित रहा। मैं स्पेशल गाड़ी से दिल्ली चला गया और वहाँ से जलवायु-परिवर्तनार्थ गुरुकुल कुरुक्षेत्र गया। मेरी हालत यहाँ और बिगड़ गई। तब मैं गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी चला आया जहाँ रोगग्रस्त हो जाने के कारण मैं तीन महीनों से अधिक समय तक खाट पकड़े रहा। इस पूरी अवधि में मैं **परब्रह्म परमात्मा** (सबके माता-पिता) से भारत राष्ट्र को वास्तविक स्वराज्य के योग्य बनाने हेतु नित्यप्रति दो घण्टे प्रार्थना किया करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६

नये मौलाना

एप्रिल १९२१ ई० के मध्य में जब मेरे चिकित्सकों ने मुझे शय्या त्यागने की इजाजत दी, तो उन्होंने मुझे यह चेतावनी भी दी थी कि एक दिन में मुझे दो फलांग से अधिक घूमना नहीं है, अधिकाधिक विश्राम करना है तथा रात्रिकालीन लम्बी यात्राएँ नहीं करनी है। किन्तु मई के आरम्भ में पण्डित मोतीलाल नेहरू की पुत्री (विजयलक्ष्मी पंडित) का विवाह होना था तथा सारे हिन्दू और मुसलमान नेताओं के वहाँ उपस्थित होने की आशा थी। इसमें मेरी अनुपस्थिति सम्भव नहीं थी, अत: पहले मैं दिल्ली गया और वहाँ से इलाहाबाद के लिए प्रस्थान किया। मैंने अपनी यात्रा बीच में ही, कानपुर में ही रोक दी। इसका उल्लेख मैंने इसलिए किया क्योंकि वहाँ मैंने एक सार्वजनिक सभा को सम्बोधित किया था, जिसमें मैंने अहिंसावादी असहयोगकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए कहा—वे अपने मन में इस विचार को न पैठने दें कि १२ महीनों में ही स्वराज्य मिल जाएगा। क्योंकि यदि ऐसा नहीं हुआ, तो इससे उत्पन्न निराशा से जो प्रतिक्रिया उत्पन्न होगी वह समस्त राष्ट्र को बीसियों वर्ष पीछे धकेल देगी। मैंने उन्हें आजादी की लड़ाई को अन्तिम दौर तक लड़ने के लिए कहा तथा इसके लिए समुचित तैयारी करने की भी प्रेरणा दी।

अगले दिन मैं पंजाब-हावड़ा मेल से इलाहाबाद के लिए रवाना हो गया। मौलाना मुहम्मद अली भी इस गाड़ी से यात्रा कर रहे थे। मैं भी उन्हीं के डिब्बे में था। हमारी बातचीत सामयिक समस्याओं पर हो रही थी। सर विलियम विन्सेंट (भारत सरकार के तत्कालीन गृह-सचिव) ने विधान सभा की सुरक्षित जगह से पुन: आरोप लगाया था कि उनके पास इस बात के दस्तावेजी प्रमाण हैं कि मि० मोहम्मद अली ने अंग्रेजों के खिलाफ काबुल सरकार से पत्र-व्यवहार भी किया है। इसी समय मुझे नरम दल के द्वितीय श्रेणी के नेता ने कहा था (नरम दल में सभी नेता थे, अनुयायी कोई नहीं था) कि गुप्तचर विभाग ने मि० मुहम्मद अली द्वारा लिखा गया एक पत्र पकड़ा है और इसे डॉक्टर सर तेजबहादुर सप्रू को दिखाया भी गया है। मैंने इस सबका विवरण पत्रों को दे दिया तथा सरकार को चुनौती देकर कहा कि वह समाचारपत्रों में उक्त पत्र की प्रतिलिपि प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे ताकि जनता को इस बात का निर्णय करने का अवसर मिले कि क्या सचमुच चर्चित पत्र मौलाना मुहम्मद अली द्वारा लिखा भी गया है या नहीं। मौलाना ने मुझसे यह पूछा कि यह पत्र जिसपर इतना विवाद हो रहा है, किस भाषा में लिखा बताया गया है? मैंने उनसे कहा कि पत्र की भाषा फारसी बताई गई है। इसपर मौलाना मुहम्मद अली चिल्ला पड़े—'तब मेरे द्वारा लिखा हो ही नहीं सकता। मैं न तो अरबी जानता हूँ और न शुद्ध फारसी में पत्र लिख सकता हूँ। उर्दू कवि के रूप में मेरा कुछ महत्त्व अवश्य है।' मेरी समझ में यह नहीं आया कि जो व्यक्ति अरबी तथा फारसी दोनों भाषाओं से अनभिज्ञ है, वह 'मौलाना' की उपाधि कैसे प्राप्त कर सका? किन्तु इस पहेली का समाधान मुझे मिल गया जब मैंने अली भाइयों के गुरु लखनऊ के स्व० मौलाना अब्दुलबारी का मुसलमानों के नाम प्रकाशित खुले पत्र में पृष्ठ ३५ पर निम्न वाक्य पढ़ा—"भाई मौलाना मुहम्मद अली को फिरंगी महल से मौलाना की जो सनद दी गई है, उसका कारण तबलीग (धर्म-परिवर्तन) के कार्य में उनकी सेवा ही है। अमृतसर कांग्रेस के अधिवेशन में जहाँ सभी बड़े हिन्दू नेता उपस्थित थे, उन्होंने प्रत्येक को इस्लाम का सन्देश दिया। यहीं तक नहीं, उन्होंने इस्लाम का सन्देश वायसराय को और लॉर्ड चैम्सफोर्ड के माध्यम से सम्राट् जार्ज पंचम को भी दिया। सच्चे उलेमा का यही कर्त्तव्य है। जब उन्होंने इस कर्त्तव्य को इस ऊँचे स्तर तक निभाया तो यहाँ (फिरंगी महल) से उन्हें मौलाना का यह सर्वोच्च सम्मान दिया गया।"

यह दीगर बात है कि क्या सचमुच मौलाना मुहम्मद अली ने अमृतसर में उच्च हिन्दू नेताओं को इस्लाम का सन्देश दिया था या नहीं। किन्तु जब मैंने इसके बारे में पंडित मोतीलाल नेहरू और मालवीय जी, स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजन दास तथा श्री सी० विजयराघवाचारियर एवं अन्यों से जो पूछा तो उन्होंने नये मौलाना द्वारा की गई ऐसी किसी चर्चा से इन्कार किया। किन्तु शायद मौलाना की निगाह में ये लोग सर्वोच्च हिन्दू नेता नहीं थे। इसलिए मैंने महात्मा गांधी से पूछताछ की तो उन्होंने भी इस बात से इन्कार किया कि मौलाना मुहम्मद अली ने ऐसे किसी सन्देश को लेकर उससे भेंट की थी।

इस अनावश्यक विषयान्तरण के लिए मैं अपने पाठकों से क्षमा माँगकर पुनः अपनी बात पर आता हूँ। मौलाना मुहम्मद अली को इस बात की शिकायत थी कि राजनैतिक नेता उनके द्वारा काबुल के सुलतान को पत्र भेजकर उससे यह अनुरोध किये जाने की आलोचना कर रहे हैं कि सुलतान को ब्रिटिश सरकार से सुलह नहीं करनी चाहिए। मैंने भी उनसे कहा कि जो कदम उन्होंने उठाया है, वह बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। उस समय तो वे चुप रहे, किन्तु जब हम आनन्दभवन (पं० मोतीलाल नेहरू का प्रासाद) पहुँचे तो भाई मुहम्मद अली मुझे एक ओर ले गये तथा अपने बैग से एक पत्र निकालकर मुझे पढ़ने के लिए दिया। यह उसी तार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मसौदा था जो सुलतान काबुल को भेजा गया था। मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा जब मैंने तार के इस मसौदे को उस व्यक्ति के हाथों से लिखा पाया जो अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का पिता (महात्मा गांधी) था।

दूसरे दिन सवेरे महात्मा गांधी आनन्द-भवन पहुँचे। यह उनके मौन व्रत का दिन था। जब मैं उनसे मिलने गया तो उन्होंने मुझे एक पत्र और एक तार दिया जो उन्हें पण्डित मालवीय जी से मिले थे। पत्र का आशय यही था कि लॉर्ड रीडिंग बहुत सज्जन पुरुष हैं, वस्तुत: वे एक सन्त ही हैं, और उन सभी राजनैतिक सुधारों को देना चाहते हैं जो भारतवासियों को इष्ट हैं। इसलिए भाई गांधी को शिमला जाकर लॉर्ड रीडिंग से भेंट करनी चाहिए। तार में केवल महात्मा गांधी की शिमला जाने की आवश्यकता बताई गई थी तथा उसमें यह प्यारभरी धमकी भी थी कि यदि उन्होंने शिमला जाने की मंजूरी नहीं दी, तो मालवीय जी को शिमला की शीतल वायु का त्याग कर इलाहाबाद की भयंकर गर्मी में आना पड़ेगा।

मैंने गांधी से कहा कि वे कांग्रेस कार्यकारिणी से सम्मति लिये बिना न जाएँ। कार्यकारिणी की बैठक दूसरे दिन सवेरे ही रक्खी गई थी। गांधी जी को लॉर्ड रीडिंग से भेंट हेतु मना करने के जो कारण मैंने उस समय बताये थे, उन्हें यहाँ पुन: उल्लिखित करना आवश्यक नहीं है। इन्हें बाबू रामानन्द चटर्जी ने 'मॉडर्न-रिव्यू' में लिख दिया है।

उसी मध्याह्नोत्तर शिमला से भाई एण्ड्रूज आये तथा मुझे आलिंगनबद्ध करने के पश्चात् उन्होंने ग्रेट ब्रिटेन के चीफ जस्टिस से अपनी भेंट का जैसा उत्तेजना-प्रद वर्णन किया, उसे सुनकर सभी उपस्थित जनों को प्रसन्नता हुई। किन्तु मैंने जब इस सारी परिस्थिति का निर्मम विश्लेषण किया तो इस परिणाम पर पहुँचा कि यह घाघ राजनीतिज्ञ स्वयं के मन तथा हृदय को भेंटकर्ता की आँखों से सर्वथा ओझल कर एण्ड्रूज जैसे धर्मप्राण व्यक्ति के सरल हृदय को ही खुली पुस्तक की भाँति पढ़ रहा है। तो ठीक है, मैंने भी उन्हें चेतावनी दी और मेरा कर्त्तव्य पूरा हो गया। महात्मा जी ने मेरी चेतावनी की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उन्हें अपनी अजेयता का पूरा विश्वास था और जहाँ तक कार्यकारिणी से विचार-विमर्श करने का सवाल था, उन्होंने कभी इसके बारे में सोचा ही नहीं था। महात्मा जी शिमला गये। उन्हें वायसराय से भेंट हेतु प्रार्थना के एक टाइप किये पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े जो वायसराय के निजी सचिव को सम्बोधित किया गया था। वे लॉर्ड रीडिंग से मिले भी। उस भेंट का परिणाम सारा संसार ही जानता है। उस चालाक कूटनीतिज्ञ ने सन्त की निष्कपटता और सरलता का पूरा लाभ उठाया। यदि यह माना जाए कि यदि गांधी जी की सत्यता की परीक्षा एवं व्रत की पवित्रतापूर्ण उद्दीप्तता के साथ सुरक्षित रही, तो यह भी कहना होगा कि युद्ध की सांसारिक चल-वैजयन्तियाँ संसारी व्यक्ति के ही हाथों में रहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवतः महात्मा गांधी द्वारा की गयी यह चौथी हिमालय के तुल्य भूल थी। इससे अली भाई तो एक कष्टप्रद स्थिति में पड़े ही, महात्मा जी के अनुयायियों की भावनाओं में भी थोड़ा फर्क आया, जब भारत की जनता को नीति-सम्बन्धी एक अन्य आघात को सहना पड़ा। बारह महीनों में स्वराज्य-प्राप्ति हेतु निर्धारित तीन शर्तों की उपेक्षा कर अब इस महान् महात्मा ने भारत की अधैर्यवान् जनता को तीन मास में ही स्वराज्य प्राप्त कराने के लिए निम्न तीन शर्तें पूरी करने के लिए कहा—

(१) एक करोड़ रुपया एकत्र किया जाए।

(२) चार आना देनेवाले कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाये जाएँ।

(३) जून १९२१ ई० के अन्त तक २० लाख चर्खे बाँटे जाएँ।

दूसरे नेताओं द्वारा प्रस्तुत कई युक्तिसंगत प्रस्तावों की अपेक्षा कांग्रेस कमेटी ने २१ मार्च १९२१ ई० को अपने विजयवाड़ा अधिवेशन में गांधी जी के उपर्युक्त प्रस्तावों को ही स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं, चर्खे-युक्त राष्ट्रीय ध्वज को भी उसने अपने प्रमुख प्रतीक के रूप में विजयवाड़ा में ही स्वीकार किया।

इस निरंकुश तानाशाही के खिलाफ मैंने हिन्दी पत्रिका 'श्रद्धा' के कालमों में तगड़ा प्रतिवाद किया जो इस प्रकार था--

"विचारशील भारतवासियों का समुदाय यह देखकर उलझनपूर्ण स्थिति में है कि जो भी प्रस्ताव गांधी जी द्वारा पेश किये जाते हैं, उन्हें शब्दशः स्वीकार कर लिया जाता है। बंगाल प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन की अध्यक्षता बाबू विपिनचन्द्र पाल ने की। इस सम्मेलन में विपिन बाबू ने अपनी धारणा के अनुसार स्वराज्य को परिभाषित करते हुए कहा था कि साम्राज्य के अन्तर्गत पूर्ण अधिकार-सम्पन्न उत्तरदायी शासन ही स्वराज्य है। उनके इस कथन पर इतनी चीख-पुकार मची कि अध्यक्ष को पण्डाल छोड़कर जाना पड़ा। प्रेस ने भी स्वराज्य की विस्तृत परिभाषा करने के लिए उनकी आलोचना की, जबकि कांग्रेस ने देशवासियों को ही इसे परिभाषित करने तथा निर्धारित करने का काम सौंप दिया था।

किन्तु, उसके पश्चात् 'यंग इण्डिया' के ६ एप्रिल १९२१ ई० के अंक में गांधी जी का वक्तव्य निम्न प्रकार से प्रकाशित हुआ—दक्षिण अफीकावासी एक मित्र ने मुझे लिखा है कि वहाँ के निवासी अनेक यूरोपियन लोग स्वराज्य के संघर्ष में सहायता करने के लिए तैयार हैं, किन्तु वे कुछ मुद्दों पर हमारा आश्वासन चाहते हैं। चूंकि उनके द्वारा उठाये गये ये मुद्दे जनसामान्य के महत्त्व के हैं, अतः मैं प्रसन्नतापूर्वक उनपर यहाँ चर्चा करता हूँ।

प्रश्न—क्या मि० गांधी का स्वराज्य साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक सार्वभौम स्वतन्त्रता या पूर्ण उत्तरदायी शासन होगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी का उत्तर—

यदि खिलाफत और पंजाब के साथ किये गये अत्याचारों को दूर कर दिया जाता है तो मैं औपनिवेशिक पद्धति पर पूर्ण उत्तरदायी सरकार से संतुष्ट हो जाऊँगा। यदि ब्रिटेन उपर्युक्त दोनों गलतियों को दुरुस्त नहीं करता तो भारत का साम्राज्य में रहना कठिन है। कारण कि यदि भारत उन अधिकारियों को पेंशन देने से इन्कार नहीं कर सकता, जिन्होंने उसके साथ दुर्व्यवहार किया है अथवा यदि वह खिलाफत के प्रश्न का समाधान नहीं कर सकता, तो पूर्ण उत्तरदायी शासन अर्थहीन ही होगा। उस स्थिति में इंग्लैण्ड भारत के लिए शत्रु देश हो जाएगा।

यदि नागपुर में महात्मा गांधी की यह राय थी तो मैं यह नहीं समझ पाया कि उन्होंने पण्डित मालवीय से सहमति क्यों न बना ली? और यदि उन्होंने उसके बाद अपनी राय बदली है तो उन्हें यह सोचना चाहिए कि आनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन से स्वीकार कराए बगैर उनके लिए अपनी इस परिवर्तित राय को प्रकट करना कहाँ तक उचित है? मैं पूरे तीन महीने इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि जिन लोगों ने विपिन बाबू के खिलाफ शोर मचाया था, वे महात्मा जी की बात का भी विरोध करते हैं या नहीं। यहाँ तक कि जिन पत्रों ने गांधी जी के इस वक्तव्य को प्रकाशित किया, उन्होंने भी इसपर कोई टिप्पणी नहीं दी।

विजयवाड़ा में महात्मा जी ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से भारत के राष्ट्रीय ध्वज की स्वीकृति ले ली तथा मुझे 'दि इण्डिपेण्डेण्ट' से ज्ञात हुआ कि यही चर्खायुक्त झण्डा इलाहाबाद में जिला कांग्रेस कमेटी की बैठक के अवसर पर फहराया जाएगा।" अन्त में, मैंने दुगुनी ताकत से इस निरंकुश तानाशाही के खिलाफ प्रतिरोध किया।

३० जून १९२१ ई० तक 'तिलक स्वराज्य फण्ड' के लिए एक करोड़ से अधिक रुपये एकत्र हो गये। मुझे पक्का विश्वास है कि एक करोड़ से अधिक चार आना देनेवाले सदस्य भी बना लिये गये हैं और हालाँकि कोई पक्की सूची नहीं बनाई गई है, लगभग २० लाख चर्खे भी बाँटे जा चुके हैं। किन्तु जब ३० दिसम्बर का दिन आया तो उस समय तक स्वराज्य का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। इसपर महात्मा जी का उत्तर था—देश स्वराज्य के लिए तैयार है या नहीं, इसे जानने के लिए यह तो एक अनुशासनात्मक कदम ही था। वास्तविक स्वराज्य तो धीरे-धीरे ही आयेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७

अस्पृश्यता की समस्या

युद्ध के लिए सारे साधन-सम्बल जुटाये जाने के पश्चात् इन्हें प्रयोग में लाने के तरीकों पर विचार करने के लिए लखनऊ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई गई। बैठक के पूर्व गांधी जी ने २९ जून की 'यंग इण्डिया' में कार्य-कारिणी की स्थिति की समीक्षा की। उन्होंने कहा कि कार्यकारिणी में ऐसे सदस्य होने चाहिएँ जो एक ध्येय से प्रेरित हों। विरोधी गुटों तथा मत-भिन्नता के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। यदि कोई सदस्य अन्यों के साथ काम करने में अपने को असमर्थ पाता है तो उसे इस्तीफा दे देना चाहिए। गांधी जी ने यह चर्चा इसलिए उठाई थी क्योंकि जब युद्ध के सारे साधन जुटाये जा चुके हैं तो कार्यकर्ताओं के मार्ग में कोई अवरोध नहीं रहने चाहिएँ।

मैंने निम्न बात कहकर महात्मा गांधी का अनुमोदन किया—"स्वभावतः महात्मा जी कार्यकारिणी के अध्यक्ष रहेंगे, अवशिष्ट १४ सदस्य ऐसे होने चाहिएँ जो सब प्रकार से महात्मा जी के दृढ़ अनुयायी हों। अली भाइयों के शब्दों में 'बिना आपत्ति किये जो अपने सेनापति के समक्ष झुक जाएँ।' यद्यपि वर्तमान में अशिक्षित जनता महात्मा जी को ईश्वर का अवतार मानती है, शिक्षित लोग उन्हें कांग्रेस का जीवन्त रूप मानते हैं, किन्तु जिस व्यक्ति ने देश में नई आध्यात्मिक जिन्दगी फूँकी है तथा जो आप लोगों के लिए १२ मास में स्वराज्य लाने की प्रतिज्ञा करता है, उसे अपनी पूर्ण शक्ति का प्रदर्शन करने का पूरा अवसर देना चाहिए।

यदि ३१ दिसम्बर १९२१ ई० तक स्वराज्य नहीं मिलता है, तो अवतार के सिद्धान्त का तो स्वतः ही प्रत्याख्यान हो जाएगा, किन्तु आनेवाली कई पीढ़ियों तक के लिए भारतवासी आजादी की लड़ाई को जारी रखने के काबिल हो जाएँगे। इस समय देश के सर्वाधिक हित में महात्मा गांधी के प्रत्येक कार्य की आलोचना करना हानिकारक होगा, तथा गली में खड़े प्रत्येक लड़के को सन्तोषप्रद उत्तर देने के लिए उन्हें बाध्य करना भी अनुचित है।"

यह वक्तव्य 'श्रद्धा' के ९ जुलाई १९२१ ई० के अंक में प्रकाशित हुआ और महात्मा जी ने अपनी इच्छा के अनुकूल अपनी कार्यकारिणी का गठन कर लिया।

अगस्त के मध्य में मैं पंजाब प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन में सम्मिलित होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए मुल्तान गया। खिलाफत का व्रत हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा समान रूप से लिया जा रहा था और सर्वत्र अत्यधिक उत्साह था। सख्त और तीखी वक्तृताएँ देना उस समय का सामान्य नियम था और जो अपने भाषण में सबसे ज्यादा सख्तकलामी करता, वही सर्वाधिक प्रशंसा पाता। उस समय तक मैंने यह सोचा भी नहीं था कि अनेक नेता ऐसा करके केवल धमकियाँ ही दे रहे हैं, जबकि अपने मन में वे सरकार से समझौता करना चाहते हैं। किन्तु कोटगढ़ के मि० स्टोक्स ने मेरी आँखें खोल दीं। उन्होंने मुझे बताया कि जहाँ गांधी जी एक ओर यह धमकी दे रहे हैं कि यदि १६२१ ई० के अन्त तक स्वराज्य प्राप्त नहीं कर लिया गया तो वे जीवित नहीं रहेंगे, जबकि मंचों से शेरों की तरह दहाड़नेवाले अन्य नेता ब्रिटिश सरकार से समझौता करने के लिए अतीव उत्सुक हैं। नेता लोग यह नहीं जानते कि जिस संघर्ष में वे लगे हैं वह उन्हें अव्यवस्था के किस छोर तक ले जायगा। लौटते समय मैं लाला लाजपतराय से मिला और उन्होंने भी मि० स्टोक्स के विचारों से सहमति प्रकट की। सर्वोच्च नेताओं से लेकर उन नेताओं तक, जो जनता के विभिन्न वर्गों का नेतृत्व करते थे, यह कोई नहीं जानता था कि महात्मा जी उन्हें कहाँ ले-जा रहे हैं। वे सभी अँधेरे में ही टटोल रहे थे। मैंने उन नेताओं से महात्मा जी से स्पष्ट बात करने के लिए कहा ताकि वे यह जान सकें कि उन्हें किस अन्तिम लक्ष्य की ओर उनके द्वारा ले-जाया जा रहा है। मैंने उन्हें यह भी पता लगाने के लिए कहा कि क्या महात्मा जी अपने लक्ष्य को पूरा न कर सकने की स्थिति में अपने मित्रों को स्वमतानुकूल विचार-परिवर्तन करने की आज्ञा देकर हिमालय की कन्दराओं में चले जायेंगे? इसके पश्चात् मैंने लाला लाजपतराय से कहा कि अस्पृश्यता-निवारण की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है और मैं यह अनुभव करता हूँ कि दिल्ली में यह समस्या सर्वाधिक तीव्र है। मेरे पास इस कार्य को करने के लिए मात्र एक हजार रुपये थे। लाला लाजपतराय ने मुझे ५०० का चैक दिया और सलाह दी कि कांग्रेस का जो फण्ड गांधी जी के अधिकार में है, उसमें से आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए मैं उन्हें तार दूँ।

मैं १७ अगस्त १६२१ को दिल्ली पहुँचा। मैंने देखा कि अस्पृश्यता-निवारण का प्रश्न दिन-प्रतिदिन तीव्र हो रहा है। अब से पहले दिल्ली तथा उसके आस-पास लगभग ६ वर्षों से आर्यसमाज के लोग अछूत वर्ग के लोगों को उन्नत बनाने के लिए कार्य कर रहे थे, किन्तु मैंने देखा कि उनमें से जो सबसे अच्छे कार्यकर्त्ता थे वे कांग्रेस तथा हिन्दू-मुसलमान समाज के विरोध में जा चुके थे। मैंने उनमें से कुछ जातियों के चौधरियों को बुलाया और उनके विद्रोह का कारण पूछा। उन्होंने निम्न कहानी बयान की—"दिल्ली कांग्रेस कमेटी के मन्त्री ने चमारों के चौधरियों को बुलाया और उनसे अनुरोध किया कि वे अधिक-से-अधिक चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आना शुल्क देनेवाले सदस्य उन्हें दें। उनके बुजुर्गों का उत्तर था कि जब तक सार्वजनिक कुओं से जल भरने की उनकी शिकायत दूर नहीं कर दी जाती, तब तक वे अपने भाइयों को कांग्रेस में सम्मिलित होने की प्रेरणा नहीं कर सकते। कांग्रेस का मन्त्री रुग्णमस्तिष्क तथा तेजमिजाज आदमी था। उसने कहा कि हमें स्वराज्य तो तुरन्त चाहिए, किन्तु चमारों की शिकायतें धीरे-धीरे दूर की जायेंगी। उन्हें इसके लिए रुकना पड़ेगा। उनमें से एक नौजवान उठा और बोला—'सदियों से हम पीड़ा भोग रहे हैं, उसके समाधान के लिए तो हमें ठहरने को कहते हैं और चाहते हो कि स्वराज्य का लड्डू तुरन्त तुम्हारे मुँह में आ जाये। हम देखते हैं कि तुम तुरंत स्वराज्य कैसे प्राप्त करते हो?' तब मैंने दिल्ली के हिन्दुओं को प्रेरणा दी कि वे अछूत जातियों को अपने कुएँ से पानी लेने की आज्ञा दें, किन्तु इसमें मुसलमान कांग्रेसी हमारे कार्य में बाधक बने और थोड़ी देर के लिए तो यह लगा कि नौकरशाही की दुरभिसंधियों से अछूतवर्ग को मुक्त कराना आर्यसमाजियों के लिए भी सम्भव नहीं होगा। इसी संकटावस्था में मैंने ६ सितम्बर १६२१ को निम्न पत्र महात्मा गांधी को लिखा—"मैंने लाहौर से आपको तार दिया था जिसमें आपको सूचित किया था कि दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के माध्यम से मैं आर्थिक सहायता के लिए प्रार्थना करूँगा। किन्तु दिल्ली पहुँचने पर मैंने महसूस किया कि कांग्रेस के माध्यम से दलित जातियों का उत्थान करना कठिन है। दिल्ली तथा आगरा के चमार केवल इतना ही चाहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा प्रयुक्त कुओं से उन्हें भी पानी भरने दिया जाय, तथा हिन्दुओं की प्याउओं पर उन्हें बाँस की नली या पत्तों से पानी न पिलाया जाय। केवल इतना करना ही कांग्रेस के लिए कठिन प्रतीत हो रहा है। इतना ही नहीं, दिल्ली सदर के एक मुसलमान व्यापारी ने तो यहाँ तक कहा कि चाहे हिन्दू इन लोगों को अपने कुएँ से पानी भरने दें, मुसलमान उन्हें ऐसा करने से जबरदस्ती रोकेंगे क्योंकि चमार तो मुर्दा मांस खाते हैं।

मैं जानता हूँ कि हजारों चमार ऐसे हैं जो न शराब पीते हैं और न किसी तरह का मांस ही खाते हैं। इनमें से जो मुर्दा मांस खाते भी हैं, आर्यसमाजियों ने उन्हें इस गन्दी आदत से छुड़ाया है। किन्तु मैं पूछता हूँ—क्या मांसभक्षी हिन्दू और मुसलमान जीते प्राणियों का मांस नोचकर या निगलकर खाते हैं? क्या वे इन जीवों का मांस उनके मरने के बाद ही नहीं खाते? नागपुर में आपने कहा था कि १२ मास के भीतर स्वराज्य-प्राप्ति की एक शर्त दलित जातियों को उनके अधिकार दिलाने की होगी, तथा उनकी उन्नति सम्पादित करने से पूर्व ही आपने घोषणा की थी कि यदि ३० सितम्बर तक विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार को पूरा कर लिया जाता है तो एक अक्टूबर को स्वराज्य एक निष्पन्न तथ्य के रूप में हमें प्राप्त हो जायगा। स्वदेशी वस्त्रों का उपयोग तथा उसका प्रचार अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है, किन्तु जब तक हमारी साढ़े छह (६) करोड़ दलित जातियाँ ब्रिटिश नौकरशाही की शरण लेती रहेंगी तब तक स्वदेशी का विस्तार भी असम्भव ही होगा।

अब मैं अपनी सीमित शक्ति से दलित जातियों के उत्थान के कार्य में लगना चाहता हूँ। मैं नहीं समझता कि इन तथाकथित अछूत भाइयों के सहयोग के बिना जो स्वराज्य हमें मिलेगा, वह भारत राष्ट्र के लिए किसी भी प्रकार हितकारी होगा। मैं आपको यह पत्र केवल यही सूचित करने के लिए लिख रहा हूँ कि अब मैं कार्यकारिणी को आर्थिक सहयोग के लिए नहीं लिखूँगा। अपने सीमित साधनों से ही जो कुछ बन पड़ेगा करूँगा।

एक अन्य आवश्यक बात की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। आपने जलियाँवाला बाग की सारी जगह खरीद लेने पर जोर दिया है। यह किया जा चुका है। इस सौदे में मेरा भी थोड़ा हिस्सा रहा है। आपने अपने महान् प्रभाव से इस उद्देश्य के लिए धन संग्रह किया। वह स्थान खरीद लिया गया है और वहाँ शहीदों का उपयुक्त स्मारक बनाने के लिए लगभग डेढ़ लाख रुपया पड़ा है। किन्तु जलियाँवाला के अहाते की स्थिति मुझे तकलीफ देती है। मुझे बताया गया है कि जब लॉर्ड रीडिंग इस जगह को देखने के लिए गये थे तो सरकार के एक उच्च यूरोपियन अधिकारी ने कहा था कि इस स्थान पर हुए रक्तपात को लेकर भारतीयों में कोई बहुत उग्र आक्रोश की भावना दिखाई नहीं पड़ती। यह तो केवल कुछ आन्दोलनकारियों द्वारा मचाया गया गुलगपाड़ा ही है। क्या आप इसपर थोड़ा ध्यान देंगे?

आपने जलियाँवाला स्मारक पर जोर दिया है। उसे अधूरा ही छोड़कर आपने कलकत्ता में अहिंसक असहयोग आन्दोलन चलाया। राष्ट्र के असाधारण बहुमत ने आपके आदेश के आगे सिर झुकाया। इस कार्यक्रम के द्वारा आप नौकरशाही हुकूमत को ठप्प कर देना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम बात तो पदवियों को त्यागने की है। किन्तु इससे सरकार को ठप्प नहीं किया जा सकता। हाँ, यदि हम सरकारी तथा अर्ध-सरकारी शिक्षण-संस्थाओं से आधे छात्रों को भी बाहर निकाल लाने में सफल हो जाते हैं, तो कुछ-न-कुछ सफलता मिल जाती। मेरी विनम्र सम्मति में इस आन्दोलन से हमें कुछ भी नहीं मिला है। इस सम्बन्ध में अवशिष्ट कार्य तो नवस्थापित राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं को सुदृढ़ करना तथा शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना बनाने का है। इसके लिए उत्तेजक आन्दोलन की आवश्यकता नहीं है। आगे एक बात यह भी है कि यदि तीन-चौथाई वकील और बैरिस्टर अपनी वकालत छोड़ देते, तो कुछ हलचल मच जाती। किन्तु इसमें भी कुछ सफलता नहीं मिली। जिन उच्च-आत्मा वकीलों ने अपनी वकालत का परित्याग किया, उन्होंने राष्ट्र के राजनैतिक दृष्टिकोण को ऊँचा उठाने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदद तो की है, किन्तु इससे भी हम सरकार को ठप्प करने में सफल नहीं हुए हैं।

इसके बाद हम नागपुर में स्वीकृत उन शर्तों को भी पूरा नहीं कर सके हैं जो स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हमने निर्धारित की थीं। आपकी विजय आपको वास्तविक स्थितियों का ज्ञान कराने में बाधक है। विगत कुछ दिनों में मैंने पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त के कुछ मध्यम श्रेणी के हिन्दू तथा मुसलमान नेताओं से बातचीत की है। इन्हीं नेताओं के हाथ में जनता की बागडोर है। मैं जानता हूँ कि दोनों सम्प्रदायों के बीच आपसी विश्वास में कमी हुई है। दक्षिण के ब्राह्मणों और अब्राह्मणों के बीच के विवादों का अभी हल नहीं निकला है, तथा दलित जातियों को समाज के बृहद् अंश में मिलाने के कार्य में एक भी कदम नहीं उठाया गया है। आपने इस बारे में जो कुछ किया है, और बहुत-कुछ किया है, वह प्रशंसनीय है, किन्तु उसका प्रभाव अन्य असहयोगियों के द्वारा खत्म कर दिया गया है।

इस सबको एक ओर रखकर आपने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार को ही स्वराज्य-प्राप्ति का एकमात्र उपाय घोषित किया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुनः आपके निर्णय के समक्ष झुकी। विगत कुछ सप्ताहों में स्वदेशी वस्त्रों को लोकप्रिय बनाने के काम में बहुत-कुछ किया गया है। इससे विदेशी कपड़े के आयात पर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। किन्तु आपने पुनः घोषणा की है कि यदि ३० सितम्बर १९२१ तक विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार पूरा नहीं होता तो स्वराज्य-प्राप्ति की किसी सम्भावना के पूरा होने में १२ महीनों का इज़ाफा हो जायगा।

उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि आपके विचार में यदि सविनय अवज्ञा तथा उसके परिणामस्वरूप करों की अदायगी को रोका जाता है तो हिंसा भड़क उठने की सम्भावना है। मैं भी इस तथ्य पर विश्वास करता हूँ। किन्तु हमारे दृष्टिकोणों में अन्तर है। आप मानते हैं कि अहिंसक रहने में अभी तक आम जनता को अनुशासित नहीं किया गया है, किन्तु मेरी धारणा है कि यदि हम-आप लोगों को अनुशासन में रहना सिखा भी दें, तो भी नौकरशाही के सच्चे शिष्य उन्हें इतना भड़कायेंगे कि बचे-खुचे लोगों का अहिंसक रहना असम्भव हो जायगा। शायद कराची के खिलाफत सम्मेलन ने एक गणतन्त्र स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकार किया है जिसे बम्बई में मौलाना शौकत अली ने निम्न शब्दों में अनुमोदित किया है—यदि सरकार खिलाफत के मसले तथा पंजाब की शिकायतों का समाधान नहीं करती तो वे इण्डियन नेशनल कांग्रेस के आगामी अहमदाबाद-अधिवेशन में आजादी का झण्डा फहरा देंगे। क्या स्वराज्य की समस्या सुलझाने का यही उचित तरीका है ?

साढ़े छः करोड़ अछूत आपसे पृथक् हो गये हैं। मद्रास प्रान्त के अब्राह्मण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके कट्टर विरोधी हैं। अपनी प्रतिभा का ठेका रखनेवाले लोग, नरम दल-वाले, ये सब सरकार के समर्थक ही नहीं हैं किन्तु उससे भी दस कदम आगे जाने-वाले हैं। उत्तर भारत के लोग दक्षिणवालों से बिल्कुल अलग हैं। बिना किसी आपत्ति के २५ दिसम्बर १९२१ ई० (कांग्रेस अधिवेशन के आरम्भ होने के एक दिन पूर्व) तक आप जो कुछ आदेश दें उसका पालन किया जाना चाहिए, किन्तु उस दिन तक जिस स्वराज्य के लिए लोगों ने इतने शानदार बलिदान किये हैं, वह प्राप्त नहीं होता तो आपको अपने भविष्य के कार्यक्रम की योजना लेकर तैयार रहना चाहिए। किन्तु शायद आपकी आन्तरिक दृष्टि ने वह सब देख लिया है जो जन-साधारण से छिपा है।"

उस समय की अपने मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को जनता के समक्ष स्पष्टतया रख देने के लिए ही मैंने यह पूरा पत्र यहाँ उद्धृत कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८

विदेशी वस्त्रों की होली

महात्मा गांधी द्वारा शुद्ध स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का आन्दोलन चलाए जाने से बहुत पूर्व ही पंजाब में आर्यसमाज के कुछ नेताओं द्वारा यह आन्दोलन चल रहा था। भारत में आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ही स्वदेशी के प्रथम प्रचारक थे। मथुरा में ऋषि दयानन्द की जन्म-शताब्दी के अवसर पर शाहपुरा के राजाधिराज सर नाहरसिंह ने हाथ के कते तथा हाथ के बुने वस्त्रों के एक जोड़े को प्रदर्शनार्थ प्रस्तुत किया जिससे स्वदेशी-विषयक स्वामी दयानन्द के व्यावहारिक उपदेशों का परिज्ञान होता था। १९०२ ई० में हरिद्वारस्थ गुरुकुल के आचार्य का पदभार ग्रहण करने के बहुत पूर्व मैंने भी स्वदेशी को अपना लिया था। इसलिये विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार मेरे लिए कोई नई वस्तु नहीं थी।

किन्तु जब महात्मा गांधी ने सारे विदेशी वस्त्रों को जला डालने का आदेश दिया और जब यह कार्य बम्बई में एक बड़े प्रदर्शन के रूप में किया जानेवाला था, मैंने महात्मा जी को तार भेजकर कहा कि वे ऐसा करके विदेशियों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न न करें तथा उतारे गये विदेशी वस्त्रों को भारत के भूखे तथा नंगे लोगो में बाँटने की आज्ञा दे दें। भाई एण्ड्रूज ने भी इसी अभिप्राय का एक संदेश उन्हें भेजा।

मैंने भी इस विषय पर गांधी जी को एक विस्तृत पत्र लिखा जिसमें मैंने उनसे मत-भिन्नता रखनेवाले अन्य विषयों की भी चर्चा की। महात्मा जी ने इस पत्र का उत्तर हिन्दी में इस प्रकार दिया—"मुझे आपके पत्र मिले। बम्बई में मुझे इनके उत्तर देने का समय नहीं था। यदि आपका विदेशी वस्त्रों को जलाने के मेरे विचार से ही मतभेद है तब तो यह मामूली बात है। मैं इस निर्णय के अवसर के सम्बन्ध में आपको समझाने का इच्छुक हूँ। अन्य बातों में जहाँ आप मत-भिन्नता रखते हैं, कृपया मुझे उनके बारे में लिखें। चाहता हूँ कि आप गुरुकुल में हाथ के बुने वस्त्रों के लिए वित्तीय सहायता लें। भिन्न राय होने पर भी, यदि यह मत-भिन्नता बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हो, तो कोई कारण नहीं कि हमें एक-दूसरे की सहायता नहीं करनी चाहिए। आपके अन्तिम पत्र में मुझे निराशावादी दृष्टिकोण नजर आया। आप मुझे अपना छोटा भाई मानकर

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तार से लिखें तथा अपनी पीड़ा का मुझे भी भागी बनायें।"

इसके पश्चात् गांधी जी ने विदेशी वस्त्रों को जलाने के सम्बन्ध में प्रेस को दिये गये अपने वक्तव्य का खुलासा किया और इस स्पष्टीकरण तथा अन्य परिस्थितियों को देखते हुए मैं उनके दृष्टिकोण से सहमत हो गया। अन्य मतभेदों के बारे में मैंने उन्हें १३ अक्टूबर १९२१ ई० को लिखा—"हम लोगों के बीच दूसरा मतभेद इस बात को लेकर था कि जब सविनय अवज्ञा तथा करों की अदायगी न करने का निश्चय हुआ था, उसी समय हमें ब्रिटिश नौकरशाही को यह कह देना चाहिए था कि इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप यदि रक्तपात होता है तो इसके लिए अहिंसक असहयोग को उत्तरदायी नहीं ठहराया जायगा तथा किसी बाहरी हिंसा के भय से आन्दोलन के कार्य को भी बन्द नहीं किया जायगा। अब मैंने आपका प्रेस को दिया वक्तव्य पढ़ लिया है और मैं इससे संतुष्ट हूँ। अवसर आने पर मैं आपके साथ एकजुट होकर खड़ा हो जाऊँगा। मतभेद का अन्य कोई तीसरा कारण नहीं है।"

परन्तु जैसा कि बाद में ज्ञात हुआ और बारदोली के प्रस्ताव से सिद्ध भी हुआ, गांधी जी के बयान की एक से अधिक व्याख्यायें की जा सकती थीं। मैंने अपने पत्र में गांधी जी को बताया कि गुरुकुल में मैं हाथ के कते और हाथ के बुने वस्त्रों का चलन कर रहा हूँ, साथ ही मैंने वेदों की स्वामी दयानन्दकृत व्याख्या का अनुसरण करते हुए विश्वशान्ति-स्थापनार्थ किये जानेवाले साधनों को भी वर्णित किया। मैंने नौकरशाही के एजेण्टों के चंगुल में फँसी दलित जातियों को मुक्त कराने के स्वयं के प्रयत्नों का वर्णन कर इस पत्र को समाप्त किया।

इधर तो लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि विदेशी वस्त्रों को जलाना भारतवासियों का धार्मिक कर्त्तव्य है और इसी बात को ध्यान में रखकर दास, नेहरू तथा अन्य चोटी के नेताओं ने हजारों रुपये मूल्य के वस्त्रों की होली जलाई, उधर खिलाफतवाले मुसलमानों ने महात्मा जी से आज्ञा ले ली कि वे सारे विदेशी वस्त्रों को अपने तुर्की भाइयों के लिए बाहर भेज सकेंगे। मेरे लिए महात्मा जी का यह दुविधाग्रस्त आचरण एक भयानक आघात के तुल्य था। जहाँ सिद्धान्त का प्रश्न उठ खड़ा होता था वहाँ महात्मा जी हिन्दू भावनाओं के प्रति किंचित् मात्र भी सम्मान न दिखाकर कठोर रुख अपना लेते थे, तथा मुसलमानों द्वारा स्वकर्त्तव्य के प्रति लापरवाही दिखाने पर भी उनके हृदय में उनके प्रति कोमल भावना रहती थी। मैं उन दिनों दिल्ली में नहीं था जब कि तुर्की की राजधानी अंकारा में भेजे जाने के लिए वस्त्र इकट्ठे किये जा रहे थे। मेरा आश्रम तो सभी राष्ट्रवादियों के घर के तुल्य था, अतः विदेशी वस्त्र एकत्र करनेवाले मुसलमान उन सारे कपड़ों को वहाँ से उठाकर ले गये जो मेरे आने की प्रतीक्षा में रक्खे हुए थे और जिन्हें मेरे आने के पश्चात् जलाया जाना था। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी के इस विचित्र आचार-शास्त्र को नहीं समझ सका कि जिन वस्त्रों के द्वारा इस देश के लाखों गरीबों के नंगेपन को ढँका जा सकता है, उन्हें उनसे वंचित करने तथा उसी कपड़े को दूरस्थ देश को भेजने में क्या तुक है। यह तो वही बात हुई कि एक भिखारी अपने द्वार पर खड़े दूसरे भिखारियों के भिक्षा-पात्र को भरे—

आप मियाँ मंगते और द्वार खड़े दर्वेश।

गांधी जी के वचनों को पूरा किया गया और भारत के लोगों द्वारा उन्हें सत्याग्रही, धन तथा चर्खे प्रचुर मात्रा में दिये गये। तब भी वे स्थिर नहीं रहे। ३-४ नवम्बर १९२१ ई० को दिल्ली में अखिल भारत कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई गई। इस मीटिंग की कार्यवाही ने मुझे दूसरा आघात पहुँचाया। इस वर्ष के कांग्रेस सभापति सी० विजयराघवाचारियर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और उन लोगों को भरपूर गालियों दी गईं जो ईमानदारी के साथ इस बात में संदेह करते थे कि बड़े पैमाने पर कानूनों की अवहेलना करने का वक्त आ गया है। मैं इस बैठक के विस्तार में नहीं जाऊँगा। संक्षेप में इतना कहना ही पर्याप्त है कि सामूहिक रूप में सिविल-नाफरमानी के लिये शर्तें तय कर ली गईं। इनमें मुख्य बातें दो थीं—अस्पृश्यता का पूर्ण रूप से निवारण तथा स्थानीय स्तर पर उत्पादित हाथ से कते और हाथ से बुने कपड़ों का आबादी के ८० प्रतिशत लोगों द्वारा प्रयोग।

महात्मा गांधी ने कांग्रेस कमेटी के बहुमत को इस बात के लिए भी राजी कर लिया कि वह उन्हें बारदोली तालुका में सविनय अवज्ञा को जारी करने की तैयारी के लिये आज्ञा दे दें।

जालंधर के रायजादा हंसराज ने जालंधर जिले की एक तहसील को तथा लाला शंकरलाल ने दिल्ली नगर को सविनय अवज्ञा के लिए तैयार करने का वादा किया। यह स्वराज्य की ओर उठाया गया पहला कदम था।

इस अवसर पर एक और महत्त्वपूर्ण काम किया गया, वह था ७ और ८ नवंबर १९२१ ई० को हिन्दुओं के एक विशेष सम्मेलन का आयोजन। इसमें सरकार के खिलाफ कांग्रेस द्वारा स्वीकृत अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम को इसलिये लागू करने के लिए कहा गया था क्योंकि उसने गोरक्षा-विषयक हिन्दू जाति द्वारा की गई अनेक बार की प्रार्थनाओं को अनसुना कर दिया था। हकीम मुहम्मद अजमल खाँ इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे और उन्होंने एक नई सलाह दी। निम्नलिखित प्रस्ताव को तो इस सम्मेलन द्वारा स्वीकार किया जाना ही था—

"अखिल भारतीय हिन्दू महासभा वृन्दावन में नियुक्त अपनी उपसमिति के प्रस्ताव को पूर्णतया स्वीकार करती है। प्रस्ताव में कहा गया है कि कांग्रेस के तत्त्वावधान में चलाये जानेवाले अहिंसात्सक असहयोग के कार्यक्रम को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियान्वित करने के लिए गोरक्षा आवश्यक है। यह सभा समस्त हिन्दुओं को प्रेरणा देती है कि वे गोरक्षा को अपना कर्त्तव्य समझें और इसके लिए उपयुक्त कार्य करें।"

एक अन्य प्रस्ताव में आगे कहा गया—चूंकि (ब्रिटिश) युवराज का आगमन ब्रिटिश सरकार की ताकत को बढ़ाने का कारण बनेगा, इसलिये प्रत्येक हिन्दू का यह धार्मिक कर्त्तव्य है कि वह युवराज की भारत-यात्रा का पूर्ण बहिष्कार करे। उसे विदेशी वस्त्रों का भी बहिष्कार करना चाहिए और शुद्ध स्वदेशी को धारण करना चाहिए। फौजी छावनियों में लाखों गायें प्रतिवर्ष काटी जाती हैं, इसलिये किसी भी हिन्दू को पुलिस तथा सेना में विशेषतया, और अन्य विभागों में सामान्यतया नौकरी नहीं करनी चाहिए। यह पहला ही अवसर था जबकि मुझे हिन्दू महासभा में प्रविष्ट होने की प्रेरणा मिली, और जब उपर्युक्त प्रस्तावों को लागू करने के लिए एक उपसमिति बनाई गई तो मुझे उसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

किन्तु हकीम अजमल खाँ के सुझाव पर एक अन्य प्रस्ताव स्वीकार किया गया जो असहयोगियों के लिए विशेष अर्थ रखता था। यह इस प्रकार था—"यह महासभा धर्माचार्यों, साधुओं तथा पण्डितों से सादर प्रार्थना करती है कि वे उस अंग्रेजी सरकार के प्रति सहयोग करने की व्यवस्था वेदों तथा शास्त्रों के आधार पर प्रदान करें जो गोवध न करने की आज्ञा देती है, ताकि हिन्दुओं को जीवन देने वाली गोमाता की रक्षा हो सके।

हकीम साहब ने जमीयतउल-उलेमाए-हिन्द की स्थापना पहले ही कर दी थी जिसने खिलाफत की रक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार के खिलाफ सख्त फतवे जारी किये थे और उसका सुझाव था कि पण्डितों की भी एक ऐसी ही जमात संगठित की जाय, जो गोवध की आज्ञा देनेवाली राक्षसी सरकार के खिलाफ व्यवस्था दे।

जहाँ हकीम साहब सफल हो गये वहाँ हिन्दू इस प्रकार संगठन को बनाने में असफल रहे और मैं अब सोचता हूँ कि वे अपनी इस असफलता के कारण भाग्यशाली ही रहे। यदि "जमायते पण्डितान" बन जाती तो रूढ़िवादी कट्टरता के प्रवाह को अवरुद्ध करने में हिन्दू लोग उसी भाँति अक्षम हो जाते, जैसे कि मुसलमानों का एक विचारशील समुदाय मुसलमानी कट्टरता तथा मतान्धता को रोकने में अपने-आपको शक्तिहीन समझ रहा है। यह तो प्रसंगवश मैंने कह दिया है।

इस अवसर पर मेरा मुख्य कार्य तो कांग्रेस के नेताओं की दृष्टि में महात्मा गांधी की स्थिति को स्पष्ट करने का था। जब अन्य नेता महात्मा जी से कुछ भी निकलवाले में असफल रहे, तो मैंने इस विषय की चर्चा नितान्त स्पष्ट और खुले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में चला दी। संक्षेप में, मैंने उनसे कहा—आपकी घोषणायें सदा दो अर्थ वाली रही हैं। आप इस बात के लिए कटिबद्ध प्रतीत होते हैं कि दिसम्बर १९२१ ई० के अन्त तक हमें स्वराज्य ले लेना है और भारतवासी इसमें असफल रहते हैं तो आप या तो स्वयं को खत्म कर लेने की उन्हें धमकी देते हैं अथवा भारत के लोगों को अपने भाग्य पर छोड़कर हिमालय की ओर प्रस्थान करने की बात करते हैं। आप लोगों से यह आशा कैसे कर सकते हैं कि वे आश्वस्त होकर काम करें जबकि वे सोचते हैं कि दो मास से भी कम की अवधि में यदि वे अप्राप्य वस्तु को प्राप्त नहीं कर सके तो वे आपके प्रेरणाप्रद मार्ग-निर्देशन से वंचित रह जायेंगे? सीधा सवाल यह है कि यदि ३१ दिसम्बर १९२१ ई० तक स्वराज्य प्राप्त नहीं होता तो क्या आप इस आन्दोलन से अपने सम्बन्ध तोड़ लेंगे? इस प्रकार सीधा प्रश्न किये जाने पर महात्मा जी का जो उत्तर था वह पुनः आश्वस्त करनेवाला ही था—"यदि मैंने भारतवासियों को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए कृत-संकल्प पाया तो मैं उनका मार्गदर्शन करता रहूँगा।" नेताओं के उत्साह को बनाये रखने के लिए यह एक स्पष्ट उपलब्धि ही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९

दिल्ली के शहीदों का स्मारक

उस समय तक और उसके कुछ बाद तक मैंने महात्मा गांधी के विचारों की आलोचना के लिए कभी सार्वजनिक पत्रों का सहारा नहीं लिया, अपितु महात्मा जी से प्रत्यक्षतया सम्पर्क तथा पत्र-व्यवहार करके ही मैं संतुष्ट रहा।

७ एप्रिल १९१९ ई० को दिल्ली में आयोजित एक बृहत् सभा में ३० मार्च १९१९ ई० को दिल्ली में हुए शहीदों का एक स्मारक स्थापित करने का निश्चय किया गया। कलकत्ता से सेठ रग्घूमल ने तार देकर सूचित किया कि यदि इस स्मारक के लिए कोई उपयुक्त जगह तलाश कर ली जाती है तो वे वहाँ एक हाल बनाने के लिए एक लाख रुपया देंगे। १७ मार्च १९१९ ई० को हड़ताल समाप्त होने पर स्मारक के लिए कार्य आरम्भ हुआ और मैं धन-संग्रह में जुट गया। एक जगह को (सुप्रसिद्ध पटौदी हाउस, जो बाद में गांधीनगर के नाम से प्रसिद्ध हुआ) एक लाख रुपये में खरीदने का निश्चय हुआ और इसके लिए ५५ हजार रुपये तुरन्त अदा कर दिये गये। उपर्युक्त रकम नकद दे देने पर मुझे उक्त स्थान और मकान का अधिकार मिल गया। अवशिष्ट ४५ हजार रुपयों के लिए मैंने जायदाद के विक्रेताओं को एक प्रोमेसरी नोट लिखकर दे दिया जिसमें इस रकम पर साढ़े सात रुपया प्रतिशत वार्षिक ब्याज देने का वचन दिया गया था। यह रकम मेरे नाम चढ़ी ही रही क्योंकि जब मेरा धन-संग्रह का कार्य पूर्ण गति से चल रहा था, चीफ कमिश्नर ने शहीद स्मारक समिति के अध्यक्ष हकीम अजमल खाँ तथा कोषाध्यक्ष श्री के० ए० देसाई को सलाह दी कि वे मुझे धन-संग्रह करने से मना कर दें क्योंकि इससे लोगों में उत्तेजना फैलेगी। दुर्भाग्यवश दोनों सज्जनों ने मुझे चंदा एकत्र करने से रोका, अतः मैंने आगे इस बारे में उद्योग करना बन्द कर दिया। गर्म लोहे पर ही चोट मारनी चाहिए, यह एक पुरानी कहावत है, जो प्रत्येक काल में सत्य है। धन-संग्रह का कार्य जो एक बार छोड़ दिया गया, उसे पुनः चालू करना कठिन हुआ क्योंकि प्रथम तो मैं पंजाब-सहायता के काम में लग गया और उसके बाद अमृतसर कांग्रेस को सफल बनाने में मुझे जुट जाना पड़ा। जब ये कार्य समाप्त हुए तो मुझे गुरुकुल बुला लिया गया जहाँ से मैं अभी हाल में ही मुक्त हुआ हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने धन-संग्रह का कार्य पूर्ण उत्साह से आरम्भ किया था। किन्तु दिल्ली में इस कार्य को आरम्भ करने के तुरन्त बाद मुझे एक पूर्वप्रदत्त वचन के अनुसार गुजरात जाना पड़ा। मैं १६ नवम्बर को प्रातः दिल्ली से रवाना होना चाहता था ताकि २० को प्रातः नवसारी पहुँच सकूँ। किन्तु इसी बीच १७ को बम्बई में प्रिंस ऑफ वेल्स आ गए और एक भीषण दंगा हो गया, जिसका विवरण १८ को दिल्ली में हमें मिला।

एसोसियेटेड प्रेस ने तो तार से इतना ही समाचार भेजा था कि दंगों में गुण्डों तथा कुछ मिल-मजदूरों ने ही भाग लिया था, किन्तु दंगों को बन्द कराने में अपने वफादार साथियों यथा श्रीमती सरोजिनी नायडू, पण्डित नेकीराम, मौलाना आजाद सोमानी जैसों की सहायता से जब महात्मा गांधी सफल हुए, तो उन्होंने एक सार्वजनिक वक्तव्य में यह स्वीकार किया कि कातिलाना हमलों तथा आगजनी में न केवल बुद्धिजीवी वर्ग ने अपितु असहयोगियों तक ने प्रमुख तथा सक्रिय भाग लिया है।

लाला लाजपतराय मेरे साथ ही यात्रा कर रहे थे। वे बम्बई में २२ नवम्बर को होनेवाली कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में भाग लेने जा रहे थे। श्री चित्तरंजनदास तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू भी बम्बई जा रहे थे, किन्तु उन लोगों की प्रतीक्षा किये बिना तथा सारा मामला कार्यसमिति के समक्ष प्रस्तुत किये बिना ही महात्मा जी ने बिना आगा-पीछा सोचे अपने असहयोगी साथियों की निंदा की तथा अनशन करके सत्याग्रह आरम्भ करने की धमकी दी। महात्मा जी द्वारा की गई यह एक अन्य हिमालयतुल्य भूल थी। यह उनके कुछ अत्यन्त निष्ठावान् साथियों की राय थी। २२ नवम्बर तक उन्होंने प्रतीक्षा क्यों नहीं की, ताकि उपद्रव के कारणों की जाँच के पश्चात् कार्यसमिति के नाम पर एक मिला-जुला वक्तव्य प्रसारित किया जा सकता? लोगों की धारणा बनी कि महात्मा जी को स्वयं की प्रतिष्ठा तथा अहिंसा की भावना का अधिक ध्यान रहता है। ऐसा करते समय वे अपने उन हजारों अनुयायियों के साथ न्याय नहीं करते जो वीर-पूजा की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर चुके हैं तथा आगे भी करने के लिए तैयार हैं।

जब गांधी जी को बम्बई में कार्यसमिति की बैठक में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया गया, उस समय वे सूरत जिले के बारदोली तालुके में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने की तैयारी कर रहे थे। खारसूपा नामक स्थान पर एक प्राइवेट स्कूल था, जिसके संचालक उसे गुरुकुल का रूप देना चाहते थे। मुझे इसका उद्घाटन करने के लिए बुलाया गया था। जब मैं ताँगे में बैठकर वहाँ जा रहा था, तो मुझे लगा कि महात्मा गांधी के कुछ विश्वसनीय साथियों ने दान-दाताओं के एक बड़े वर्ग को इस विद्यालय को गुरुकुल का रूप न देने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फुसला लिया है। यह विद्यालय राष्ट्रीय कहलाता था, किन्तु उसे सरकारी स्कूलों से भिन्न गिनने का कोई कारण नहीं था क्योंकि पाठ्यक्रम तथा अनुशासन की दृष्टि से यह भी उन्हीं के तुल्य ही था। तथापि वहाँ उपस्थित लोगों के समक्ष मुझे बोलने के लिए कहा गया। मैंने पूछा कि क्या यहाँ के छात्रावास और स्कूल में तथाकथित अछूतों को बिना रोकटोक प्रविष्ट किया जाता है या नहीं? तब पता चला कि छात्रावास में अब तक कोई अछूत बालक प्रविष्ट नहीं हो सका है तथा जो तीन छात्र स्कूल में भर्ती किये गए हैं उन्हें भी अपने सहपाठियों के साथ कक्षा में बैठने की इजाजत नहीं है; इन्हें बरामदे में अलग बिठाया जाता है। अपने भाषण में मैंने व्यवस्थापकों को आड़े हाथों लिया और उन्हें कहा कि जब तक राष्ट्र का प्रत्येक बालक यहाँ स्वतंत्रतापूर्वक प्रविष्ट होने का अधिकारी नहीं बन जाता, तब तक वे अपने इस विद्यालय को राष्ट्रीय न कहें।

मेरा यह कथन बहरे कानों में नहीं पड़ा। स्कूल के प्रबन्धकों ने दूसरे ही दिन से दलित जातियों के लड़कों को कक्षा में बैठने की इजाजत देने के लिए अध्यापकों को मजबूर किया। परिणाम यह निकला कि अगले दिन आधे से अधिक छात्र गैरहाजिर रहे और उससे अगले दिन तो सारी बैंचें ही खाली हो गईं। केवल मुख्याध्यापक और एक अन्य अध्यापक को छोड़कर सारी अध्यापक-मण्डली भय-भीत होकर भाग गई। परिणाम यह निकला कि बारदोली के आन्दोलन के आरम्भ और अन्त तक स्वास्थ्यप्रद खुले स्थान पर बने विद्यालय के इस शानदार भवन पर ताला ही पड़ा रहा। कारण दलितवर्ग के लड़कों को तथाकथित सवर्ण बच्चों के साथ मिलने-जुलने का आग्रह करनेवाला कोई व्यक्ति उस समय था ही नहीं।

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से मैं सूपा तथा अन्य स्थानों पर गया। मैं बारदोली भी गया। मैंने खद्दर का प्रचार तो देखा किन्तु अस्पृश्यता के पूर्ण निवारण का कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हुआ। जिस सभा को मैंने सम्बोधित किया था, उसमें कुछ अछूत अन्य लोगों से मिल चुके थे। किन्तु मेरे मेजबान के परिवार के ही लोग जब सभा समाप्त होने पर घर गए तो उन्होंने सवस्त्र स्नान कर अछूतों के सम्पर्क में आने का प्रायश्चित्त किया।

मुझे एक दिसम्बर १९२१ ई० को नवसारी जाना था। मैंने सुना कि गांधी जी बारदोली जा रहे हैं तो मैंने उन्हें यह संदेश भेजा कि यदि उस दिन दोपहर बाद वे मुझे सूरत में मिलें तो मैं उनका कृतज्ञ होऊँगा। महात्मा जी ने अत्यन्त कृपापूर्वक इसे स्वीकार कर लिया और मैं उनके ठहरने के आश्रम में पहुँचा। मुझे उसी रात पेशावर मेल से प्रस्थान करना था, अतः मैं तुरन्त उनसे चर्चा करने में तल्लीन हो गया तथा अपने विचारों को उन्मुक्त होकर प्रस्तुत किया। डॉक्टर दीक्षित, श्रीमती अनुसूया देवी तथा एक दर्जन से अधिक महात्मा जी के निकट के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य वहाँ उपस्थित थे। मैंने महात्मा जी से पूछा कि वे एक भी ऐसे असहयोगी का नाम बतायें जिसे उन्होंने दंगा करते देखा हो। उनका उत्तर था कि उन्होंने ऐसे लोगों को अपनी आँखों से देखा है। उत्तर में मैंने उन्हें कहा कि शायद उन्होंने इन दंगाइयों को गांधी टोपी पहने तथा खद्दर के कपड़े धारण किये देखा होगा, क्योंकि मुझे पता था कि उत्तर भारत के लगभग ५०० सी० आई० डी० वालों ने शुद्ध खादी पहन रक्खी है। मैंने उनका ध्यान बम्बई के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में प्रकाशित इस टिप्पणी की ओर भी आकृष्ट किया जिसमें कहा गया था कि असहयोगकर्त्ताओं में आकस्मिक प्रतिक्रिया का भाव आ गया है और प्रिंस ऑफ वेल्स की विदाई के समय हजारों गांधी-टोपीधारी लोगों ने अपनी टोपियाँ लहराई थीं और उन्होंने शाही गाड़ी को 'हुर्रा' कहकर विदाई दी थी। मैंने कहा कि ये लोग सी० आई० डी० के थे।

गांधी जी निराश हो चुके थे, कांग्रेस का विश्वास भी हिल चुका था, किन्तु सरकार ने मूर्खतावश क्रिमिनल एमेण्डमेंट एक्ट लाकर लोगों को चुनौती दे दी। परिणामतः गांधी जी के पक्ष में लोगों का एक बार और झुकाव हो गया तथा जनता अंग्रेज नौकरशाही के खिलाफ हो गई। मैं स्वयं कार्यक्रम में परिवर्तन के लिए जोर देने पर तैयार था किन्तु नए दमनात्मक कानूनों के सहारे सरकार ने जो बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ कीं, लोगों पर दोषारोपण किया, उसके कारण मुझे भी अपने होठों को सी लेना पड़ा तथा उन लोगों का साथ देना पड़ा जो सरकार को चुनौती दे रहे थे।

उस समय देश में बड़ी हलचल थी। दिल्ली में भी नित्यप्रति २५ से ५० तक स्वयंसेवकों का दल गिरफ्तारी देने के लिए जाता था। जब कि कांग्रेस का आम कार्यकर्ता बहादुरी के साथ सविनय अवज्ञा में भाग ले रहा था, दिल्ली जिला तथा प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के प्रधान अपने घरों में सुरक्षित बैठे थे। मैं स्वयंसेवकों की टोली के साथ यह देखने जाता था कि चाहे कितनी ही उत्तेजना क्यों न दी जाये, वे लोग हिंसा पर उतारू न हो जायें। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि अधिकतम उत्तेजना दिये जाने पर भी हमारे स्वयंसेवक शान्त ही रहे। दिल्ली के शहीदों के स्मारक के लिए मैंने घर-घर तथा दूकान-दूकान पर जाकर चंदा एकत्र करना आरम्भ किया। चंदा एकत्र करने का मेरा कार्य पूरी तत्परता से चल रहा था जब कि दिसम्बर १९२१ ई० के अन्तिम सप्ताह में अहमदाबाद में सम्पन्न होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए मुझे बुलावा आया।

यहाँ बनाया गया पण्डाल, खादी नगर, स्वदेशी वस्तुओं की प्रदर्शनी, संगीत तथा यहाँ उपस्थित लोग—सब-कुछ शानदार था। खद्दर का जितना प्रयोग यहाँ दिखाई पड़ा वैसा बाद में कभी नहीं। आप पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मराठा तथा मद्रासी आदि में तब तक भेद नहीं कर सकते जब तक वे बोलते नहीं अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी विशिष्ट शैली में कोई कार्य नहीं करते। गांधी टोपी तथा खद्दर का धोती-कुर्ता ही उस समय आम पहनावा हो गया था। राजनैतिक उत्साह अपनी चरम सीमा पर था और एकता का बाह्य प्रदर्शन अपने चरमबिन्दु पर पहुँच गया था। परन्तु इस बात के चिह्न भी दिखाई दे रहे थे कि अवनति भी शीघ्र ही आरम्भ हो जायेगी।

इस बात की प्रथम चेतावनी उस समय सुनाई दी जब कि कार्यसमिति में हिन्दुओं पर मोपलाओं द्वारा किये गए अत्याचारों की निन्दा का सवाल आया। मूल प्रस्ताव में हिन्दुओं की हत्या करने, उनके घरों को जलाने तथा उनका बलात् धर्म-परिवर्तन करने के लिए सभी मोपलाओं की स्पष्ट निंदा की गई थी। हिन्दू सदस्यों ने ही इस प्रस्ताव पर जो संशोधन रक्खे, उससे इस प्रस्ताव का मात्र इतना ही रूप रह गया जिसमें कहा गया था कि उपर्युक्त अपराध में लिप्त कुछ लोगों की ही निंदा की जाए। किन्तु कुछ मुसलमान सदस्यों को तो इतना भी सहन नहीं हुआ। मौलाना फकीर तथा अन्य मौलानाओं ने यदि प्रस्ताव का विरोध किया तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु मुझे आश्चर्य तो तब हुआ जब मौलाना हसरत मोहानी जैसे एक कट्टर राष्ट्रवादी ने भी इस प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया कि मोपला लोगों का प्रदेश दारुल-अम्न नहीं रहा, बल्कि दारुल-हरब हो गया है, तथा उन्हें इस बात का भी अंदेशा था कि मोपलाओं के शत्रु अंग्रेजों के साथ हिन्दुओं की भी मिलीभगत रही है, इसलिए यदि मोपलाओं ने हिन्दुओं को कुरान या तलवार में से एक को चुनने के लिए कहा तो क्या गलत था ? और यदि अपने को मौत से बचाने के लिए हिन्दू लोग मुसलमान बन भी गए तो यह तो स्वैच्छिक धर्म-परिवर्तन ही था, इसे बलात् परिवर्तन नहीं कहा जा सकता। परिणाम यह निकला कि मोपलाओं में से कुछ की निंदा करनेवाला वह निर्दोष प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पास नहीं हो सका और उसे बहुमत के द्वारा ही स्वीकार किया जा सका। कुछ ऐसे अन्य भी संकेत थे कि मुसलमानों की यह धारणा बनती जा रही थी कि कांग्रेस द्वारा उनकी खामखयालियों की यदि थोड़ी भी उपेक्षा की गई तो यह बनावटी एकता टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाएगी।

जिन गांधी जी से मैं एक दिसम्बर को सूरत में मिला था तथा जिनके दर्शन मैंने २३ दिसम्बर को अहमदाबाद पहुँचकर किये थे, उनमें बड़ा अन्तर था। सूरत में वे मुझे निराश लग रहे थे, अहमदाबाद में मानो वे स्वर्ग की ऊँचाइयों पर उड़ रहे थे। कारण यह था कि अंग्रेज नौकरशाही ने अपनी दमनकारी नीति से उन्हें सहायता पहुँचाई थी। उत्साह की इस बहुलता ने महात्मा जी को एक अन्य हिमालय जैसी भूल तक पहुँचा दिया जिसका वर्णन करने के लिए आज स्थान नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०

पहला सर्वाधिकारी

भारत के आध्यात्मिक सम्राट् (महात्मा गांधी) की व्यक्तिगत देखरेख में एक ओर अहमदाबाद में कांग्रेस के अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थीं, तो दूसरी ओर दुनियावी ताकत के प्रतिनिधि वायसराय प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वागत की तैयारियाँ कर रहे थे। लॉर्ड रीडिंग ने प्रिंस ऑफ वेल्स को मालवीय जी के इन वचनों के आधार पर आमंत्रित किया था कि शाही मेहमान का जनता के द्वारा उत्साहपूर्ण स्वागत किया जाएगा, किन्तु जब वे कलकत्ता पहुँचे, उन्होंने पुनः अनुभव किया कि बम्बई और मद्रास की अपेक्षा यहाँ प्रिंस के आगमन का और अधिक जोरदार बहिष्कार किया जाएगा। इसलिए लॉर्ड रीडिंग ने जननेताओं के साथ किसी प्रकार के समझौते तक पहुँचना ही अच्छा समझा। रात्रि के समय स्व० देशबंधु चित्तरंजनदास को जेल से गवर्नर के निवास पर ले-जाया गया और हड़ताल समाप्त करने के लिए शर्तों पर विचार किया जाने लगा। मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती से परामर्श किया गया और महात्मा जी से तारों द्वारा विचारों का आदान-प्रदान हुआ। यद्यपि दास, नेहरू, लाला जी, आजाद और कई अन्य नेता अभी हाल ही में पकड़े गये थे और इन्होंने स्वेच्छा से ही यह आत्म-बलिदान किया था, तथापि मैं जानता था कि कांग्रेस के ये सभी नेता सरकार से किसी-न-किसी प्रकार का समझौता चाहते हैं। इनकी शर्त इतनी ही है कि इस के लिए सम्राट् का प्रतिनिधि पहल करे और समझौते के लिएउपर्युक्त अवसर भी आ गया हो। अहमदाबाद पहुँचकर मैंने तारों के माध्यम से हुआ सार पत्राचार पढ़ा और मेरा यह विचार बना कि यदि महात्मा जी इस समझौतावार्ता के बीच में अपना पाँव नहीं रखते (टाँग नहीं अड़ाते) तो स्थानीय नेता सरकार के साथ कोई-न-कोई सम्मानास्पद समझौता कर लेते। हड़ताल के शुरू होने के बाद भी मालवीय जी तथा मि० जिन्ना कलकत्ता से एक संदेश लेकर आये। उसी रात को पचास से कुछ अधिक कार्यकर्ता अनौपचारिक रूप से एकत्र हुए तथा मि० जिन्ना ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर एक अनुनयपूर्ण लघु वक्तृता में समझौते पर जोर दया। उपस्थित लोगों का बहुमत इससे प्रभावित हुआ और यह निश्चय किया गया कि दूसरे दिन मालवीय जी इस प्रस्ताव को विषय-समिति के सम्मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्खेंगे। किन्तु दूसरे दिन जब मालवीय जी ने अपनी मधुर वाणी से अपने विचारों को रखकर उपस्थित जनता में से अधिकांश को अपने प्रस्ताव की युक्तिसंगतता से प्रभावित कर लिया, तो उन्होंने तुरन्त लॉर्ड रीडिंग की प्रशस्ति-गाथा आरम्भ कर दी। इससे सारा माहौल ही बदल गया और उनका प्रस्ताव प्राय: सर्वसम्मति से अस्वीकार कर दिया गया। किन्तु मेरा विश्वास है कि यदि महात्मा जी बहस के लिए अन्य लोगों को पर्याप्त समय देते, तो भविष्य के लिए कुछ अनुकूल परिणाम अवश्य निकलता।

मालवीय जी के समझौता-प्रस्ताव को ठुकराने का तार्किक परिणाम जो निकला, उसे प्रसिद्ध अहमदाबाद-प्रस्ताव कहा गया। इसके द्वारा आपातकालीन स्थिति उत्पन्न होने पर महात्मा गांधी को प्रथम सर्वाधिकारी घोषित किया गया। उन्हें यह अधिकार दिया गया कि यदि वे गिरफ्तार हो जायँ तो वे अपने उत्तराधिकारी की घोषणा स्वयं कर सकेंगे और इसी प्रकार आगे नियुक्त सर्वाधिकारी भी अपने स्थान पर अन्य सर्वाधिकारियों को नियुक्त करने के अधिकारी होंगे। महात्मा जी ने इस प्रस्ताव का संचालन किस प्रकार किया, इसे वे लोग कभी भी भूल नहीं सकते जिन्होंने इस स्मरणीय बहस में भाग लिया था। महाराष्ट्र का दल गांधी जी के प्रस्ताव का विरोध करने के लिए तैयार होकर आया था, किन्तु एक पक्के कूटनीतिज्ञ की भाँति गांधी जी ने बहस को अगले दिन के लिए टाल दिया और इसी बीच वे रात्रि में तिलक के अनुयायियों से मिले। उस दल का सम्पूर्ण दृष्टिकोण ही बदल गया और मि० अभ्यंकर जो पहले दिन शेर की तरह गर्जना कर रहे थे, दूसरे दिन कार्यसमिति में प्रायः मूक बनकर बैठे रहे। जिस किसी ने महात्मा जी के प्रस्ताव का विरोध किया, उसे एक ओर ले-जाकर समझाया गया और वह महात्मा जी की वैयक्तिक अपील के जादू से प्रभावित होकर उनके आगे समर्पण कर बैठा। इसके पश्चात् एक सुदृढ़ अल्पमत के द्वारा, जिसे सर्वाधिकारी-नियुक्ति के मामले को लेकर वास्तविक संकोच था, यह कहा गया कि इस प्रस्ताव को पृथक् भागों में विभक्त किया जाय तथा आगे की जानेवाली सर्वाधिकारियों की नियुक्तिवाले अंश पर पृथक् मतदान कराया जाय। हालाँकि यह गुट भी फौजदारी कानून के संशोधनों की अवज्ञा करने का समर्थक था। मैं भी इन आपत्तिकर्ताओं में से एक था। हम महात्मा जी को सर्वाधिकारी बनाने के लिए तो सहमत थे, किन्तु उन्हें तथा उनके आगेवालों को अपने स्थान पर अन्य किसी को सर्वाधिकारी नियुक्त करने का अधिकार कार्यसमिति की अनुज्ञा के बिना देने के खिलाफ थे। किन्तु स्थिति को संचालित करने की महात्मा जी की तरकीब पुनः सफल हुई और प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया, हालाँकि सदस्यों की एक अच्छी-खासी संख्या ने मतदान में भाग नहीं लिया। दमनात्मक कार्यवाहियों के लिए सरकार की चुनौती को स्वीकार करने के अतिरिक्त हमारे पास कोई विकल्प नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, किन्तु सर्वाधिकारियों की अंधाधुंध नियुक्ति के हम खिलाफ थे। खुले अधिवेशन में महात्मा जी द्वारा निर्मित प्रस्ताव को प्रचण्ड बहुमत से इसीलिए स्वीकार किया गया क्योंकि वहाँ प्रस्ताव पर अन्य कोई संशोधन रक्खा ही नहीं गया।

खुले अधिवेशन में उस समय थोडी बेचैनी फैल गई जब मौलाना हसरत मोहानी ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर जाकर भी स्वराज्य प्राप्त करने के प्रस्ताव को रखने के लिए उठे। अनेक कोनों से 'साधु साधु' (Hear Hear) की आवाजें गूँज उठीं। किन्तु मि० मोहानी द्वारा खड़े किये गये आधार को जनसमाज की प्रतिमूर्ति (महात्मा गांधी) ने अपनी सादा किन्तु राजनीतिपूर्ण वक्तृता से ध्वस्त कर दिया।

कांग्रेस के निर्वाचित प्रधान देशबन्धु चित्तरंजनदास जेल में थे। महात्मा जी की सिफारिश पर हकीम अजमल खाँ को उनके स्थान पर अध्यक्ष चुना गया था, किन्तु कांग्रेस की वास्तविक कार्यवाही महात्मा जी द्वारा ही चलाई गई। जब कार्य-समिति का चुनाव करने के लिए विषय-समिति की बैठक हुई तो महात्मा जी ने ऐसे सदस्यों के निर्वाचन पर जोर दिया, जो प्रथम सर्वाधिकारी के साथ पूर्णतया सहयोग करें। श्री विट्ठल भाई पटेल ने प्रस्ताव रक्खा कि महात्मा गांधी द्वारा मनोनीत सदस्यों को स्वीकार कर लिया जाय। श्री जमनादास मेहता ने इसका अनुमोदन किया। मुझे ऐसा लगा कि ऐसा करके वे लोग महात्मा जी को उनकी माँग का अनौचित्य बताना चाहते हैं। किन्तु महात्मा जी ने इसे गंभीरता से लिया और वे सदस्यों का मनोनयन करने के लिए एकान्त में चले गये। तानाशाही की ओर यह पहला कदम था। दूसरा कदम मेरे विचार से १५ दिन के बाद बारदोली में बड़े पैमाने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ने के लिए भारत सरकार को दी जानेवाली पूर्वसूचना (अन्तिमेत्थम) था।

लाला लाजपतराय जेल में थे, इसलिए पंजाब के प्रतिनिधि चाहते थे कि मैं उनके साथ जाऊँ जबकि हकीम अजमल खाँ मुझे दिल्ली में ही रोके रखना चाहते थे। मैंने इन दोनों प्रस्तावों के बारे में महात्मा जी की राय ली तो उन्होंने मेरे दिल्ली में रहने के पक्ष में निर्णय दिया। मैं दिल्ली से उस समय आया था जबकि शहीदों के स्मारक के लिए चंदा इकट्ठा करने का मेरा कार्य पूर्ण उत्साह से चल रहा था, इसलिए मैं भी तुरन्त लौट जाना चाहता था, किन्तु मैंने बम्बई, आकोला तथा बरार में अन्य स्थानों की आर्यसमाजों को उनके वार्षिकोत्सवों में सम्मिलित होने का वचन पहले ही दे रक्खा था। इसलिए मैं ३० दिसम्बर की सायं बम्बई से चल पड़ा, किन्तु प्रस्थान से पूर्व मैंने महात्मा जी से जानना चाहा कि क्या उन्होंने बारदोली में बड़े पैमाने पर सविनय अवज्ञा आरम्भ करने की कोई तिथि निश्चित की है? उन्होंने मुझे बताया कि अभी तक उन्होंने ऐसा नहीं किया है। किन्तु जब मैं बम्बई पहुँचा तो मैंने पत्रों में उनके अल्टीमेटम को भी पढ़ा तथा 'यंग इण्डिया' में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित उनके अधिकृत वक्तव्य से जान लिया कि वे वास्तविक अर्थों में सर्वाधिकारी भी बन गये हैं। उनके इन कार्यों के प्रति मेरा जो मानसिक दृष्टिकोण था, उसे इस भूमिका से जाना जा सकता है जो मैंने एक लेख के आरम्भ में लिखी थी, जिसे मैंने बम्बई के पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा था—

एक डिक्टेटर की स्वीकारोक्ति—अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्य-समिति अभी तक निर्माणाधीन है, तथापि महात्मा गांधी ने उन लोगों के दृष्टिकोण के आधार पर अपने मत को प्रकट करना उचित समझा है जो लोग वर्तमान क्षण में ही भारतवासियों की आकांक्षाओं के लक्ष्य के रूप में पूर्ण स्वराज्य पर जोर देते हैं। शायद महात्मा जी सोचते हैं कि उनके लिए डिक्टेटर की समस्त शक्तियाँ ग्रहण कर लेने का समय आ गया है। यही आशंका उन्हें तथा कतिपय अन्यों को अहमदाबाद में पीड़ित कर रही थी। यदि महात्मा जी बड़ी चतुराई के साथ उन लोगों को अपने संशोधनों को वापस ले लेने के लिए मना नहीं लेते, जिन्होंने सर्वाधिकारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अपने संशोधन रक्खे थे, और यदि उन्होंने इन लोगों को पूर्ण प्रस्ताव पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करने के लिए न कहा होता तो खुले अधिवेशन में संशोधन रक्खे जा सकते थे, किन्तु वे जानते थे कि ऐसा होना असम्भव है। महात्मा जी से अहिंसापूर्ण असहयोग के अनेक पहलुओं पर मेरा मत-भेद है क्योंकि मैं मानता हूँ कि समस्त आन्दोलन का सार तत्त्व ही मन, वचन और कर्म की अहिंसा है, तथा हिन्दू शास्त्रों को मूल रूप में पढ़े बिना ही हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों पर अपने व्यक्तिगत विचारों को ही प्रामाणिक रूप में मनवाने की उनकी धृष्टता की भी मैं निन्दा करता हूँ। फिर भी मैंने उनके साथ काम किया है क्योंकि मेरे विचार में इस समय उनके इस आन्दोलन में ही हमारी मातृभूमि की मुक्ति निहित है। तथापि उनके दवी चरित्र के प्रति अपना सम्पूर्ण आदर तथा श्रद्धाभाव रखने पर भी मैं 'यंग इण्डिया' के ५ जनवरी १९२२ ई० के अंक में प्रकाशित उनकी विज्ञप्ति के विरोध में अपना प्रतिवाद प्रकाशित किये बिना नहीं रह सकता।"

बारदोली सत्याग्रह की तारीख के आने के पहले ही मालवीय जी ने देश के विभिन्न राजनैतिक दलों का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया और बारदोली-सत्याग्रह ३१ जनवरी तक के लिए स्थगित हो गया। मालवीय जी का गोलमेज सम्मेलन भी पूर्णतया असफल रहा। किन्तु बम्बई में उनके मिलने के पहले ही आकोला से मैंने महात्मा जी को दो बार स्पष्ट रूप से लिखा कि कांग्रेस के नेताओं का बहुमत किसी भी प्रकार के समझौते के पक्ष में दिखाई पड़ता है, इसलिए उन्हें अपने सख्त रवैये को थोड़ा उदार बनाना चाहिए। जब ग्रेस की अवधि समाप्त होने वाली थी, महात्मा जी ने २९ जनवरी १९२२ ई० को बारदोली में कार्यकर्ताओं की बैठक बुलाई और सही तौर पर सार्वजनिक रूप में सविनय अवज्ञा चलाने का प्रस्ताव पास करने के अनन्तर उन्होंने अपना स्मरणीय अन्तिमेत्थम वायसराय को भेज दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१

शहीद स्मारक की नियति

मैं अपने दक्षिण के प्रवास से हकीम अजमल खाँ द्वारा निर्धारित तिथि पर लौट आया। उन्होंने अहमदाबाद में मेरे आर्य भाइयों से कहा था कि वे उन्हें २० जनवरी १९२२ ई० तक मेरी सेवायें प्रदान कर सकते हैं और वे लोग भी उस दिन से पहले मुझे छोड़नेवाले नहीं थे। इसलिए मैं २० जनवरी को प्रातः दिल्ली पहुँचा। २१ जनवरी को पुनः मैं दिल्ली के शहीदों के स्मारक के लिए धन एकत्र करने के लिए अपने आश्रम से चल पड़ा। रास्ते में फतहपुरी मस्जिद के निकट डॉक्टर अन्सारी से मिलने के लिए उनके अस्पताल में रुका। वहाँ मुझे उनसे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि हकीम साहब तथा उन्होंने अंगोरा फण्ड के लिए धन-संग्रह आरम्भ कर दिया है, यह भी कि अब तक उन्होंने इस मद में पचास हजार रुपये एकत्र कर लिये हैं। उन्होंने यह भी कहा कि जब तक उनका इस फण्ड के लिए एकत्र करने का एक लाख रुपये का लक्ष्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक किसी प्रकार का अन्य धन-संग्रह उनके मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहिए।

मेरे आश्चर्य का कारण यही था। हिन्दुओं से धनसंग्रह का कार्य मैंने पूरा कर लिया था और अवशिष्ट धनराशि मुसलमान सज्जनों से एकत्र की जानी थी। इन्हीं के बीच मैंने अपना धन माँगने का आन्दोलन उस समय चला रक्खा था जब कि हकीम साहब के अत्याग्रहवश मुझे अहमदाबाद जाना पड़ा। हालाँकि मैंने धन माँगने में अपनी योग्यता दिखाई थी, किन्तु मैंने देखा कि डॉक्टर एम०ए० अंसारी इस कार्य में मुझसे आगे निकल गये हैं तथा उन्होंने कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवाले सभी मुसलमानों से कह दिया था कि जब तक अंगोरा-फण्ड के लिए एक लाख रुपया इकट्ठा न हो जाये, तब तक वे मेरी अपील की उपेक्षा करें।

तत्पश्चात् मैंने हकीम साहब तथा डॉक्टर अन्सारी से फौजदारी संशोधन कानून के खिलाफ सत्याग्रह करने की आज्ञा माँगी। उन्होंने मुझे कहा कि जब तक दिल्ली में नई शपथ लेकर एक हजार स्वयंसेवकों की भर्ती नहीं कर ली जाती, तब तक वे मुझे सत्याग्रह करने की आज्ञा नहीं देंगे। मैंने स्वयंसेवक भर्ती करनेवाले अधिकारी से पूछा तो उसने मुझे बताया कि भर्ती हुए स्वयंसेवकों की संख्या १२००० से भी अधिक है। इसपर मैं पुनः डॉक्टर अन्सारी के पास गया, जो उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे और उनसे कार्य आरम्भ करने की आज्ञा चाही, किन्तु इस बार उन्होंने एक और बहाना बनाया। उन्होंने कहा कि स्वयंसेवकों की टुकड़ियाँ बनाई जा रही हैं और उनके नायक आदि का मनोनयन करना है। इसके पश्चात् लेफ्टिनेण्ट और तत्पश्चात् कैप्टनों का चुनाव किया जाएगा। जब भी मैं डॉक्टर अन्सारी से मिला उनका यही उत्तर था कि जब प्रधान सेनापति की नियुक्ति हो जाएगी तब वे समस्त सेना को मेरा आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए मुझे बुलायेंगे और तभी सत्याग्रह आरम्भ किया जाएगा।

इसी बीच दिल्ली की महिलाओं ने अपनी एक स्वयंसेवक टुकड़ी बना ली थी और मुझे जिला कांग्रेस के कार्यालय में जाकर उन्हें अपना आशीर्वाद देने के लिए कहा गया। कांग्रेस कार्यालय जाने पर मैंने देखा कि वहाँ लगभग ६० महिलायें उपस्थित हैं। मैंने उन्हें स्वयंसेवकों के बिल्ले बाँटे तथा अपना हार्दिक आशीर्वाद दिया। उनमें एक भी मुसलमान महिला नहीं थी। पूछने पर पता चला कि कुछ महिलायें इस कार्य में इसी शर्त पर सम्मिलित हो सकती हैं यदि श्रीमती अजमल खाँ और श्रीमती अन्सारी उनका नेतृत्व करें, किन्तु उपर्युक्त महिलाएँ बाहर नहीं निकल सकती थीं।

मेरा आशीर्वाद प्राप्त होने पर महिलाओं की यह टोली स्वदेश-भक्ति के गीत गाते हुए नगर में भ्रमण करने लगीं। उन्होंने दिल्ली के नागरिकों को प्रेरणा दी कि प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन के दिन नगर में पूर्ण हड़ताल की जानी चाहिए। हिन्दू गोरक्षिणी सभा के अध्यक्ष के नाते मैंने भी प्रिंस के आगमन पर हड़ताल करने की प्रेरणा देनेवाले पोस्टरों का प्रसारण किया। इनमें कहा गया था कि प्रिंस का आगमन उस नौकरशाही के हाथ मजबूत करने के लिए हो रहा है जो फौजी छावनियों और सामान्य जनता में गोवध को प्रोत्साहन देती है तथा खालों और गोमांस के व्यापार के लिए भी गोहत्या करवाती है। किन्तु कांग्रेस के स्वयंसेवकों की सेना कभी बाहर नहीं आई। अनुशासित राष्ट्रीय सेना को मेरे द्वारा आशीर्वाद देने का दिन जब आया, तो श्री अब्बास हुसेन क्वारी बारदोली-प्रस्ताव लेकर आ गये और सारी कार्यवाही समाप्त हो गई। चलते-चलते मैं यह भी कह दूँ कि सरकारी पेन्शनयाफ्ता एक मुसलमान जो अपना नाम नहीं बताना चाहता था, के माध्यम से दिल्ली प्रदेश तथा जिला कांग्रेस समितियों के अध्यक्ष इस बीच दिल्ली के अधिकारियों से अपना सम्पर्क बनाये हुए थे।

जिस समय गांधी ने सत्याग्रह आरम्भ करने के पूर्व वायसराय को भेजा गया अपना अल्टीमेटम प्रकाशित कर दिया था और वायसराय ने जो उत्तर दिया वह भी जनता के समक्ष आ चुका था, उस समय दिल्ली की जो स्थिति थी, वही ऊपर वर्णित की गई है। दिल्ली कांग्रेस के नेताओं के कार्यों से मुझे घृणा हो गई थी, अतः मैंने महात्मा गांधी को निम्न पत्र लिखा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली, ७ फरवरी १९२२

आदरणीय महात्मा जी,

मैं आज पुनः आपको लिख रहा हूँ। मैंने वायसराय को लिखा गया आपका पत्र पढ़ा है। यदि बारदोली में सत्याग्रह की पूरी तैयारी नहीं है तो उसके बारे में इतनी जल्दी क्यों की जा रही है? उसकी तुलना में दिल्ली सार्वजनिक स्तर पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए कतई तैयार नही है। मैंने वायसराय का उत्तर भी पढ़ा है। वह हेत्वाभासपूर्ण तर्कों से भरा हुआ है। उसे अपनी भौतिक शक्ति में विश्वास है।

मैं प्रिंस के आगमन तक यहाँ ठहरूँगा। नेतागण बाहर बिल्कुल निकलना नहीं चाहते। शराब और अन्य नशीले पदार्थों के ठेकों की नीलामी हो चुकी है। इससे किसी को कोई परेशानी नहीं हुई। मैंने हिन्दू सभा की ओर से पूर्ण हड़ताल की प्रेरणा देनेवाले पोस्टर बँटवाये हैं, किन्तु जब तक प्रदेश तथा जिला कांग्रेस समितियों के अध्यक्ष अपनी स्वीकृति नहीं देते, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता।

सरकार की दमनात्मक नीति का विरोध करने के लिए यहाँ कोई कार्य नहीं हो रहा है। स्त्रियाँ जुलूस बनाकर जाती हैं, किन्तु पुरुष घरों में मुँह छिपाये बैठे हैं। इसलिए इस कार्य में मैं उपयोगी सिद्ध नहीं हो रहा हूँ। जहाँ तक बड़े पैमाने पर सविनय अवज्ञा का सम्बन्ध है, इसमें करों की अदायगी न करने के लिए लोगों को तैयार करना है। दिल्ली में न तो खद्दर पहनने के लिए प्रचार ही किया गया है और न चरखा कातने और करघों पर बुनने के लिए ही लोगों को प्रेरणा दी गई है। अछूतों के प्रति घृणा के भावों का निवारण करने में भी कांग्रेस को सफलता नहीं मिली है। शान्त वातावरण की तो चर्चा ही निरर्थक है। इसके अतिरिक्त असहयोग की अन्य बातों से मैं सहमत नहीं हूँ।

उपर्युक्त कारणों से मैं १५ या १६ फरवरी १९२२ ई० को दिल्ली से चल पड़ूँगा और आर्यसमाज का इतिहास लिखने का काम हाथ में लूँगा। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि परमात्मा आपको पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कराने में उसी प्रकार सहायता प्रदान करे, जैसाकि उसने आपके द्वारा भारत के लोगों में सत्य, निर्भीकता तथा वास्तविक स्वतन्त्रता जैसी भावनाओं को भरने में आपकी सहायता की है। मैं वायसराय को लिखे आपके पत्र के अन्तिम भाग से सहमत नहीं हूँ जिसमें आपने नवीन माँगें प्रस्तुत की हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि पारस्परिक समझौते की कोई गुंजाइश नहीं है।"

बारदोली सत्याग्रह के परिणामों पर मैं अपनी व्याख्या प्रस्तुत करना चाहता हूँ। १३ अक्टूबर १९२१ ई० को 'यंग इण्डिया' में गांधी जी ने "मृत्यु का भय" शीर्षक एक लेख लिखा। इसमें उन्होंने एक प्रसंग में लिखा था—

"जब हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे तो हममें से अनेक मृत्यु के भय से मुक्त हो

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुके होंगे। अब तक इस कार्य की सिद्धि में प्रायः युवकों ने ही मृत्यु का आलिंगन किया है। अलीगढ़ में जिनकी मृत्यु हुई वे सब २१ वर्ष से कम आयु के थे। अब यदि सरकार गोली चलाती है तो मैं आशा करता हूँ कि कुछ बड़ी आयु के लोग सर्वोच्च बलिदान करने का अवसर प्राप्त करेंगे।"

पुनः जब कि दमन की कार्यवाही ही अपने यौवन पर थी और अहिंसक असहयोगियों से जेलें भरी जा रही थीं, तब महात्मा गांधी ने २२ दिसम्बर १६२२ ई० को 'यंग इण्डिया' में लिखा—"एक सतर्क मित्र ने मुझे लिखा है कि यन्त्रणा का अध्याय तो अभी आरम्भ ही हुआ है और अपने ध्येय को यदि हम सामने रखते हैं तो हमें उसके लिए और बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। वह तो यह भी सोचते हैं कि हमें जलियाँवाला की पुनरावृत्ति को भी आमन्त्रित करना होगा। मैंने अपने मित्र को आश्वस्त किया है कि मेरे आशावाद में इन सभी के लिए स्थान है और वे जितना सोचते हैं उससे अधिक बुरे के लिए भी। परन्तु मैं यह भी देखता हूँ कि यदि भारत शान्त तथा अनुद्विग्न रहता है और मानसिक रूप से भी प्रतिकार नहीं करता, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है, तथापि भारत की वर्तमान उल्लासमय मानसिक स्थिति में यह उतना कठिन नहीं है—हमारी तैयारी और प्रतिक्रिया का अभाव ही पाशविक शक्ति को समाप्त कर देगा, क्योंकि उसे अपनी पाशविकता को तृप्त करने के लिए समुचित खाद्य ही नहीं मिलेगा, तथा लॉर्ड रीडिंग हमसे बड़ी-बड़ी बातें करने की अपेक्षा स्वयं पश्चात्ताप की भाषा अपनायेंगे और भारत के वातावरण में नवीन राजनय के प्रवर्तन के लिए पर्याप्त अवसर देखेंगे।"

बम्बई में मालवीय कान्फ्रेंस के समाप्त हो जाने के बाद बारदोली सत्याग्रह-समिति की बैठक बारदोली में ही हुई। महात्मा गांधी ने श्री वल्लभभाई पटेल को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया था। २ फरवरी १६२२ ई० की 'यंग इण्डिया' में इस बैठक की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इसमें से कुछ उद्धरण मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—"इस बैठक में खद्दरधारी ४००० प्रतिनिधि उपस्थित थे। (सम्पूर्ण बारदोली की आबादी ८५००० है) ५०० महिलायें भी इनमें थीं जिनमें से अधिकांश खद्दर पहने थीं। मैंने बैठक में उपस्थित लोगों से प्रत्येक शर्त पर उनकी राय पृथकशः माँगी। वे इसमें निहित आशय को समझते थे। अछूत-समस्या पर असहमति की एक आवाज उभरकर आई। उसने कहा कि मैं सिद्धान्तरूप में सही हूँ, किन्तु किसी रिवाज को अचानक तोड़ देना कठिन है। मैंने निष्कर्ष निकाला कि श्रोतागण ने अपना मन पक्का बना लिया है।"

मैंने अपने एक विगत लेख में बताया है कि अस्पृश्यता बारदोली से अब तक बहिष्कृत नहीं की जा सकी थी। वहाँ गांधी जी के समक्ष ग्राम सभा में जो लोग अछूतों से मिले थे, उन्होंने घर आकर वस्त्रोंसहित स्नान किया था। बारदोली के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों द्वारा अपने वचनों को पूरा करने के सम्बन्ध में गांधी जी को भी शंका थी, जिसे उन्होंने अपने लेख में निम्न प्रकार व्यक्त किया था—

"ग्राम सभा के पहले विट्ठल भाई पटेल, कुछ कार्यकर्ताओं तथा मैंने परस्पर विचार-विमर्श किया और यह अनुभव किया कि हमें आगे की कार्यवाही को लगभग एक पखवाड़े तक के लिए स्थगित करने का प्रस्ताव पास करना चाहिए, ताकि सभी ६० नेशनल स्कूलों में अछूत बालकों को प्रवेश दिलाकर स्वदेशी की तैयारी को और पक्का कर लिया जाय। बारदोली के बहादुर तथा सच्चे कार्यकर्ताओं ने स्थगन की बात को ही अनसुना कर दिया। उन्हें पक्का विश्वास था कि हिन्दू आबादी का ५० प्रतिशत से अधिक अछूतोद्धार के कार्यक्रम पर पूरे तौर पर तैयार है तथा अपनी भावी आवश्यकताओं के लिए प्रचुर मात्रा में खद्दर भी बना लेंगे। वे सरकार के साथ अन्तिम परिणाम निकालने के लिए कृतसंकल्प थे।"

मुझे यह देखकर खेद हुआ कि महात्मा जी उस क्षणिक उत्साह को देखकर ही प्रवाह में बह गये। पूरी तैयारी का यह अर्थ निकालना उचित नहीं था कि लक्ष्य को सचमुच प्राप्त कर लिया गया है।

चौरीचौरा-काण्ड भारत राष्ट्र के भाग्य में लिखा था और वह एक वज्रपात की भाँति आया। इसकी प्रतिक्रिया इतनी भीषण नहीं हुई होती, यदि असहयोग की तैयारियों की घोषणा तुरहीनाद के साथ नहीं की जाती। अपने साबरमती आश्रम से बारदोली के लिए प्रस्थान करने से पूर्व महात्मा गांधी ने साबरमती नदी के किनारे सवा लाख से अधिक लोगों को सम्बोधित किया। यह एक अपूर्व अवसर था। लंगोटी धारण करनेवाला जनता का यह बेताज बादशाह अपनी सम्पूर्ण ताकत के साथ उद्दीप्त वाणी में बोल उठा—"मैं चाहता हूँ कि गुजरात में कई जलियाँवाला बाग जैसे काण्ड हों। मैं चाहता हूँ कि अंग्रेजों की गोलियों से मेरी मौत हो। मैं यह भी चाहता हूँ कि अंग्रेजों की गोलियों से बहुसंख्यक गुजराती मारे जायें···आदि।

जब लगभग पाँच वाक्यों की साधारण वक्तृता तार के द्वारा इधर-उधर पहुँची तो सारा देश उत्तेजित हो उठा। किन्तु इसकी विफलता भी भयानक थी। मैं शीघ्रता में कोई कदम उठाने का विरोधी था और चौरीचौरा-काण्ड के बारे में पत्रों में पढ़ने के बाद महात्मा गांधी ने जब लॉर्ड रीडिंग को अपना प्रत्युत्तर भेजा और उसे प्रकाशित भी करा दिया तो मैंने बारदोली में गांधी जी को निम्न तार भेजा—

"चौरीचौरा काण्ड अत्यन्त भयानक है। कृपया आक्रामक प्रचार बन्द करें। दिल्ली में अखिल भारतीय बैठक बुलायें। नवीन कार्यक्रम बनायें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२

दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति

बारदोली में कांग्रेस कार्यकारिणी ने जो प्रस्ताव ११ फरवरी १९२२ ई० को स्वीकार किया, वह बहुत सादा था। उसके द्वारा अहिंसक असहयोग की प्रतिज्ञा के अन्तर्गत की जाने वाली सारी कार्यवाहियों को वापस लेने के लिए कहा गया था जिसमें सविनय अवज्ञा के लिए की जाने वाली आक्रामक तैयारियाँ भी सम्मिलित थीं। प्रस्ताव में कहा गया था—"सार्वजनिक स्तर पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन तब तक स्थगित रक्खा जायगा, जब तक कि वातावरण इतना अहिंसक न बन जाये, ताकि गोरखपुर में घटित अत्याचारपूर्ण घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो तथा १७ नवम्बर १९२१ ई० और १३ जनवरी १९२२ ई० को क्रमशः बम्बई और मद्रास में घटी गुण्डागर्दी की घटनायें फिर न घटें।" पूर्ण प्रस्ताव को रखने के पश्चात् कार्यसमिति ने निर्णय दिया—"पूर्ववर्णित प्रस्तावों का क्रियान्वयन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा उन्हें पुष्ट किये जाने के पश्चात् ही किया जा सकेगा। इसी प्रयोजन के लिए उक्त कमेटी की बैठक भी शीघ्र बुलाई जायगी। महामन्त्री को आदेश दिया जाता है कि वह हकीम अजमल खाँ (तत्कालीन कार्यवाहक अध्यक्ष) से परामर्श कर उक्त बैठक शीघ्रातिशीघ्र बुलायें।"

१२ फरवरी १९२२ ई० को कार्यसमिति की दूसरी बैठक हुई और सर्वविदित रचनात्मक कार्यक्रम का प्रारूप बनाया गया। २४ और २५ फरवरी १९२२ ई० को दिल्ली में उपर्युक्त प्रस्तावों को संपुष्ट करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक आमन्त्रित की गई। २४ फरवरी को गांधी जी ने कुछ चुने हुए नेताओं की एक बैठक बुलाई। वे इन लोगों की उपस्थिति में उन प्रतिवादों को पढ़ना चाहते थे जो उन्हें सी० आर० दास, पण्डित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय तथा स्वयं के वफादार शिष्यों, यथा महादेव देसाई तथा जॉर्ज जोसफ जैसों से प्राप्त हुए थे, जो उस समय जेलों में सड़ रहे थे। इन नेताओं ने अपने पत्रों में कार्यसमिति के बारदोली-प्रस्ताव का विरोध किया था। मैं यहाँ उस विस्तार में जाना नहीं चाहता कि किस प्रकार की शिकायतें इन नेताओं ने की थीं और स्थिति पर महात्मा गांधी द्वारा पूरी पकड़ न रख पाने के कारण उन्होंने किस प्रकार निराशा व्यक्त की थी। जेल से बाहर रहे नेता तथा सामान्य कार्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ता इस बात पर जोर देने के लिए तैयार थे कि या यो बहिष्कार के चार-पाँच बिन्दुओं को पुनरुज्जीवित किया जाय अथवा कार्यक्रम में पूर्ण परिवर्तन किया जाय। महात्मा जी ने चुने हुए नेताओं की एक परामर्शदात्री समिति बुलाई, किन्तु वहाँ लोगों की भीड़ बहुत बढ़ गई और उसमें गुप्तचर विभाग के दो व्यक्ति भी घुस गये जिन्हें बड़ी कठिनाई से मैं बाहर निकाल सका।

विचार-विमर्श आरम्भ हुआ। उपस्थित लोगों में से बहुतों का प्रतिरोधात्मक रुख देखकर महात्मा जी ने टालमटोलवाली नीति अपनाई। धीरे-धीरे कुछ वस्तुओं के बहिष्कार की नीति को स्वीकार कर लिया गया और गांधी जी द्वारा संशोधित, बारदोली में स्वीकृत कार्यसमिति का प्रस्ताव अन्तिम रूप में इस प्रकार घोषित किया गया—"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ११ और १२ फरवरी को कार्यसमिति द्वारा पारित प्रस्ताव पर ध्यानपूर्वक विचार करने के अनन्तर उपर्युक्त प्रस्ताव का अनुमोदन करती है तथा आगे निश्चय करती है कि विशिष्ट स्थानों और विशिष्ट कानूनों को ध्यान में रखते हुए आक्रामक अथवा रक्षात्मक सविनय अवज्ञा आन्दोलन को जारी रक्खा जा सकता है। इसके लिए शर्त यही होगी कि इस आन्दोलन को तत्-तत् प्रान्तीय समितियों की आज्ञा अथवा प्रेरणा से ही चलाया जा सकेगा। इस प्रकार के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की आज्ञा तभी दी जायगी जब कि कांग्रेस या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी या कार्यसमिति द्वारा रक्खी गई शर्तों का सख्ती से पालन किया जायगा।

विभिन्न स्थानों से जो रिपोर्टें प्राप्त हो रही हैं वे बताती हैं कि विदेशी वस्त्रों के लिए दिया जानेवाला धरना भी उतना ही जरूरी है जितना शराब की दूकानों के आगे दिया जानेवाला धरना। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति बारदोली-प्रस्तावों में वर्णित भावना के अनुसार शराबबन्दी के लिए दिये जानेवाले धरने की ही भाँति इस प्रकार के धरने को भी प्रामाणिक मानती है और उसके लिए अधिकार प्रदान करती है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी यह चाहती है कि लोग इस बात को समझें कि कार्यसमिति के प्रस्तावों का यह अर्थ नहीं है कि असहयोग के मूल कांग्रेस कार्यक्रम को छोड़ दिया गया है और न ही इसका यह अर्थ है कि सार्वजनिक सविनय अवज्ञा को भी स्थायी रूप से त्याग दिया गया है। परन्तु कांग्रेस यह मानती है कि कार्यकर्ताओं के द्वारा व्यापक स्तर पर अहिंसात्मक आन्दोलन के लिए एक वातावरण बनाया जाना चाहिए जिसमें कार्यसमिति द्वारा निर्मित रचनात्मक कार्यक्रम पर लोगों का ध्यान केन्द्रित किया जा सके।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की धारणा है कि सविनय अवज्ञा लोगों का अधिकार और कर्त्तव्य है और इसे उस समय काम में लाया ही जाना चाहिए जब कि राज्य लोगों की इच्छाओं का प्रतिरोध करने लग जाय।"

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सायंकालीन अधिवेशन में जब उपर्युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधित प्रस्ताव रक्खा गया तो इसपर अनेक संशोधन कुकुरमुत्तों की भाँति प्रस्तुत किये जाने लगे और सदस्यगण अपने भाव निर्बाध रूप से प्रकट करने लगे; जबकि अन्य लोग केवल असहयोग को पुन: स्वीकार करने के लिए ही जोर दे रहे थे। नागपुर के डॉक्टर बी० एस० मुंजे ने इस अवसर का उपयोग 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात् सादरं प्रति सादरम्' की नीति अर्थात् 'आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत' वाली कहावत पर जोर देने के लिए किया। उन्होंने महाभारत का सुप्रसिद्ध श्लोक उद्धृत किया—

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य:।
तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्म:।।
मायाचारो मायया बाधितव्य:।
साध्वाचारो साधुना प्रत्युपेय:।।

संक्षेप में इस श्लोक का अभिप्राय है कि मिथ्या पर सत्य की विजय के लिए सामान्य साधनों की अपेक्षा कूटनीति का प्रयोग किया जाना चाहिए। उन्होंने सम्पूर्ण कार्यक्रम को बदल देने पर जोर दिया और कांग्रेस की समस्त कार्य-योजना की समीक्षा के लिए जाँच कराये जाने पर बल दिया। गांधी जी ने यहाँ भी वही नीति अपनाई जो वे अहमदाबाद कांग्रेस में अपना चुके थे और संशोधनों के प्रस्तावकों को उन्होंने परामर्श दिया कि वे कार्यवाहक महामन्त्री श्री विट्ठलभाई पटेल से विचारविमर्श कर लें। वे अपने सारे प्रस्तावों को एक सामान्य संशोधन का रूप दे दें क्योंकि उनके अनेक संशोधन अतिव्याप्ति-दोष-युक्त थे। इसी प्रयोजनवश बैठक दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई। ऐसा करना बुद्धिमत्ता-पूर्ण ही था क्योंकि डॉक्टर मुंजे तथा पण्डित मदनमोहन मालवीय ने उपस्थित जनता पर अपना प्रभाव डाला था और यदि इन संशोधनों को तुरन्त रक्खा जाता तो परिणाम के बारे में कुछ कहना सम्भव नहीं था।

मैंने भी एक संशोधन रक्खा था, जो इस प्रकार था—

१. आज के परिवर्द्धित प्रस्ताव के आगे निम्न अंश बढ़ाया जाये—"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी यह निर्णय देती है कि कांग्रेस संगठन के बाहर के लोगों द्वारा की गई किसी भी हिंसा के लिए वह उत्तरदायी नहीं होगी तथा यदि कांग्रेस का कोई सदस्य व्यक्तिश: हिंसा का दोषी पाया जाता है तो उसे कांग्रेस कमेटियों तथा अन्य सम्बन्धित संस्थाओं से बहिष्कृत कर दिया जायगा। यदि उपर्युक्त संशोधन रद्द कर दिया जाता है तो मैं प्रस्ताव करता हूँ—

२. सविनय अवज्ञा आन्दोलन चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक, समाप्त कर दिया जाय।"

दूसरे दिन भी मैं डॉक्टर अंसारी के स्थान पर गया जहाँ गांधी जी तथा विट्ठलभाई ठहरे हुए थे। संशोधनों के अन्य प्रस्तावकों को तो अपने संशोधन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापस लेने के लिए आसानी से मना लिया गया, किन्तु श्री विट्ठलभाई द्वारा प्रस्तुत सभी तर्क मेरा समाधान करने में असफल रहे। तब मुझे महात्मा जी के पास ले जाने के अतिरिक्त उनके पास और कोई उपाय नहीं बचा। उस समय गांधी जी के पास मालवीय जी, श्री टी० प्रकाशम तथा कुछ अन्य नेता बैठे थे। महात्मा जी द्वारा प्रस्तुत सभी युक्तियाँ मुझे अपने संशोधन को वापस लेने के लिए मनवाने में असफल सिद्ध हुईं। मेरी मुख्य आपत्ति नितान्त सत्याधारित थी। मेरा इस बात पर विश्वास नहीं था कि जब तक सी० आई० डी० वाले गड़बड़ करने पर तुले हुए हैं, तब तक रचनात्मक कार्यक्रमों पर ध्यान केन्द्रित करनेवाले कार्यकर्ता एक ऐसा वातावरण बना सकते हैं जो सार्वजनिक रूप से अहिंसात्मक आन्दोलन को चलाने के अनुकूल होगा। पुन: मैं यह भी नहीं मानता था कि सामूहिक सविनय अवज्ञा के अनुकूल वातावरण कहीं कारखाने में तैयार किया जा सकता है। इन कारणों से मैं संशोधनों को वापस लेने के लिए राजी नहीं हो सका। अन्त में महात्मा जी ने मेरी हास्य की प्रवृत्ति को जागृत किया और कहा, सभा में कोई भी व्यक्ति आपका समर्थन नहीं करेगा, और मुझे उस समय बड़ी शर्म महसूस होगी जब मैं देखूंगा कि मेरे भाई साहब का संशोधन समर्थन के अभाव में ठुकरा दिया गया है।

मुझे अच्छे-खासे अल्पमत द्वारा समर्थन किये जाने का आश्वासन मिल चुका था। इसमें दूसरों के अलावा पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के गम्भीर देशभक्त सभापति बाबा खड़कसिंह भी सम्मिलित थे। किन्तु मेरा उत्तर इतना ही था—महात्मा जी, आत्मा की आवाज पर चलने का एकाधिकार अकेले आपको ही नहीं मिला है। मैं भी अपने विवेक के अनुसार कार्य करता हूँ और ऐसा करते समय यदि मैं केवल एक के अल्पमत में ही रह जाऊँ, तो भी मैं अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहने में आपका ही अनुकरण करूँगा। किन्तु महात्मा जी तब भी चाहते थे कि मैं अपने संशोधन को वापस ले लूँ। मैंने पूछा कि क्या मेरा अपनी बात पर अड़े रहना कमेटी के कार्य में बाधक बनेगा? सारी बातें हिन्दी में हुई थीं और मैं उसका सारांश ही लिख रहा हूँ। महात्मा जी ने अपने उसी सहज स्पष्टवादितापूर्ण तरीके से उत्तर दिया—"हमको मीटिंग में हरकत होगी।" मैं एकदम परास्त-सा हो गया और मैंने खुले अधिवेशन में अपने संशोधन को वापस लेने का वचन दिया, किन्तु साथ ही कहा कि इसके बाद कांग्रेस के कार्य से मेरा कोई वास्ता नहीं रहेगा। अत: मैं अपने साहित्यिक कार्य को पुन: आरम्भ करने के लिए कुरुक्षेत्र चला गया तथा दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान डॉक्टर अंसारी की सेवा में १२ मार्च १९२२ ई० को कांग्रेस के सारे प्रशासकीय कार्यों से औपचारिक रूप से त्यागपत्र भेज दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३

महात्मा जी जेल में

जिन परिस्थितियों में मैंने अपने संशोधन को वापस लिया था, उससे संबंधित घटनाओं को जनता के समक्ष प्रकट करने का मेरा कोई इरादा नहीं था, किन्तु जब श्री विट्ठलभाई पटेल ने अखिल भारतीय कमेटी के महामन्त्री की हैसियत से सार्वजनिक तौर पर घोषणा की कि मैंने बिना कारण बताये ही अपना संशोधन वापस ले लिया है, तो मुझे इससे सम्बद्ध सारा विवरण प्रेस को देना पड़ा। मेरे संशोधनों के बारे में विभिन्न व्याख्यायें की जा रही थीं। २ मार्च १९२२ ई० की 'यंग इण्डिया' में महात्मा गांधी ने मेरे दृष्टिकोण की अपनी ही व्याख्या प्रस्तुत की, उन्होंने लिखा—"मेरी धारणा है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी जिस प्रस्ताव को रखवाना चाहते थे, उसके सम्बन्ध में उनकी निरर्थक ही आलोचना की जा रही है। उनकी युक्ति पूर्णतया ईमानदारी से भरी है। वे सोचते हैं कि हम लोग एक संस्था के तौर पर सचमुच अहिंसा में नीति के रूप में विश्वास नहीं करते, इसलिये हम लोग अहिंसा-विषयक कार्यक्रम को कभी पूरा नहीं कर सकेंगे। इसलिये वे कहते हैं कि हमें कौन्सिलों में जाना चाहिए और जो कुछ थोड़ा-बहुत हमें मिले, वह हमें लेना चाहिए। वे उन लोगों की स्थिति की अवास्तविकता को प्रकट करना चाहते थे जो केवल वाणी द्वारा ही अपनी नीतियों का बखान करते हैं, किन्तु अपनी अन्तिम मुक्ति के लिए हिंसा की ओर देखते हैं। मैं भी कहता हूँ कि यदि कांग्रेस के लोग अहिंसा की नीति में पूर्णतया विश्वास नहीं रखते, तो वे उसका आचरण करने का आडम्बर कर देश को नुक्सान पहुँचा रहे हैं। यदि भावी सरकार का आधार ही हिंसा होगी तो निश्चय ही कौंसिलों में जाने के पक्षपाती लोग सर्वाधिक बुद्धिमान् हैं। कारण कि ये लोग उम्मीद करते हैं कि वर्तमान शासक जिन तरीकों से कौंसिलों के माध्यम से हमपर शासन कर रहे हैं, वे भी विदेशी शासकों के हाथों से कौंसिलों के द्वारा ही शक्ति छीन लेंगे।"

महात्मा गांधी ने अचूक दृष्टि से मेरी वास्तविक स्थिति को देखा था क्योंकि मैंने अनेक बार उन्हें बताया था कि किस प्रकार उनके अनेक समर्पित साथी भी हिंसा के द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करने का विचार अपने मन में पाले हुए हैं तथा वे किस प्रकार अहिंसापूर्ण असहयोग की नीति को केवल धौंसपट्टी के रूप में प्रयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहते हैं ताकि नौकरशाही इससे प्रभावित होकर उनसे कोई-न-कोई समझौता कर ले। इसीलिये मैं भी आनेवाले चुनावों में स्वराज्य पार्टी द्वारा चुनाव लड़ने के खिलाफ हूँ। उनका सिद्धान्त चाहे कितना ही शब्दाडम्बरपूर्ण शैली में प्रकट किया जाय, उनके आचरण के अनुरूप नहीं ठहरता। अब यदि महात्मा गांधी ने २ मार्च १९२२ को जो कुछ लिखा, उस दिन से अपने विचार नहीं बदले हैं, तो उन्हें स्वराजिस्टों से कहना चाहिए कि वे सहयोगवादियों तथा स्वतन्त्र कांग्रेसवादियों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लें। महात्मा जी आधा दर्जन के करीब उन लोगों को भी समझायें जो अल्पसंख्या में होने पर भी नौकरशाही को उन्हीं की नीतियों से परास्त करने का सपना लेकर कौंसिलों में जाने के लिए लालायित हैं। उन्हें इन लोगों को समझाना चाहिए कि वे मन, वाणी तथा कर्म से अहिंसात्मक वातावरण का निर्माण करने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने का प्रयास करें।

मैं 'यंग इण्डिया' के २ मार्च १९२२ ई० के अंक से गांधी जी के एक अन्य लेख का उद्धरण देना भी पसन्द करूँगा—"एक मित्र ने चेतावनी दी है कि मुझे प्रदत्त अपनी सर्वाधिकारी की शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना है। वह शायद नहीं जानता कि मैंने इसका एक बार भी प्रयोग नहीं किया है। सचेतन अथवा अचेतन स्थिति में सर्वाधिकारी के पद का दुरुपयोग करना तो दूर रहा, मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि कहीं अचेतन रूप से मैंने स्वयं का ही दुरुपयोग करने का अधिकार तो अन्यों को नहीं दे दिया है। मैं मानता हूँ कि इस बात को लेकर मुझे ऐसा भय है, जैसा कि पहले कभी नहीं हुआ था।"

यह वास्तव में सत्य है कि २४ और २५ फरवरी १९२२ ई० को दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की जो बैठक हुई थी, उसमें गांधी जी की स्थिति का लोगों ने अनुचित लाभ उठाया था। उनकी नैतिकता पर आधारित कमजोरी का लाभ उठाया गया और स्वयं के बेहतर फैसले के विरुद्ध उन्हें अपने ही साथियों की सनक के आगे झुकने के लिए मजबूर किया गया। यदि कोई सर्वाधिकारी सफल होना चाहे तो उसे साबरमती के सन्त की तुलना में अधिक सख्त तथा दृढ़ होना चाहिए।

मैं अपनी बात को जारी रक्खूं। डॉक्टर एम० ए० अन्सारी अजमेर की प्रान्तीय कांग्रेस में भाग लेने गये, जिसकी अध्यक्षता महात्मा गांधी को करनी थी। वे वहाँ से गांधी जी का मेरे नाम सन्देश लाये जिसमें मुझे अपने इस्तीफे पर जोर न देने के लिए कहा गया था। इसी सन्देश में कहा गया था कि गांधी जी भविष्य के एक ऐसे कार्यक्रम के बारे में सोच रहे हैं जिसके अनुसार सार्वजनिक स्तर पर जब एक बार सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर दिया जायगा तो वह स्वराज्य के प्राप्त होने से पूर्व तक कदापि बन्द नहीं किया जायगा। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजमेर से लौटने पर महात्मा जी को गिरफ्तार कर लिया गया और १८ मार्च १९२२ ई० को अन्ततः उन्हें सजा सुना दी गई।

१२ मार्च १९२२ ई० को दिये गए मेरे त्यागपत्र का मूल पाठ इस प्रकार था—"मैं कल दिल्ली से कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ और निकट भविष्य में कांग्रेस के किसी विचार-विमर्श में भाग नहीं ले सकूँगा। मैं मानता हूँ कि महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित उच्च आदर्शों के अनुकूल शान्त और अहिंसायुक्त वातावरण भारतीय जनता में उत्पन्न किया जाना फिलहाल असम्भव है, इसलिए इस धारणा से सहमत होना भी कठिन है कि निकट भविष्य में कानूनों की सविनय अवज्ञा का आन्दोलन चलाया जा सकेगा। ऐसा मानना मेरी आत्मा के प्रतिकूल होगा। इसके अतिरिक्त, असहयोग-विषयक प्रचार के कुछ बिन्दुओं के सम्बन्ध में कार्यसमिति की धारणा से मेरे दृष्टिकोण में भिन्नता है। इसलिए मैं कांग्रेस-संगठन के सभी पदों से अपना त्यागपत्र देता हूँ। सम्भवतः यह कहा जाएगा कि अब जब कि नौकरशाही के हाथों ने महात्मा जी को हमसे छीन लिया है, तो मुझे अपने मतभेदों को भुला देना चाहिए। किन्तु अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में अपने संशोधन को वापस लेते समय मैंने महात्मा जी से स्पष्टतया कह दिया था कि अपने विश्वासों के अनुरूप मैं अब इस कांग्रेस संगठन के कार्यभारी के रूप में काम नहीं कर सकता। अब यदि मैं कोई काम अपना कर्त्तव्य समझकर करूँ और साथ-साथ कांग्रेस में भी रहूँ, तो यह न तो महात्मा जी और न स्वयं के प्रति ही सत्याचरण होगा।"

जब मैं अगली बार डॉक्टर अन्सारी से मिला तो उन्होंने मुझे कहा कि वे मेरा त्यागपत्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के समक्ष प्रस्तुत नहीं करेंगे। उन्होंने मुझे त्यागपत्र पर आग्रह न करने के लिए भी कहा। उसके बाद मुझे बटाला में सम्पन्न हुई पंजाब कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। यहाँ श्री पटेल ने कहा कि यह केवल महात्मा जी की ही राय है और इसे कार्यसमिति अथवा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के किसी प्रस्ताव की सहमति प्राप्त नहीं है जिसमें कहा गया हो कि मेरे जैसे विचार रखनेवाले व्यक्ति को कांग्रेस के सारे पदों का त्याग कर देना चाहिए। श्री पटेल तथा अन्य नेताओं ने मुझे स्पष्ट कहा कि बहुमत मेरे इस दृष्टिकोण से सहमत है कि कांग्रेस संगठन के बाहर होनेवाली हिंसा के लिए हम जिम्मेदार नहीं ठहराये जा सकते। इसपर मैं रचनात्मक कार्यों के लिए सहमत हो गया और कांग्रेस को प्रेरणा दी कि वह अस्पृश्यता-निवारण के प्रश्न को हाथ में ले।

मैं कुरुक्षेत्र में अपने लेखन-कार्य में लगा था और वहीं से २४ अप्रैल १९२२ ई० को मैंने बटाला के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में मैं लुधियाना, जालंधर और बटाला रुकता गया। यहाँ मैंने सार्वजनिक भाषण देकर कांग्रेस में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण संचार करने का प्रयत्न किया। बटाला में पंजाब प्रान्तीय सम्मेलन का अधिवेशन २८ से ३० अप्रैल १९२२ ई० तक हुआ। श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री विट्ठलभाई पटेल, श्री अब्बास तैयबजी, लाला दुनीचन्द और पंजाब के सभी नेता वहां उपस्थित थे। उन्होंने मुझपर दबाव डाला कि मैं उनकी सहायता करूँ क्योंकि उनकी धारणा के अनुसार महात्मा गांधी की राय को ही कांग्रेस का नीति-वाक्य मानना गलत है। मुझे सबसे अधिक पीड़ा देनेवाली बात तो गांधी जी को कैद में रक्खे जाना था जिसने भारतीय जनसमाज के उत्साह को ही मंद कर दिया था। कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं में उनकी कर्त्तव्य-भावना को जागृत करने के लिए मैंने पंजाब का भ्रमण करना तय किया। मैं यह भी चाहता था कि लोग अपने रचनात्मक कामों को पूरा करने में रुचि लें। अतः सम्मेलन के अन्तिम दिन मैंने बटाला में दो भाषण दिये। लौटते समय मैंने अमृतसर में भी व्याख्यान दिया और अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए दिल्ली तथा कुरुक्षेत्र में कुछ दिनों तक निवास किया। १९ मई को मुझे अम्बाला बुलाया गया क्योंकि इसी दिन महात्मा जी को सजा सुनाई गई थी और इसलिये यह सर्वसम्मति से निश्चय हुआ था कि प्रत्येक मास की १८ तारीख को एक आयोजन रक्खा जाये जिसमें प्रार्थना की जाय कि महात्मा जी भारत की जनता को शीघ्र मिलें, अर्थात् उन्हें मुक्त किया जाय। मैं इस अवसर का वर्णन एक खास उद्देश्य से कर रहा हूँ। गांधी जी ने आदेश दिया था कि जून १९२१ ई० तक जो एक करोड़ रुपया इकट्ठा हुआ है, उसे एक वर्ष में ही खर्च करना है। वे कांग्रेस के कार्य के लिए द्रव्यमय पूँजी एकत्र करने के पक्ष में नहीं थे। वे मानते थे कि धन एकत्र करने से पारस्परिक विभेद पैदा होते हैं और दलबन्दी होती है। वे कहते थे कि भारत के लोग ही उनकी एकत्रित पूँजी है और श्रद्धा ही वह ब्याज है जिसे एकत्र कर प्रतिवर्ष व्यय करना चाहिए। उनका सिद्धान्त निम्न प्रकार से था—

घर-बार दे दफन को, कौड़ी न रख कफन को।
जिसने दिया है तन का, देगा वही कफन का॥

और उनके निष्ठावान् अनुयायी उनकी सलाह के अनुरूप ही कार्य करने के लिए कृतसंकल्प थे। वे धन को पानी की तरह बहा रहे थे। इसका उदाहरण मुझे कांग्रेस के मन्त्री ने दिया। अम्बाला और कुरुक्षेत्र के बीच की दूरी केवल २६ मील की है, इसलिए दिन के समय मैंने मझौले दर्जे में ही सफर किया था। मैं अंबाला छावनी दोपहर एक बजे पहुँचा। मैंने महिलाओं में एक भाषण दिया, पुनः एक प्राइवेट कार में अम्बाला नगर पहुँचा जहाँ एक सार्वजनिक सभा में मैं बोला। वहाँ से आठ बजे सायं छावनी लौटा और एक व्याख्यान दिया। रात को ११ बजे तक मैं सभा में रहा। किन्तु दूसरे दिन सवेरे जब मैं रेलवे स्टेशन पहुँचा तो मुझे उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ जब प्रथम श्रेणी के दो टिकट मुझे दिये गये—एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लिए और दूसरा कुरुक्षेत्र गुरुकुल के व्यवस्थापक के लिए, जो मेरे साथ आये थे। मैंने आग्रह किया कि इन टिकटों को छोटे दर्जे के लिए बदल दिया जाय। मन्त्री नाराज प्रतीत हुए और उन्होंने शिकायत की कि मैं उन्हें सेवा करने का मौका नहीं दे रहा हूँ। बहुत-कुछ माथापच्ची करने पर सचाई सामने आई। मन्त्री ने एक नेता का नाम बताया, जिनका नाम्मोल्लेख मैं यहाँ नहीं करूँगा। वे गत मास उसी गाड़ी से आये, जिससे मैं आया था, उसी दिन आधी रात की गाड़ी से वे लौट गए। उनके लिए अलग से मोटरकार का प्रबन्ध किया गया, जिसपर २०० रुपये व्यय हुए तथा उनकी यात्रा और अन्य खर्चों पर कुल २५० रुपये या कुछ अधिक व्यय आया। मन्त्री ने मुझे भी धन की एक थैली स्वीकार करने के लिए कहा, जिसे ग्रहण करने से मैंने इन्कार कर दिया। मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने उनसे कहा कि वे इतनी तेज चाल से न चलें तथा जनता के धन का अपव्यय न करें। इसके पश्चात् मैंने अनेक स्थानों पर देखा कि कांग्रेस के कार्यकर्ता शब्दशः तो गांधी जी की आज्ञाओं का पालन करते हैं, किन्तु उनके उदात्त परामर्श की भावना की ओर ध्यान नहीं देते।

तीन अन्य स्थानों पर जाकर मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में भाग लेने लखनऊ आया। रास्ते में मैं हरिद्वार में साधु-महामण्डल का संगठन करने के लिए ठहरा, जिसकी नींव अहमदाबाद में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर डाली गई थी। मैं जून ६ को प्रातः लखनऊ पहुँचा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में अस्पृश्यता-निवारण के लिए एक उपसमिति की नियुक्ति के प्रस्ताव पर बल देने के लिए ही मैं लखनऊ गया था। देश के सभी भागों से प्रतिनिधि आये थे। कार्यसमिति में मेरा प्रस्ताव थोड़े कटे-फटे रूप में आ पाया, किन्तु अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में मैंने उसकी मुख्य भावना को पुनरुज्जीवित कर दिया। जिस मुख्य उद्देश्य के लिए यह बैठक बुलाई गई थी उसका प्रयोजन मेरे विचार में महात्मा जी को जेल में डालने से उत्पन्न हुई निराशा के भावों को दूर करने के उपायों पर विचार करना था। इस बैठक में बंगाल तथा अन्य स्थानों के नेताओं ने बड़े पैमाने पर सार्वजनिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने पर जोर दिया, क्योंकि उनकी धारणा थी कि ऐसा करके ही लोगों में पुनः विश्वास लाया जा सकता है। श्री सेनगुप्त को देशबन्धु चित्तरंजनदास का, जो अभी जेल में थे, उत्तराधिकारी समझा जाता था। मैंने अलग से उनकी राय जाननी चाही क्योंकि मीटिंग में उन्होंने अपनी जबान को बन्द ही रक्खा था। उनका उत्तर मेरी आँखें खोल देनेवाला था। उन्होंने कहा—"लोग सविनय अवज्ञा के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हैं, चाहे वह व्यक्ति-स्तर पर की जाये या सार्वजनिक स्तर पर। किन्तु यदि मीटिंग में अपनी राय देने के लिए कहा जाय, तो मैं भी शेर की तरह गर्जना करूँगा।" मैंने अन्य लोगों से भी व्यक्तिशः विचार-विमर्श किया। सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग इस बात से सहमत थे कि सविनय अवज्ञा से चिपके रहना व्यर्थ है। किन्तु सवाल यह था कि बिल्ली के गले में घण्टी कौन बाँधे ? पण्डित मोतीलाल, जो अभी जेल से छूटकर आये ही थे, तथा नेताओं की सामूहिक बुद्धि ने, जिसमें मालवीय जी प्रमुख थे, एक प्रस्ताव का मसौदा बनाया जिसमें जाँच के लिए एक कमेटी की बात कही गई थी और इस प्रकार उस गणनीय दिन की कार्यवाही स्थगित हुई। मैंने धन के दुरुपयोग का विरोध किया। स्वामी सत्यदेव तथा कुछ अन्यों ने मेरा समर्थन किया। बनारस के दार्शनिक डॉक्टर भगवानदास कार्यक्रम के लिए एक व्यावहारिक सुझाव लेकर आये। मेरे विचार से इसके द्वारा स्थिति को बचाया जा सकता था और स्वराज्य पार्टी के उत्थान को भी अनावश्यक बनाया जा सकता था। किन्तु एक दार्शनिक के व्यावहारिक प्रस्तावों की किसे परवाह थी ? वे स्वयं भी तो जनता के समक्ष आने में कतरा रहे थे। नेतागण सामान्य कार्यकर्ताओं को व्यर्थ की आशाओं में ही लटकाये रखना चाहते थे, बजाय इसके कि वे उनके असन्तोष का बहादुरी से सामना करते। इसलिए प्रचण्ड बहुमत से निष्फल जाँच का प्रस्ताव पास कर दिया गया, जिसपर कुछ हजार रुपया और व्यय होना था। जाँच के परिणाम के बारे में हमारी पूर्वनिश्चित धारणा बन ही चुकी थी। बाहर जाने से पहले ही जब जाँच-बोर्ड के सदस्यों ने अपरा मन पक्का कर लिया तो परिणाम तो सामने ही था। इतिहास ही बतायगा कि जाँच-समिति के सदस्यों ने असहयोग से उत्पन्न जड़ता को दूर करने के लिए कौंसिल-प्रवेश तथा अनुकूल सहयोग के लिए जो नये दल का गठन किया, वह कितना उपयोगी सिद्ध हुआ। मैंने अस्पृश्यता-निवारण के लिए कदम उठाने का जो प्रस्ताव रक्खा था, उसका क्या परिणाम हुआ, इसे बताने के लिए एक पृथक् लेख की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४

अस्पृश्यता-निवारण

निम्न पत्रव्यवहार यह बतायेगा कि किस प्रकार अस्पृश्यता-निवारण के लिए मेरे द्वारा प्रस्तुत रचनात्मक कार्यक्रम को व्यर्थ कर दिया गया था—

मेरा प्रथम पत्र

सेवा में,

श्री महामन्त्री जी

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी,

कैम्प—दिल्ली।

आपके पत्र संख्या ३३१ तथा ३३२ की प्राप्ति को मैं धन्यवादसहित स्वीकार करता हूँ। इन पत्रों में कार्यसमिति तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के उन प्रस्तावों का उल्लेख है, जो अस्पृश्यता के सम्बन्ध में पास किये गए हैं। मैं यह दुःखपूर्वक अनुभव करता हूँ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का प्रस्ताव अभी जिस रूप में है, वह उन सारी बातों का उल्लेख नहीं करता जो कमेटी द्वारा स्वीकार की गई थीं। तथ्य निम्न प्रकार हैं—

मैंने निम्न पत्र २२ मई १९२२ ई० को तत्कालीन महामन्त्री श्री विट्ठल भाई पटेल को भेजा था। देश के प्रमुख पत्रों में यह २३ मई १९२२ ई० को प्रकाशित भी हुआ था।

प्रिय श्री पटेल,

एक समय था (देखें 'यंग इण्डिया' का २५ मई १९२१ ई० का अंक) जब महात्मा गांधी कांग्रेस के कार्यक्रम में अस्पृश्यता के प्रश्न को सबसे आगे रखते थे। अब मैं अनुभव करता हूँ कि दलित वर्गों की स्थिति को सुधारने का सवाल एक अँधेरे कोने में डाल दिया गया है, जब कि खादी हमारे सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ताओं का ध्यान आकृष्ट किये हुए है, और इस वर्ष खादी को प्रोत्साहन देने के लिए १७ लाख की उधार राशि आवंटित की गई है। राष्ट्रीय शिक्षा की ओर ध्यान देने के लिए एक सुदृढ़ उपसमिति गठित की गई है। इसके लिए धन एकत्र करने के लिए विशेष अपील भी की गई है। मैं अनुभव करता हूँ कि अस्पृश्यता-निवारण के प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सन्दूक में वन्द करके रख दिया गया है। इसका प्रमाण है अहमदाबाद, अहमदनगर तथा मद्रास को दी गई इस कार्य-विषयक अल्प सहायता। मेरी तो राय है कि नौकरशाही ने जब कि ६ करोड़ अछूतों में से अधिकांश को हमारे खिलाफ कर दिया है, तो इस स्थिति में खादी की योजना भी पूर्णतया सफल नहीं हो सकती। शायद कार्यकारिणी के सदस्य भी नहीं जानते कि इस कारण हमारे दलित भाई भी खादी को छोड़ रहे हैं और सस्ते विदेशी कपड़े खरीद रहे हैं। मैं आगामी ७ जून को लखनऊ में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आगे निम्न प्रस्ताव रखना चाहता हूँ—"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के तीन सदस्यों की एक उपसमिति तथाकथित दलित जातियों से सम्बन्धित प्रस्ताव को क्रियान्वित करने के लिए गठित की जाये। इस कार्य के प्रचार के लिए ५ लाख की राशि रक्खी जाये तथा भविष्य में सहायता-विषयक आवेदनपत्रों पर विचार करने का अधिकार इसी उपसमिति को रहे।" मेरा सुझाव कार्यकारिणी द्वारा निम्न रूप में संशोधित किया गया—"यह समिति स्वामी श्रद्धानन्द, श्रीमती सरोजिनी नायडू, सर्वश्री जी० वी० देशपाण्डे तथा आई० के० याज्ञिक की एक समिति गठित करती है। यह कमेटी एक ऐसी योजना तैयार करेगी जिसके द्वारा सुझाये गए व्यावहारिक उपायों से सारे देश में तथाकथित अछूतों की दशा को सुधारा जा सकेगा, साथ ही यह समिति कार्यसमिति की अगली बैठक में सम्प्रति २ लाख रुपये इस कार्य हेतु एकत्र करने का प्रस्ताव भी विचारार्थ रक्खेगी।"

श्री पटेल ने मुझे कार्यकारिणी के सुझाये गए प्रस्ताव को यथावत् स्वीकार कर लेने के लिए कहा। मैंने कार्यसमिति के प्रस्ताव को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और मैंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की प्रथम बैठक में ही २ लाख की जगह ५ लाख की राशि रखने के लिए कहा, इस शर्त के साथ कि अखिल भारतीय समिति अपने कोश से एक लाख रुपया देगी और शेष के लिए अपील प्रकाशित की जायगी।

कार्यसमिति की ओर से श्री राजगोपालाचार्य ने प्रस्ताव किया कि कांग्रेस के फण्ड से राशि निश्चित किये जाने की अपेक्षा यह होना चाहिए कि जब कार्यसमिति इस योजना को स्वीकार कर ले, उसी समय उक्त समिति इस उद्देश्य के लिए, जितना उचित समझे उतनी राशि प्रदान करे। मुझे उनके शब्दों का ठीक स्मरण नहीं हो रहा है, किन्तु मेरी जानकारी में प्रस्ताव पर संशोधन का जो अभिप्राय ऊपर व्यक्त किया गया है, वह सत्य है।

इसपर बड़ा शोरशराबा हुआ सब ओर से यह जानकारी माँगी गई कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के हाथ में जो नकद जमापूँजी है, उसे घोषित किया जाय। अध्यक्ष (हकीम अजमल खाँ) मुझे एक ओर ले गये और अकेले में कहा कि कांग्रेस के पास अभी बहुत थोड़ी धनराशि है और यदि वास्तविक स्थिति को बताने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग्रह किया जाता है तो यह हमारे आन्दोलन के लिए हानिकार होगा, क्योंकि इस समय यहाँ अनेक बाहर के लोग, यहाँ तक कि सी० आई० डी० वाले भी उपस्थित हैं। इसपर मैंने अपने प्रस्ताव के अनुमोदक तथा अन्य समर्थकों के प्रतिवादों के बावजूद श्री राजगोपालाचार्य के संशोधन को स्वीकार कर लिया। किन्तु मुझे घोर आश्चर्य तो तब हुआ जब मैंने एसोसियेटेड प्रेस द्वारा प्रसारित इस प्रस्ताव को पत्रों में देखा। इसमें श्री राजगोपालाचार्य के संशोधन की चर्चा ही नहीं थी।

उपर्युक्त प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने पर कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया कि उपसमिति का संयोजक नियुक्त कर दिया जाना चाहिए। कई सदस्यों ने संयोजक के लिए मेरे नाम का सुझाव रक्खा। इसपर तत्कालीन महामन्त्री श्री विट्ठलभाई पटेल उठ खड़े हुए कहा—"स्वामी श्रद्धानन्द का नाम सबसे पहले ही आ गया है, स्वभावतः वे ही संयोजक रहेंगे। इसपर किसी अन्य प्रस्ताव के लाने की आवश्यकता नहीं है।"

देश के सभी भागों से आये सदस्यों ने अपने-अपने प्रदेशों में अछूत-समस्या की जानकारी मुझे दी और इन स्थानों का दौरा करने के लिए आग्रह किया। इस पर मैंने उन्हें ऐसा करने का वचन दिया। मैंने यह भी सोचा कि प्रारम्भिक खर्चों के लिए कुछ भी राशि उपलब्ध न होने के कारण न तो स्थानीय स्तर पर जाँच ही हो सकती है और न समुचित योजना ही बनाई जा सकती है। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि इलाहाबाद के पत्र 'दि इण्डिपेण्डेण्ट' के लिए २५००० रुपये की राशि स्वीकार की गई है तथा कार्यसमिति के समक्ष हकीम अजमल खाँ तथा डॉक्टर अन्सारी के द्वारा दिल्ली से एक उर्दू दैनिक 'कांग्रेस' शीर्षक निकालने के लिए एक लाख रुपये का अनुदान दिये जाने की प्रार्थना की गई है। इसलिए यह सोचकर कि कांग्रेस की आर्थिक हालत इतनी दयनीय नहीं है, मैंने अध्यक्ष को एक पत्र लिखा जिसमें अस्पृश्यता-उपसमिति को अगाऊ तौर पर प्रारम्भिक कार्यों के लिए १० हजार रुपये देने के लिए कहा।

आपके पत्र संख्या ३३१ के द्वारा प्रेषित कार्यसमिति का निम्न प्रस्ताव बहुत रोचक है—"स्वामी श्रद्धानन्द का ८ जून १९२२ ई० का पत्र पढ़ा गया जिसमें दलित जातियों के कार्य के लिए योजना बनाने हेतु अग्रिम राशि देने के लिए कहा गया है। निश्चय हुआ कि इस उद्देश्य के लिए उपसमिति संयोजक श्री गंगाधरराव बी० देशपाण्डे नियुक्त किये जाएँ और उनसे अनुरोध किया जाय कि वे यथाशीघ्र एक बैठक बुलायें जिसके समक्ष स्वामी श्रद्धानन्द के पत्र पर विचार किया जा सके।"

यह एक दूसरा मामला है जो अव्याख्येय है। मेरे प्रथम पत्र की प्राप्ति की सूचना मिलने पर मैंने ३ जून १९२२ ई० को हरिद्वार से दूसरा पत्र लिखा जो इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय श्री पटेल,

मैं परसों हरिद्वार से प्रस्थान कर ६ जून को सवेरे लखनऊ पहुँचूँगा। आप जानते हैं कि मैं तथाकथित अछूत जातियों के लिए ही प्रायः सोचता हूँ। पंजाब में भी इस समस्या के रचनात्मक कार्यक्रम के प्रति कोई अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है, ऐसी मेरी धारणा है। संयुक्तप्रान्त में निश्चय ही यह काम श्रमसाध्य होगा, किन्तु एक अन्य गम्भीर कठिनाई भी है।

बारदोली कार्यक्रम की टिप्पणी में आइटम संख्या ४ पर कहा गया है कि जहाँ सवर्ण जातियों के पूर्वाग्रह प्रबल हैं, वहाँ कांग्रेस के धन से पृथक् स्कूलें स्थापित की जानी चाहिएँ। यह उन कांग्रेस-जनों के लिए छिद्र छोड़ देता है जो अछूत जातियों के खिलाफ हैं अथवा मन से दुर्बल हैं। इसलिए सामान्य कुएँ से पानी भरने के लिए अन्त्यजों को इजाजत देने के लिए भी ऐसे आदमियों को प्रेरित करना कठिन हो जाता है। मुझे पता चला है कि बिजनौर जिले में सामान्य कुएँ से पानी भरने पर अछूतों के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है। किन्तु बारदोली-प्रस्ताव की उक्त टिप्पणी के आधार पर कहीं-कहीं अछूतों के विरुद्ध नया पूर्वाग्रह स्थापित किया जा रहा है। मैंने अभी हाल ही की अम्बाला छावनी, लुधियाना, बटाला, लाहौर, अमृतसर तथा जंडियाला की यात्राओं में अनुभव किया कि कमजोरियों को दूर करने की उपेक्षा की जा रही है। दिल्ली तथा उसके निकट, दलितोद्धार सभा, जिसका कि मैं अध्यक्ष हूँ, न कि कांग्रेस, प्रशंसापूर्ण कार्य कर रही है। मेरी धारणा है कि जब तक बारदोली में स्वीकृत रचनात्मक कार्यक्रम की धारा ४ को समुचित रीति से संशोधित नहीं किया जाता, तब तक कांग्रेस के कार्यक्रम में मेरे द्वारा सर्वप्रमुख समझे जानेवाले कार्य की हानि ही होगी।

कृपया निम्न सुझाव को अध्यक्ष के समक्ष रक्खें और यदि वे उसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की अगली बैठक में विचारार्थ रखना मान लें, तो मैं उसे वहाँ प्रस्तुत करने के लिए तैयार हूँ। बारदोली प्रस्ताव की धारा ४ के साथवाली टिप्पणी के स्थान पर निम्न नोट रक्खा जाना चाहिए—"दलित जातियों की निम्न माँगों को अविलम्ब स्वीकार करना चाहिए—

(अ) उन्हें अन्य जातियों के नागरिकों के साथ एक ही दरी पर बैठने की आज्ञा मिलनी चाहिए।

(आ) सामान्य कुएँ से जल भरने का भी उन्हें अधिकार होना चाहिए।

(इ) उनके बच्चों को राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों में प्रवेश मिले तथा उन्हें तथाकथित उच्च जातियों के विद्यार्थियों से निर्बाध रूप से मिलने-जुलने का अवसर प्राप्त हो। मैं इस बात की महत्ता अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्यों के समक्ष रखना चाहता हूँ। मैं ऐसे मामलों को जानता हूँ जहाँ कि अछूत जातियों ने तथाकथित उच्च जातियों के अत्याचारों के खिलाफ खुला विद्रोह

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है, अतः जब तक उनकी उपर्युक्त माँगों को पूरा नहीं किया जाता, तब तक वे नौकरशाही के आगे आत्मसमर्पण करते ही रहेंगे। जब ७ जून की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में मेरा प्रथम सुझाव स्वीकार कर लिया गया तो मैंने श्री पटेल से निवेदन किया कि वे बारदोली प्रस्ताव की धारा ४ पर अंकित टिप्पणी पर मेरा प्रस्तावित संशोधन मीटिंग के समक्ष रक्खें। उन्होंने मुझे बताया कि कार्यसमिति इस बारे में उपसमिति से पूछेगी, अतः मुझे इसपर जोर नहीं देना चाहिए। मैं इससे सहमत हुआ। किन्तु मुझे कार्यसमिति के किसी भी प्रस्ताव की प्रति नहीं मिली है जिसमें मेरे प्रस्ताव को अस्पृश्यता-निवारण-उपसमिति के समक्ष रक्खे जाने की बात कही गई हो।

दिल्ली तथा उसके समीप अछूत-समस्या अत्यन्त तीव्र है और मुझे उससे अविलम्ब जूझना है। किन्तु इसके लिए नियुक्त उपसमिति अचानक कार्य आरम्भ नहीं कर सकती। कांग्रेस के तत्त्वावधान में अस्पृश्यता को दूर करने के लिए किन्हीं व्यावहारिक उपायों के सम्बन्ध में निर्णय करने से पूर्व कार्यसमिति को देश में उपस्थित अनेक अन्य राजनैतिक परिस्थितियों के बारे में भी सोचना होगा। इन हालात में मैं उपसमिति के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं होता, फलतः इसकी सदस्यता से त्यागपत्र देता हूँ।

दिल्ली
जून ३०, १९२२ ई०

आपका विश्वासपात्र,
श्रद्धानन्द संन्यासी

महामन्त्री का उत्तर

प्रिय स्वामीजी,

आपका ३० जून १९२२ ई० का पत्र मेरे कार्यालय में उसी मास की ३० तारीख को प्राप्त हुआ। इसमें १८ तारीख को बम्बई में कार्यसमिति द्वारा स्वीकार किये गये प्रस्ताव का हवाला दिया गया है। मुझे यह भी आदेश हुआ है कि दलित वर्ग उपसमिति से आपके इस्तीफे को लौटाने के सम्बन्ध में मैं आपसे प्रार्थना करूँ।

जैसा कि आप जानते हैं, जेल से मुक्त होने के पहले जो घटनाएँ घटीं, उनकी मुझे कोई जानकारी नहीं है। किन्तु मैं १० जून १९२२ ई० की कार्यसमिति की उस बैठक में मौजूद था, जिसमें इस उपसमिति के संयोजक श्री देशपाण्डे को नियुक्त किया गया था। उस समय यह उल्लिखित नहीं किया गया था कि कोई ऐसा समझौता हो चुका है, जिसके आधार पर किसी खास सदस्य को उपसमिति के संयोजक के रूप में कार्य करना था। उस समय तो केवल धनराशि की अदायगी को ध्यान में रखते हुए ही आवश्यक औपचारिकताएँ पूरी करने के लिए पूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। यह सोचा गया था कि किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खर्चे की स्वीकृति के पहले उपसमिति का औपचारिक प्रस्ताव आवश्यक है। इसी के अनुसार श्री देशपाण्डे को संयोजक नियुक्त किया गया और इन आरम्भिक कार्यों के लिए ५०० रुपये की राशि स्वीकृति की गई। दृष्टिदोषवश जो प्रस्ताव बनाया गया उसमें ५०० रुपये का उल्लेख नहीं हो सका। इस प्रकार आप स्वीकार करेंगे कि इसमें कार्यसमिति द्वारा १०००० रुपये की राशि न देने की इच्छा की तो कोई बात ही नहीं थी, किन्तु प्रस्ताव को उस रूप में बनाने का वास्तविक कारण वही था, जो ऊपर वर्णित किया गया है। आपकी उपसमिति द्वारा किये जानेवाले कार्य का अवमूल्यन करने की कार्यसमिति की कोई इच्छा थी। यह कहना सत्य से पर्याप्त दूर है और न यही सत्य है कि आपके द्वारा दी गई किसी मूल्यवान् सलाह की उपेक्षा करना ही कार्यसमिति का लक्ष्य था। कार्य-समिति की गत बैठक के समक्ष जब आपका पत्र प्रस्तुत किया गया तो ५०० रुपये के अनुदान का उल्लेख न किये जाने की जानकारी दे दी गई और मुझे आदेश हुआ कि यह सूचना मैं आपको दे दूं। यह वस्तुतः एक शोचनीय बात होगी कि उपसमिति अस्पृश्यता के सवाल पर आपके अनुभव तथा विशिष्ट जानकारी से महरूम रहे, अतः मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि जनता के हित की दृष्टि से आप अपने फैसले पर पुनर्विचार करें तथा उपसमिति से आप अपने त्यागपत्र को वापस लेने की सूचना तार द्वारा मेरे इलाहाबाद-स्थित कार्यालय को प्रदान करें। मेरा यह लिखना तो अनावश्यक ही है कि आपकी उपसमिति द्वारा स्वीकार किये गये सभी प्रस्तावों पर कार्यसमिति उचित ध्यान देगी।

कार्यसमिति के प्रस्तावों में पृथक् विद्यालयों तथा कुएँ के सम्बन्ध में जो परिवर्तन किया गया है, उसके सम्बन्ध में तो यही कहना उचित है कि आपकी उपसमिति परिवर्तनों के सम्बन्ध में अपनी सिफारिश करे और कार्यसमिति उन्हें स्वीकार कर ले। मैं सोचता हूँ कि इलाहाबाद के 'दि इण्डिपेण्डेण्ट' तथा दिल्ली के 'दि 'कांग्रेस' शीर्षक पत्रों को दिये जानेवाले अनुदान के सम्बन्ध में आपको कुछ भ्रान्ति हुई है। प्रथम के सन्दर्भ में जो कुछ हुआ वह इतना ही था कि संयुक्त प्रान्त की प्रदेशीय कमेटी द्वारा नेशलिस्ट जर्नलस लिमिटेड को २५ हजार रुपये कर्ज के रूप में दिये जाने के प्रार्थनापत्र को स्वीकृति दी गई है, जबकि दूसरे मामले में कर्ज देने के बारे में प्रस्तुत की गई अर्जी को पूर्णतया ठुकरा दिया गया है।

बम्बई आपका विश्वासपात्र,
२३ जुलाई १९२२ मोतीलाल नेहरू, महामन्त्री

मेरा प्रत्युत्तर

प्रिय पं० मोतीलाल जी,

मुझे बम्बई से आपका लिखा गया २३ जुलाई १९२२ ई० का पत्र मिला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें अस्पृश्यता-विषयक उपसमिति से मेरे त्यागपत्र की चर्चा है। मुझे यह लिखते हुए खेद होता है मैं कि अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ क्योंकि मेरे पहले पत्र में मेरे द्वारा निर्दिष्ट कुछ तथ्य पूर्णतया उपेक्षित कर दिये गये हैं।

(१) कृपया श्री राजगोपालाचार्य से पूछें कि क्या मैंने यह प्रस्तावित नहीं किया था कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पास जो धनराशि है उसमें से एक लाख रुपया अस्पृश्यता के कार्य के लिए दिया जाये ? यह भी कि क्या उन्होंने उपर्युक्त प्रस्ताव के स्थान पर जो संशोधन रक्खा था उसका भाव यही था कि कार्य-समिति जब उपसमिति के द्वारा बनाई गई कार्य-योजना को स्वीकार कर लेगी तो उस समय कार्यसमिति अस्पृश्यता-निवारण-विभाग को उतना धन प्रदान करेगी, जितना उसके लिए सम्भव होगा। यह भी उनसे पता करें कि क्या मैंने उनके इस संशोधन को उस समय स्वीकार नहीं कर लिया था जब कि अध्यक्ष मुझे एक ओर ले गये थे और उस समय की कांग्रेस की आर्थिक स्थिति से मुझे परिचित कराया था ? यदि तथ्य यही है, तो प्रस्ताव के साथ संशोधन को क्यों नहीं प्रकाशित किया गया ?

(२) क्या आप श्री विट्ठल भाई जे० पटेल से यह पता करेंगे कि क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों ने मुझे उपसमिति का संयोजक प्रस्तावित नहीं किया था और उस समय क्या उन्होंने यह नहीं कहा था—चूंकि स्वामी श्रद्धानन्द का नाम प्रथम ही प्रस्तावित हुआ है, स्वभावत: वे ही संयोजक रहेंगे, इसलिये किसी अन्य प्रस्ताव के रक्खे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने इसके सम्बन्ध में डॉक्टर अन्सारी से भी पूछा तो उन्होंने १७ जून १९२२ ई० को मुझे लिखा और कहा कि मुझे ही संयोजक बनाया गया था। डॉक्टर अन्सारी आपके पास हैं और आप उनसे पूछ सकते हैं। मुझे आशा है कि श्री पटेल भी इस बात को भूले नहीं होंगे।

(३) पुन: मैं यह भी कहूँ कि यहाँ अस्पृश्यों में तुरन्त कार्य आरम्भ करना अत्यन्त आवश्यक है। मैं किसी अन्य कारण से इसमें विलम्ब नहीं कर सकता। कृपया कार्यसमिति की आगामी बैठक में मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लें ताकि अस्पृश्यता का निवारण करने के लिए मैं अपनी योजना के अनुसार काम करने के लिए स्वतन्त्र हो सकूँ।

आपका विश्वासपात्र,
श्रद्धानन्द संन्यासी

अस्पृश्यता-निवारण के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा नियुक्त उपसमिति की कथा को समाप्त करने के लिए यही कहना पर्याप्त है कि उस उप-समिति ने कोई कार्य नहीं किया तथा कांग्रेस के गया अधिवेशन में जब उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्षिक विवरण पेश करने का अवसर आया तो उपमन्त्री ने केवल इतना ही लिखा कि उपसमिति कोई कार्य नहीं कर पाई, कारण कि उसे स्वामी श्रद्धानन्द का कोई स्थानापन्न व्यक्ति नहीं मिल सका। गया में स्वीकृत बजट में उस समय इस विभाग के लिए सत्रह हजार रुपये प्रदान किये गये, और श्री राजगोपालाचार्य को इस कार्य का प्रभारी बनाया गया, किन्तु एक वर्ष बाद कांग्रेस के कोकानाड़ा-अधिवेशन में यह स्पष्ट हुआ कि इस आबंटित धनराशि में से एक पैसा भी व्यय नहीं किया गया है और इस पर तुर्रा यह कि इस अधिवेशन के अध्यक्ष मौलाना मोहम्मद अली ने प्रस्ताव किया था कि तथाकथित अछूतों को हिन्दू तथा मुसलमानों में आधा-आधा बाँट दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५

कांग्रेस जाँच समिति

१० जून को लखनऊ से दिल्ली लौटकर मैं स्थानीय जिला तथा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों की सहायता करने में जुट गया। उसी दिन ज्ञानी शेरसिंह का स्वागत किया गया तथा रात्रि को पटौदी हाउस के अहाते में मैंने एक आम सभा को सम्बोधित किया। इस भवन को मैंने दिल्ली शहीद स्मारक के लिए खरीद लिया था।

हकीम अजमल खाँ तथा डॉक्टर अन्सारी, जो क्रमश: दिल्ली जिला तथा प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्ष थे, प्राय: नगर से अनुपस्थित ही रहते थे और लाला शंकरलाल, श्री आसिफअली, डॉक्टर रहमान तथा श्री देशबंधु गुप्त आदि जेल में थे। इसलिये कुछ युवा कार्यकर्ताओं की सहायता से मैं यथासम्भव कुछ कार्य कर रहा था। मुसलमान स्वयंसेवकों में से अधिकांश जो जेल गये थे, माफी माँगकर छूट गये, किन्तु बाकी बचे स्वयंसेवक जब कारागार की पूरी अवधि को बिताकर दो जत्थों में छूटे, तो मैंने दिल्ली की जनता की प्रार्थना पर उनके शानदार स्वागत की तैयारियाँ कीं। दिल्ली के प्रतिनिधि के रूप में मैंने कुछ अन्य प्रान्तीय सम्मेलनों में भी भाग लिया। हालाँकि मैं अपने हृदय और आत्मा से दलितवर्ग को सहायता पहुँचाने के काम में लगा हुआ था, फिर भी मैंने दिल्ली की जिला तथा प्रदेश समितियों की सहायतार्थ समय निकाल ही लिया और दिल्ली शहीद स्मारक के लिए धन एकत्र करने का काम पुन: आरम्भ कर दिया।

दलितवर्ग के लिए गठित उपसमिति के सम्बन्ध में पंडित मोतीलाल नेहरू से मेरे पत्र-व्यवहार के आरम्भ होने से पूर्व २६ जून को मैं खुर्जा गया। यहाँ मुझे जिस सम्मेलन में बोलना था, उसकी अध्यक्षता पण्डित नेहरू को करनी थी। हम दोनों साथ ही दिल्ली आये और काँग्रेस जाँच समिति ने अपना काम डॉक्टर अन्सारी के घर पर आरम्भ किया। मैंने कमेटी के समक्ष निम्न बयान दिया। इससे सामान्य राजनैतिक स्थिति तथा देश की तत्कालीन आवश्यकताओं पर प्रकाश पड़ता है। इसे एक दैनिक पत्र की फाइल से उद्धृत किया जा रहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी श्रद्धानन्द का लिखित बयान

कलकत्ता, १४ अगस्त १९२२

कांग्रेस द्वारा गठित सविनय अवज्ञा जाँच समिति के समक्ष अपना बयान देते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा कि कांग्रेस के द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने के लिए ही रचनात्मक कार्यक्रम को संचालित करने में उनका विश्वास नहीं है। वे रचनात्मक कार्यक्रम को स्वयं एक लक्ष्य के रूप में चलाने में विश्वास करते हैं और उनकी दृढ़ धारणा है कि कानूनों की नाफरमानी को यदि छोड़ भी दिया जाता है, और पूर्ण निष्ठा तथा उत्साह के साथ रचनात्मक कार्यक्रम को चलाया जाता है तो उससे देश को स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। कौंसिलों में प्रवेश करके असहयोगी अधिक प्रभावशाली ढंग से रचनात्मक कार्य कर सकते हैं, किन्तु यह अधिक उपयोगी ढंग से तब किया जा सकता है यदि सबिनय अवज्ञा के विचार को भविष्य में पूर्णतया त्याग दिया जाय। देश को सविनय अवज्ञा तथा करों को न देने के लिए शीघ्र तैयार करने के लिए कौसिलों में प्रवेश एक विडम्बना ही है।

हिन्दू मुस्लिम एकता की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि बाहरी तौर पर तो इनमें कोई विरोध दिखाई नहीं देता, किन्तु उन्होंने सभी प्रान्तों में देखा है कि हिन्दू और मुसलमान कौमों के हृदय एक-दूसरे के प्रति संदेहास्पद हो चुके हैं। इसका एक कारण यह प्रतीत होता है कि एक ओर जहाँ मुसलमान और सिख परस्पर संगठित हैं, एक घटक के रूप में हिन्दू असंगठित हैं। इनका एक उपाय उनके मस्तिष्क में यही दिखाई पड़ता है कि हिन्दू नेता अपने समाज को संगठित करें तथा मुसलमान नेता खिलाफत की अपेक्षा स्वराज्य-प्राप्ति पर अधिक बल दें।

एक अन्य प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया कि उनके विचार में अहिंसा की भावना को बाहरी तौर से तो प्रतिपादित किया जाता है, किन्तु लोग अपने हृदय में उसके प्रति विश्वास नहीं रखते तथा उनकी वाणी तथा मस्तिष्क हिंसापूर्ण विचारों से भरे हुए हैं।

दिल्ली के सम्बन्ध में चर्चा के दौरान उन्होंने बताया कि यह प्रदेश आंशिक या पूर्ण किसी भी रूप में सविनय अवज्ञा के लिए तैयार नहीं है।

उनकी राय में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा या यत्र-तत्र बिखरी हुई सामूहिक सविनय अवज्ञा स्वतन्त्रता-आन्दोलन का कुछ भी भला नहीं कर सकती। यदि सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया भी जाता है तो वह सारे प्रान्तों में एक-साथ चलाया जाना चाहिए। किन्तु उसे आरम्भ किये जाने के पहले कांग्रेस के द्वारा यह स्पष्ट रूप से विज्ञापित किया जाना चाहिए कि कांग्रेस संगठन के बाहर किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के द्वारा की जानेवाली हिंसा के लिए वह (कांग्रेस)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरदायी नहीं होगी। एक बार ग्रारम्भ करने पर कांग्रेस को किसी भी कारण से सिविल नाफरमानी के ग्रान्दोलन को बन्द नहीं करना चाहिए। उन्होंने ग्रागे बताया कि दिल्ली में किसी प्रकार का दमन नहीं हो रहा है क्योंकि वहाँ के सारे कांग्रेस संगठन सोये पड़े हैं।

आम हालात की चर्चा करते हुए स्वामी जी ने कहा कि ग्रसहयोग ने देश में ग्राश्चर्यजनक ग्रात्मचेतना जागृत की है ग्रौर डेढ़ साल में ही ग्राधी शताब्दी का कार्य कर डाला है। दमन ने ग्रान्दोलन को भयभीत नहीं किया है। बारदोली-प्रस्ताव ने देश में व्याप्त उत्साह को समाप्त कर दिया है। दिल्ली-प्रस्ताव भी देश की सुप्त चेतना को जागृत करने ने ग्रसमर्थ रहा है। उनकी राय है कि यदि सामूहिक रूप से सविनय ग्रवज्ञा ग्रान्दोलन उनके द्वारा सुझाई गई शर्तों पर न चलाया जा सके, तो यह ग्रधिक ग्रच्छा होगा कि सब प्रकार की सिविल नाफरमानी को त्याग दिया जाय ताकि कांग्रेस संगठन की सम्पूर्ण शक्ति रचनात्मक कार्यक्रमों पर ही केन्द्रित की जा सके। उन्होंने सुझाव दिया कि यदि रचनात्मक कार्यक्रम में किसी प्रकार से लोगों का विश्वास जगाया जा सकता है तो कौंसिलों के दरवाजे खटखटाने की ग्रावश्यकता ही नहीं रहेगी ग्रौर ग्रान्दोलन ग्रपने-ग्राप शक्तिशाली हो जाएगा। नौकरशाही को एक किनारे पर खदेड़ दिया जाएगा ग्रौर निर्णायक युद्ध लड़ा जाएगा।

जुलाई के ग्रन्त में पण्डित नेहरू को ग्रपना प्रत्युत्तर भेजने के बाद मैंने कांग्रेस के सभी सक्रिय ग्रान्दोलनों से ग्रपना हाथ खींच लिया था। किन्तु थोड़े समय बाद ही ऐसा समय ग्राया जब मैंने कांग्रेस के नेताग्रों के साथ काम करने का विचार किया। यह उस समय हुआ जब देवदास गांधी तथा ज्वाहरलाल नेहरू को अपराधी घोषित किया गया। उस समय मुझे देश के लिए काम करने का ग्राह्वान सुनाई दिया ग्रौर मैंने आर्यसमाज की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की ग्रध्यक्षता से भी ग्रपना त्यागपत्र दे दिया ग्रौर सर्वात्मना कांग्रेस के कार्य में लग जाने की तैयारी की। किन्तु श्री नृसिह चिन्तामणि केलकर के त्यागपत्र ने एक बार पुनः मेरी ग्राँखें खोल दीं। श्री केलकर ने कहा कि हकीम अजमल खाँ के ग्रनुसार कांग्रेस के पदाधिकारियों को कांग्रेस के दृष्टिकोण से ग्रसहमत होने पर भी ग्रपने विचार प्रकट नहीं करने चाहिएँ। ऐसी स्थिति में या तो वे पदों को त्याग दें या चुप रहें। पुनः उनके अनुसार, पदाधिकारी ऐसे ही होने चाहिएँ जो कांग्रेस के कार्यक्रम को उसके पूरे ब्यौरे तक क्रियान्वित करें।

यह पढ़कर पूरा विवरण देते हुए मैंने डॉ० अन्सारी को लिखा—"मेरी धारणा है कि (१) व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा पूर्णतया छोड़ देनी चाहिए। (२) यदि हम इस शर्त के साथ तुरन्त सामूहिक सविनय ग्रवज्ञा ग्रान्दोलन जारी नहीं करते कि यदि कांग्रेस के सगठन के बाहर भी कोई हिंसा होती है तो इस कारण इसे बन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया जाएगा, तो मैं चाहता हूँ कि हमें सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन के विचार को भी त्याग देना चाहिए और पुनः मेरी धारणा है कि (३) रचनात्मक कार्यक्रमों पर अपना ध्यान सफलतापूर्वक केन्द्रित करने के लिए मॉण्टफोर्ड सुधार योजना के अन्तर्गत कांग्रेस जनों को बिना किसी हिचक के कौंसिलों में प्रवेश करना चाहिए। कौंसिलों में प्रवेश करने के पक्ष में मेरे पास एक अतिरिक्त कारण भी है जो इस प्रकार है—ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने हमारे समक्ष एक चुनौती रखते हुए कहा था—"बहुत-कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि आगामी चुनावों में किस प्रकार के प्रतिनिधि चुने जाते हैं। हम इस चुनौती का उत्तर कौंसिलों के चुनावों में भाग लेकर ही दे सकते हैं।" मैं ईमानदारी से अनुभव करता हूँ कि मैं कांग्रेस कार्यसमिति में नहीं रह सकता, अतः मैं गत १२ मार्च से सभी पदों से अपने त्यागपत्र की पुष्टि करता हूँ।"

इसी कारण से आपके दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रधान-पद से इस्तीफा दे देने पर मैंने उसकी अध्यक्षता ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया था। यह मेरा अन्तिम निर्णय है। इसमें परिवर्तन तभी सम्भव है यदि कुछ अकल्पनीय घटित हो जाय और कलकत्ता में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक सारे प्रान्तों में एक-साथ सविनय अवज्ञा आरम्भ करने का निर्णय ले ले। उस स्थिति में किसी भी एक प्रान्त में आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए मैं प्रतिज्ञाबद्ध होऊँगा। किन्तु मेरी रुचि पंजाब में होगी।"

मेरी यह स्थिति उस समय थी, जब मैं अमृतसर पुलिस द्वारा कारागार में बन्द कर दिया गया। वहाँ से छूटकर मैंने गया में सम्पन्न हुए कांग्रेस अधिवेशन की जानकारी ली और वहाँ प्रस्तुत किये गये विचारों के पक्ष और विपक्ष में दिये गये तर्कों को पढ़ा। मुझे यह लिखते हुए खेद होता है कि मुझे किसी भी दल के साथ तादात्म्य स्थापित करना उचित प्रतीत नहीं हुआ, क्योंकि दोनों दलों की एक ही धारणा थी कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन तभी चलाया जाना चाहिए जब कि सामूहिक अहिंसा के लिए उपयुक्त वातावरण बन सके और मैं तो यह सोचता था कि तत्कालीन परिस्थितियों में वैसा होना सम्भव ही नहीं है। मैंने उस समय लिखा—"जहाँ तक कौंसिलों में प्रवेश का सवाल है, यह तब तक व्यर्थ है जब तक कि आप वहाँ अपने उपस्थित होने का पूरा लाभ नहीं लेते तथा वहाँ के कार्य में निरे बाधक बनने के लिए ही नहीं जाते। यह आपत्ति की जाती है कि कौंसिलों में प्रवेश नौकरशाही के साथ सहयोग करना है। आप यह क्यों नहीं मानते कि ऐसा करना अपने ही लोगों के साथ सहयोग करना तथा उनकी सहायता करना है? किन्तु जब तक कांग्रेस अपने ज़बरदस्त बहुमत के द्वारा इनपर अपना शासन स्थापित नहीं कर लेती, तब तक कौंसिलों में प्रवेश की बात करना निरर्थक है।

संक्षेप में, व्यक्तिशः मैं न तो कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में हूँ और न सविनय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवज्ञा के लिए झूठी धमकी देने के ही पक्ष में हूँ। मेरा अडिग विश्वास तो इसी में है कि स्वराज्य प्राप्त करने में रचनात्मक कार्यक्रम ही शक्तिशाली होता है और मैं इसमें एक (अस्पृश्यता) पर अपनी शक्तियाँ केन्द्रित करने के लिए तैयार हूँ जिसके बारे में मेरी धारणा है कि यह राष्ट्रीय एकता में बाधक है। किन्तु यह होना नहीं है।"

अपने एक लेख में बनारस के स्थितप्रज्ञ सन्त पण्डित भगवानदास एम० ए० ने लिखा है—

"सितम्बर १९२३ ई० में एक दिन आदरणीय पण्डित मोतीलाल जी मेरे घर पर अतिथि के रूप में आये। उस दिन मैंने उन्हें एकान्त में पूछा कि जब वे स्वराज्य पार्टी की ओर से कौंसिलों में प्रवेश करने के लिए तैयार हैं, वे अपने लक्ष्य में बाधा उत्पन्न न करते हुए भी लोकमान्य तिलक की नीति का अनुसरण और प्रचार क्यों नहीं करते ? ऐसा करने से अनेक दल जो आज अलग-अलग हैं, उनके साथ आ जायेंगे। पण्डित मोतीलाल जी ने उत्तर दिया कि वे भी ऐसा सोचते हैं, किन्तु जनता इस नीति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। कई कारणों से श्री मोतीलाल जी ने इस कार्यक्रम के औचित्य की ओर ध्यान नहीं दिया और एक नई नीति का प्रचार किया। किन्तु अपने हृदय में वे यही विश्वास करते थे कि आगे चलकर उन्हें अनुकूल सहयोग की नीति को स्वीकार करना पड़ेगा।"

यह सितम्बर १९२३ ई० की घटना है। किन्तु उससे कई मास पूर्व फरवरी १९२३ ई० के अन्त में मेरी धारणा थी कि भाई मोतीलाल नेहरू मेरे पास दिल्ली में आये थे और उन्होंने मुझे अपने दल में प्रविष्ट होने के लिए कहा था। उनका कहना था कि उन्होंने भी वही नीति अपनाई है तो कांग्रेस जाँच समिति के समक्ष बयान देकर मैंने ही परिभाषित की है। मेरा उत्तर था कि मैंने तो कांग्रेस जनों को कौंसिलों में जाने की सलाह इसलिए दी है ताकि वे वहाँ जाकर तदनुकूल उसका लाभ उठावें, न कि उन्हें नष्टभ्रष्ट कर दें, जो कि स्वराज्य पार्टी की घोषित नीति है! भाई मोतीलाल जी का उत्तर खुला तथा स्पष्ट था। उन्होंने कहा "यह सब गया-कांग्रेस में वोट हासिल करने के लिए था। हम कौंसिल और असेम्बली में जाकर क्या करते हैं, यह आप खुद देख लेंगे।" और मैंने असेम्बली और कौंसिलों में स्वराज्य पार्टी के रुख को देखा है और पाया है कि इस पार्टी के कार्यों और अनुकूल सहयोगवादियों में कोई जानने योग्य अन्तर नहीं है, चाहे उनकी घोषणाओं में कितना ही अन्तर क्यों न हो।

१३ फरवरी १९२३ ई० को मुझे मलकाना राजपूतों को उन्हीं के भाइयों द्वारा शुद्ध कर अपने में मिलाने तथा अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलन को नेतृत्व देने का बुलावा आया। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जो मुसलमान नेता तबलीग का काम करते थे, उन्हें तो कांग्रेस की नीतियों का संचालन करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता थी और वे इसके विश्वसनीय प्रतिनिधियों के रूप में कार्य भी कर सकते थे, किन्तु जो लोग हिन्दू समाज को विघटित होने से बचाने के काम में लगे थे, उन्हें निषिद्ध मानकर कांग्रेस कार्यकारिणी के बाहर ही रक्खा जाता था।

जब महात्मा गांधी जेल से बाहर आये और जुहू राजनीतिज्ञों के लिए तीर्थ-स्थान बन गया, तो असहयोग आन्दोलन के पिता (महात्मा गांधी) अपने मुसलमान चापलूसों तथा हिन्दू-विरोधी चेलों के शिकार बन गए। अब वे मुझसे व्यक्तिगत चर्चा करने में भी संकोच करते थे और उन्होंने न केवल आर्यसमाज तथा उसके संस्थापक के विरुद्ध उत्तेजनापूर्ण अभियान छेड़ा, जिससे न केवल आर्यसमाज और हिन्दू समाज को ही पर्याप्त हानि पहुँची, अपितु कांग्रेस को भी काफी नुक्सान हुआ, क्योंकि उसके कट्टर-से-कट्टर समर्थकों के मन भी उधर से हट गए। मुसलमानों द्वारा आर्यसमाज को ही बलि का बकरा बनाने की सूझी और १९२४ ई० की बकरीद के दिन एक हिन्दू मंदिर की पवित्रता नष्ट की गई, आठ युवा और वृद्ध हिन्दुओं की हत्या की गई और दूसरे बहुत-से लोगों को, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं, निर्दयतापूर्वक छुरा मारकर या अन्य प्रकार से घायल कर दिया गया। महात्मा गांधी दिल्ली आये और वे चाहते थे कि दोनों जातियाँ अपने मतभेदों को तटस्थ पंचों के सुपुर्द कर दें। पण्डित मदनमोहन मालवीय तथा मैंने, यह जानते हुए भी कि हिन्दू चोट खाये हुए हैं, उन्हें इस बात के लिए राजी किया कि वे महात्मा जी को एकमात्र मध्यस्थ के रूप में स्वीकार कर लें, जबकि मुसलमानों ने इसमें टालमटोल की। इसके पश्चात् अमेठी, गुलबर्गा और अन्त में कोहाट में मुसलमानों के किये पैशाचिक कृत्य सामने आये। महात्मा जी के अत्यन्त विश्वसनीय चेलों ने व्यक्तिशः जाँच करके इस समाचार को तथ्यपूर्ण भी पाया, किन्तु उनके मुसलमान मेजबान तथा उनके इर्दगिर्द के लोगों ने कोहाट में हुए अत्याचारों का दिल दहलानेवाला हाल जो उर्दू समाचारपत्रों में छप भी चुका था, उन तक पहुँचने ही नहीं दिया। अन्ततः जब गांधी जी ने मुझे बुलाया और मैंने उन्हें सारी बातें विस्तारपूर्वक बताईं तथा मौलाना अब्दुल-बारी की पुस्तिका से उद्धरण पढ़कर आर्यसमाज के विरुद्ध मुस्लिम मौलानाओं तथा नेताओं के षड्यंत्रों का भण्डाभोड़ किया, तो महात्मा गांधी को अनवधानता-वश हिन्दुओं के प्रति किये गए अपने अन्याय का भान हुआ और उन्होंने २१ दिन का अनशन आरम्भ किया। नवम्बर १९२४ ई० के विख्यात एकता सम्मेलन की कार्यवाही एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। यह पूर्णतया निष्फल रहा। जिस दिन गांधी जी ने अपना उपवास तोड़ा, उसी दिन इलाहाबाद तथा लखनऊ में पुनः दंगे भड़कने के समाचार आये और दिल्ली के मुसलमानों ने महात्मा गांधी को साम्प्रदायिक मसलों में एकमात्र मध्यस्थ मानने से इन्कार कर दिया। महात्मा जी ने निजी तौर पर तो यह माना कि मुसलमानों के इन्कार के कारण ही समझौता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंग हुआ है, किन्तु अपनी राय को सार्वजनिक रूप में कभी प्रस्तुत नहीं किया। कलकत्ता में अनेक कांग्रेस नेताओं के गिरफ्तार कर लिये जाने पर महात्मा जी अचानक वहाँ के लिए चल पड़े। उन्होंने दास तथा नेहरू से समझौता किया और अपने लिए विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये तथा केवल धमकी के बल पर ही बेलगाँव में अपने अपरिवर्तनवादी अनुयायियों से उनका अनुमोदन करा लिया। मैं बेलगाँव गया क्योंकि महात्मा जी ने मुझे विशेषतया आमंत्रित किया था। वे दुनिया को यह बताना चाहते थे कि हमारा अभी भी पारस्परिक सौहार्द है। मुझे विषय-समिति में आमंत्रित नहीं किया गया। महात्मा जी चाहते थे कि मैं उनके द्वारा चर्खा प्रतियोगिता का उद्‌घाटन करते समय उपस्थित रहूँ तथा उनके अध्यक्षीय भाषण(१९२४ ई०) के समय खुले अधिवेशन में भी आऊँ। मैंने उनके इन दोनों आदेशों का शब्दशः पालन किया।

निष्कर्ष रूप में, मैं सदा से ही कांग्रेस का एक साधारण सदस्य रहा हूँ और प्रत्येक हिन्दू को सलाह देता रहा हूँ और आज भी देता हूँ कि वह कांग्रेस का सदस्य बने। इससे आगे जाने की मेरी कोई आकांक्षा नहीं है। जब भी मुझसे सहायता माँगी गई है मैंने स्थानीय पदाधिकरियों को पूरी मदद दी है। मैं देखता हूँ कि सारे देश में कांग्रेस के सदस्यों की संख्या जो जून १९२२ ई० में एक करोड़ तक पहुँच गई थी, आज कुछ हजार तक ही रह गई है। और ये ही लोग नए लोगों को तब तक कांग्रेस में प्रवेश करने के लिए आज्ञा नहीं देते, जब तक उन्हें यह विश्वास नहीं हो जाता कि वे उस वर्तमान गुट का साथ देंगे जिसने आज कांग्रेस पर कब्जा कर रक्खा है। गत छः और उससे अधिक वर्षों का मेरा अनुभव मुझे यह विश्वास दिलाता है कि अधिक अच्छा हो यदि हम एक ध्येयवाले, ईमानदार और ईश्वर-भीरु लोगों को भविष्य के काम के लिए तैयार करें जब कि प्राप्त हुए स्वराज्य को चलाने का भार हमपर आगे आयेगा, बजाय इसके कि हम उस तथाकथित स्वराज्य की मृगमरीचिका के पीछे दौड़ें जिसकी व्याख्या करना अन्य नेताओं की तो बात ही दूर रही, महात्मा गांधी के लिए भी सम्भव नहीं हो सका है। इसके पूर्व कि मैं इस प्रसंग को समाप्त करूँ, मैं गौहाटी में सम्मिलित होनेवाले कांग्रेसजनों से कांग्रेस के संविधान को संशोधित करने की अपील करूँगा जिससे कि अपनी सम्पूर्ण योग्यता के द्वारा मातृभूमि की सेवा करने के लिए प्रत्येक राष्ट्रवादी का कांग्रेस में प्रवेश सुगम हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६

गुरुकुल में : एक संस्मरण

[द्वारा—**जे० रेम्ज़े मैकडॉनल्ड**]

जिन्होंने भारतीय राज-विद्रोह का अध्ययन किया है उन्होंने गुरुकुल—जहाँ आर्यसमाज के कुमारों को शिक्षा दी जाती है—का नाम अवश्य सुना होगा। यह शिक्षणालय आर्यों की कृतियों और आदर्शों का सबसे अधिक अनुरूप प्रतिबिम्ब है और इस प्रगतिशील धार्मिक संस्था (आर्यसमाज) के विरुद्ध उठाये गए सभी सन्देह इसपर केन्द्रित हो गए हैं। इसी कारण सरकार की इसपर वक्रदृष्टि रही है। पुलिस के कर्मचारियों ने इसपर रिपोर्ट तैयार की है तथा अधिकांश अर्धगोरों के दोषारोपों का यह पात्र रहा है। मुझे बताया गया कि रात्रि में यात्रा करना, सप्ताह के अन्तिम दिनों में इस शिक्षण-संस्था का अवलोकन मेरे लिए बहुत अनुकूल रहेगा। मैं दिल्ली से हरिद्वार जानेवाली गाड़ी में, जिसकी चाल मध्यवर्ती स्टेशनों पर विराम करने के कारण अनुमानतः दस मील प्रति घण्टा रही होगी, सवार हुआ। निद्रा लाने का प्रयत्न करते हुए जैसे-तैसे रात कटी।

प्रभात-वेला में हरिद्वार पहुँचा, जहाँ गंगा नदी पर्वतों की गोद छोड़कर नीचे मैदान में उतरी है। स्टेशन आत्मिक पापशुद्धि की विश्वव्यापिनी और शाश्वत पिपासा से प्रेरित तीर्थ-यात्रियों से भरा पड़ा था। यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि इनमें से बहुत-से लोग बहुत दूर से आये हुए हैं। वृक्षों से ढकी हुई पहाड़ियाँ शीश उठाये खड़ी थीं। पावन इंगलिस्तान के शिशिर काल के प्राभातिक झोंकों-सा तन को काटता हुआ वायु बह रहा था। हमने पैदल ही यात्रा प्रारम्भ की। नदी-तीर पर पहुँचते ही सामने का दृश्य खुल गया। समीपवर्ती पहाड़ियाँ, महान् हिमालय के हिममण्डित शिखरों की एक-एक तरंग, अधित्यका का एक-एक गुल्म, और एक-एक हिम-मण्डित प्रदेश सूर्य की स्वर्णमयी आभा से भासमान था।

किनारे के पत्थरों पर एक तमेड़ (बाँस की खपच्चियों से सुबद्ध कनस्तरों का एक बेड़ा) रक्खी थी। इसपर बैठाकर हमें धारा में डाला गया।

दूसरे ही निमेष में हम मध्यधारा में पहुँच गए। गहरे जल में हम निश्शंक बह रहे थे। अकस्मात् नदी की तली हमारे नीचे साथ-साथ सरकती हुई मालूम हुई। तमेड़ झटके के साथ टकराई। पानी छींटों में उड़ा। नन्हा बेड़ा तत्क्षण ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाल में होकर गहरे जल की भँवरियों तथा लहरियों में पड़कर पूर्ववत् स्थिर हो गया। चक्कर देती हुई, झूले खिलाती हुई और छींटे उड़ाती हुई नदी अपने भार को वेग से लिये जा रही थी। बन्दर हमें देखकर दाँत किटकिटाते थे।

वन के अद्भुत दृश्य क्षणभर झाँकी दिखाकर दूसरे ही क्षण लम्बी झाड़ियों में मुँह छिपा लेते थे। एक रेतीली खाड़ी में हम उतरे और उत्तप्त बालुकामय मार्ग से वन में प्रविष्ट हुए। हमारे सिरों से कहीं ऊँची पीली घास खड़ी थी। पर्वतीय शीतल पवन की हिलोरें अब बन्द हो गई थीं। सूर्य का ताप शनैः-शनैः दुःसह होता जा रहा था। अन्त को हम वृक्षों से अंशतः आच्छादित एक लम्बी और सीधी सड़क पर पहुँचे। सुदूर एक उन्नत बाँस के सिरे पर, एक पताका दीख पड़ी। गुरुकुल दृष्टिगोचर होने लगा।

गुलाब और चमेली के पुष्पों से सुवासित मार्गों से भोजनालय और पुष्प-वाटिकाओं में से होकर गुरुकुल पहुँचते हैं। चारों ओर क्रीड़ा-क्षेत्र है। मध्य में वर्गाकार छात्रावास स्थित है। सिंहद्वार (प्रवेशद्वार) पर वेदों के सनातन सूत्र पवित्र ओम् नाम से अंकित ध्वजा फहराती है। सम्प्रति यहाँ ३०० बालक शिक्षा पा रहे हैं। प्रवेश के समय इनकी उम्र अनिवार्यतः ६ से १० वर्ष के अन्दर होनी चाहिये। पच्चीस वर्ष की आयु तक उन्हें यहाँ रहना होता है। उन्हें मुन्शीराम जी, जो कि अब 'महात्मा जी' के उपनाम से प्रसिद्ध हैं, के न्यायोचित संरक्षण में छोड़ दिया जाता है। वह उनके पिता हैं और ये उनके बालक। चार बजे प्रातः वे अपनी कठोर चीड़ के तख्तों की शैया छोड़कर उठ बैठते हैं। व्यायाम करते हैं और शीतल जल से स्नान करते हैं। तब प्राभातिक सन्ध्या (प्रार्थना) होती है। उष्ण ऋतु में नंगे सिर, नंगे पाँव चलते हैं।

"सम्भव है, उन्हें संयोगवश कभी कठोर जीवन व्यतीत करना पड़े, अतः हमें उनको इसके लिए अभ्यास कराना चाहिये।"

महात्मा जी ने मुस्कराते हुए मुझे कहा। पीताम्बर शिक्षणालय का गणवेश है। यहाँ रहते हुए विद्यार्थी अपने माता-पिता को बहुत कम देख पाते हैं। परन्तु यहाँ विद्यालय-भूमि में प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला (उत्सव) भरता है। सहस्रों की संख्या में जनता आती है। माता-पिता इसमें सम्मिलित होते हैं। विशेष झोंपड़ियाँ तैयार की जाती हैं।

प्राचीन अंग्रेजी मेलों की-सी भीड़ एकत्र होती है। दीर्घावकाश में बालकों को उनके अध्यापक भारत भूमि के प्रसिद्ध स्थानों में ले जाते हैं। इन यात्राओं में वे कश्मीर तक भी हो आये हैं।

शासकवर्ग के मानस और दृष्टि के लिए यह सब एक अशान्तिजनक समस्या है। कार्यकर्त्ताओं और अध्यापकों में कोई अंग्रेज नहीं, अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम नहीं, पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा भारतीयों की उच्च शिक्षा के मूल स्तम्भ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौर पर निर्दिष्ट अंग्रेजी साहित्य की पाठ्य-पुस्तकें यहाँ प्रयुक्त नहीं होतीं। विद्यार्थी सरकारी विश्वविद्यालयों में नहीं भेजे जाते। महाविद्यालय अपनी ही पदवियाँ देता है। यथार्थतः यह कानून-भंग है। आश्चर्य से स्तब्ध अधिकारियों का इसे एक ही साँस में राजद्रोह कहना अनिवार्य था। परन्तु उसे गुरुकुल पर अन्तिम निर्णय कदापि नहीं कह सकते। सन् १८३५ ई० में मैकाले ने सहकारी पत्रक में अपने विचार प्रस्तुत किये थे। तब से भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में किये गए प्रयत्नों में यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन विचारों से भारत में प्रत्येक असन्तुष्ट है।

परन्तु जहाँ तक मैं जान पाया हूँ, गुरुकुल के प्रवर्तकों के अतिरिक्त किसी ने भी अपने असन्तोष को नवीन प्रयोग के रूप में परिणत नहीं किया है।

एक उन्नतकाय दर्शनीय मूर्ति (प्रभावपूर्ण सौन्दर्य की प्रतिमा) हमसे भेंट करने आती है। आधुनिक सम्प्रदाय का कलाकार ईसा की प्रतिकृति घड़ने के लिए आदर्श के रूप में इसका स्वागत करता है और मध्यकालिक रुचि का चित्रकार इसमें सन्त पीटर का रूप दिखाता। महात्मा जी हमें नमस्कार करते हैं और हम उनके अभ्रक-जटित 'ओम्' नाम से अलंकृत सादा साज-सज्जावाले कमरे में प्रवेश करते हैं।

मुझे दिये गए कमरे में शुद्ध वस्त्र से ढकी मेज पर उज्ज्वल वर्ण की पत्तियों से मिश्रित लाल फूलों से भरे दो गुलदस्ते रक्खे हुए हैं। किसी अतिथि को कभी इससे अधिक मनोहर कोठरी नहीं मिली। एक सेवक हमारे हाथों पर पानी डालता है और हमें एक अंगोछा देता है। जूते बाहर कर हम एक कमरे में प्रवेश करते हैं जहाँ भोजन परोसा गया है। महात्मा जी भोजन से पूर्व प्रार्थना करते हैं। हमारा मस्तक नत हो जाता है। मैंने अनेक प्रार्थनाएँ सुनी हैं, पर ऐसी नहीं सुनी थी। हमारे मेजबान की संस्कृत-स्वरों पर सुख देती हुई गहन-गम्भीर वाणी पापशुद्धि के आभार-सम्बन्धी संगीत का पूरा-पूरा अनुकरण कर रही है।

भोजन समाप्त होता है और हम शिक्षणालय की परिक्रमा करने को निकलते हैं। सर्वत्र सुव्यवस्था और प्रसन्नता है। उज्ज्वल चमकीले नयनों वाले बालबटु और प्रशान्त मुद्रावाले कुमार, कहीं मिट्टी में खिलौने बनाते हुए, कहीं मिलकर अपना पाठ दुहराते हुए, कहीं श्लोक-पाठ करते हुए और कहीं अपने गुरुओं के व्याख्यान सुनते हुए (क्योंकि गुरुकुलों में व्याख्यान द्वारा ही अधिकृत अध्यापन होता है) श्रेणियों में बैठे हैं। विद्यालय समाप्त होता है। तुरन्त छात्र गुजरता हुआ अपने आचार्य के पाँवों में झुककर और अंजलिबद्ध हाथों को उठाकर अभिवादन करता है।

दोपहर ढल जाने पर हम वन में भ्रमणार्थ जाते हैं। महात्मा जी हमसे सुनी हुई बातों की चर्चा करते जाते हैं। वह परिधान, अंगों का वह गठन, वह चाल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढाल, वह लम्बा दण्ड, किशोरावस्था में प्रति रविवार को प्रार्थनालय के द्वार पर देखे हुए गेलिलि के भ्रमण के दृश्य आचार्य-स्मृति कराते हैं। एक मैं ही अपने अंग्रेजी वेश में मण्डली और उसके अभिनयों में उपहासास्पद हो रहा हूँ। प्रतीची दिशा अस्तोन्मुख सूर्य के प्रभा-मण्डल से झिलमिला रही है। अर्धचन्द्र कब से ऊँचे सिर पर आकर रजत वर्ण की चन्द्रिका छिटका रहा है। रात्रि का पवन तथा उसके साथ लम्बी वनस्पतियाँ भी मौन धारण कर रही हैं। कम्पित वस्तुओं की मर्मर ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ती है। शीत हमारे ऊपर उतर रहा है। गुरुकुल अन्धकार में मग्न है। परन्तु छात्रावास के मध्य भाग में जलनेवाली अग्नि-शिखायें आश्रम के द्वारों में से दिखाई दे रही है। आँगन मन्त्रोच्चारण के शब्द से परिपूर्ण हो रहा है। घास पर चटाइयाँ बिछाकर बुद्ध की प्रतिमा-सी छोटी-छोटी मूर्तियाँ बैठी हैं। उनमें गति नहीं है। वे हमारी ओर दृष्टि भी नहीं उठाते। उनकी सामूहिक प्रार्थना (सन्ध्या) समाप्त हो चुकी है। अब वे अलग-अलग एकाग्रचित्त होकर ध्यान में मग्न हैं।

कमरे के अन्दर फर्श में स्थित एक कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित है। चारों ओर अध्यापकवृन्द और छात्रमण्डल बैठा है। वह अपने एक प्राचीन धर्मकार्य (अग्निहोत्र) का अनुष्ठान कर रहा है।

ज्वाला के हल्के प्रकाश में सभी अपने सन्मुख को निहारते हैं। सहसा लौ ऊपर उठती है। एक स्वर में कोमल वाणियाँ पुकारने लगती है—"सर्वज्ञ ज्ञान के दाता, ज्योतियों के ज्योति, परमेश्वर को हम आत्मार्पण करते हैं।" अब कुछ विराम होता है। ज्वाला नीचे उतरने लगती है। इतने में एक दूसरी आहुति डाली जाती है। ज्वाला पुनः भभक उठती है। कमरों की भित्तियों में और छतों पर पीली आभा छा जाती है और प्रहसन-नृत्यों के-से दृश्य अंकित हो जाते हैं। पुनः तोतली बोलियाँ पुकारती हैं—हे प्रभो, हम तुझे आत्मदान करते हैं जो तू एक-एक में रम रहा है। इसी प्रकार क्रमशः विराम, प्रकाश और मन्त्रपाठ होता है। अन्त में यज्ञपाठ होता है। अग्नि शान्त हो जाती है। गुरुकुल के आँगन को प्रकाशित करने के लिए अब एकमात्र तारे रह गये।

एक बार फिर हम अपने हाथ बाहर निकालते हैं। नौकर उनपर पानी डालता है। जूते उतारकर हम उन्मुक्त पवन में सायंकालिक भोजन के लिए चटाइयों पर बैठते हैं। हमारे चरणों में गंगा आह्लादकारी कलकल करती हुई पत्थरों में से होकर वेग से बह रही है। ऊँची-ऊँची घासों की ऊँची-ऊँची शिखायें चन्द्र-ज्योत्स्ना से खेल रही हैं। वनभूमि ओस से व्याप्त हुई-सी झिलमिला रही है। दूर बहुत दूर से आते हुए अस्फुट वन्य शब्द भूतों और पथभ्रष्ट आत्माओं का भान कराते हैं। मानो स्वप्न में मैं किसी को कहते सुनता हूँ—"हमें और कुछ नहीं चाहिए। हमें शान्ति से प्रभु का काम करने दो!" क्या यह राजद्रोह है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७

मेरे नायकों में से एक

स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति मेरे मन में विगत २० वर्षों से आदर का भाव रहा है। उनके द्वारा व्यक्त की गई एक इच्छा मेरे लिए नितान्त आदरास्पद है। यद्यपि मैं रक्त-विकार के कष्ट से मुक्त होकर विगत कुछ दिनों से विश्राम कर रहा हूँ तथापि अपने लेखन-कक्ष में बैठकर 'तेज' के लिए यह लेख लिखना मेरे लिए आवश्यक हो गया है। मेरी बीमारी के दौरान श्री और श्रीमती स्टोक्स, श्री ग्रेग तथा श्री सुन्दरम् की मुझपर बड़ी कृपा रही। उन्हीं की कृपा से मैं दुबारा शिमला जा सका जहाँ मैंने वायसराय से दक्षिण अफ्रीका के मामलों पर तीसरी बार मुलाकात की। तत्पश्चात् मैं अपने प्यारे घर शान्तिनिकेतन आ गया। मैं तब से ही यहाँ निरन्तर विश्राम कर रहा हूँ। यहीं पर मुझे स्वामी श्रद्धानन्द का पत्र मिला जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि मैं बहुत अधिक श्रान्त नहीं हूँ तो मुझे 'तेज' के लिए एक लेख लिखना चाहिए।

मेरे खयाल में 'तेज' का यह अंक श्रीकृष्ण की स्मृति तथा उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए विशेषांक के रूप में निकाला जायगा। इक कारण मैं यह स्पष्ट रूप से कहूँगा कि इससे पहले मैंने गीता के निष्काम कर्म के अभिप्राय को न तो इतनी अधिक स्पष्टता से समझा था और न उसका पालन ही किया था जितना कि अब कर पाया हूँ। १९१३ ई० में मैं और मेरा प्रियतम अंग्रेज मित्र विली पियरसन, हम दोनों दक्षिण अफ्रीका गये थे और प्रथम बार गांधी जी से मिले थे। उसी समय गीता के निष्काम कर्म को हम दोनों ने अपना सिद्धान्त बना लिया था। मेरी निराशा की घड़ियों में वह उन अद्‌भुत शब्दों का पुनः-पुनः उच्चारण करता—अपने कर्त्तव्य की ओर देखो, उसके फल की ओर दृष्टिपात मत करो! हमें सारे परिणामों को परमात्मा के हाथों में छोड़ देना है। केवल ईश्वरीय इच्छा को पूरा करने के लिए संघर्ष करना ही हमारा काम है। मेरे तथा स्वामी जी के समान मित्र विली पियरसन की लगभग ४ वर्ष पूर्व इटली में एक रेल-दुर्घटना में दुःखद मृत्यु हो गई थी। इससे मेरे जीवन में जो एक रिक्तता आई वह अब तक नहीं भरी जा सकी है। इस बार की मेरी दक्षिण अफ्रीका की तीसरी समुद्र-यात्रा के समय मैंने अपने इस मित्र के वियोग का कैसा अनुभव किया है, उसका अनुमान

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद ही कोई कर सके। सम्भवतः स्वामी जी और कुछ दूसरे लोग ही इसे समझ सकेंगे। हम दोनों प्रायः गुरुकुल जाया करते थे जब कि वह काँगड़ी ग्राम में स्थित था। अब तो वह हरिद्वार में आ गया है। महात्मा मुंशीराम, वे उस समय इसी नाम से जाने जाते थे, हमारे नायकों में एक थे। दक्षिण अफ्रीका की प्रथम यात्रा के समय हम दोनों परस्पर स्वामी श्रद्धानन्द के बारे में ही चर्चा करते और उन असाधारण सुखद दिनों की याद करते जो हमने महात्मा मुंशीराम, प्रोफेसर रामदेव, डॉक्टर सुखदेव तथा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के सान्निध्य में बिताये थे। इन ब्रह्मचारियों में कई तो अब अफ्रीका जा चुके हैं। मैं कह चुका हूँ कि हमारे वीर नायकों में से एक महात्मा मुंशीराम भी थे। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हमारे गुरुदेव हैं, हमारे सर्वस्व हैं क्योंकि उन्होंने ही हमें भारत माता से प्रेम करने की प्रेरणा दी है। भारत को माता के रूप में हमने इससे पहले कभी नहीं जाना था। यह तो इन महाकवि की कवि प्रकृति के कारण ही सम्भव हुआ है। हम दोनों एक अन्य सज्जन से भी अत्यधिक प्यार करते थे, वे हैं सेंट स्टीफेन्स कॉलेज के प्रिंसिपल रुद्र। वे सच्चे देशभक्त तथा सन्ततुल्य चरित्रवाले थे, जिन्हें दिल्ली के हिन्दू और मुसलमान समान आदर देते थे।

मैंने यह कहानी कई बार दोहराई है कि मैं भाई गांधी जी से दक्षिण अफ्रीका में प्रथम बार कैसे मिला, और जब मैंने इस प्रथम भेंट में ही उनके चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया था तो इसकी कैसी भीषण प्रतिक्रिया मेरे देशवासियों पर हुई थी। यह सचमुच विस्मयजनक था कि मैं और विली पियरसन वहाँ बसे सारे भारतवासियों के कितने प्रिय और प्रगाढ़ मित्र बन गये। उन्होंने भी निस्संकोच भाव से अपनी मैत्री हमें प्रदान की। वह समय हम दोनों के लिए परम आनन्द का था।

जब हम गांधी जी को भली-भाँति जानने लगे तो वे मेरी बात सुनकर अपनी प्रसन्न मुद्रा में हँस पड़ते तथा प्रेम और स्मितपूर्वक कहते—तुम जिस त्रिमूर्ति की पूजा करते हो, उसे समझना नितान्त सरल है। यह त्रिमूर्ति थी—महात्मा मुंशीराम, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा प्रिंसिपल सुशीलकुमार रुद्र की। उन्होंने मुझे कहा कि मैंने इन तीनों को उनके लिए जीवित व्यक्तित्व ही बना दिया है और उनकी इच्छा है कि वे इनमें से प्रत्येक को निकटता से जानें। उसके बाद भी वे प्रायः इस त्रिमूर्ति की चर्चा करते और इन तीनों सन्तों और नायकों के बारे में चर्चा करने में मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती थी, क्योंकि मैं इन तीनों को अपने अन्तर्तम से प्यार करता था। इस लेख को समाप्त करते हुए मैं दो प्रार्थनायें करूँगा। मेरा प्रथम अनुरोध तो यह है कि जो लेख मैंने अंग्रेजी में लिखा है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका अनुवाद भी किया जाएगा, लिबरेटर[1] में छापा जाय। जहाँ तक सम्भव हो मेरे सभी लेख दोनों पत्रों में छपें, यह मेरी इच्छा है। मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि जब मैं पुनः दक्षिण अफ्रीका जाऊँ और अपने प्रिय भाई और मित्र स्वामी श्रद्धानन्द के बारे में लेख या पत्र भेजूं तो वे अनुदित किये जाकर 'तेज' के साथ ही 'लिबरेटर' में भी प्रकाशित किये जायें।

—सी० एफ० एण्ड्रूज

१. यह लिबरेटर के १६-९-१९२६ के अंक में छपा। तेज उर्दू का एक दैनिक पत्र है जो स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित किया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू संगठन

सम्पादकीय भूमिका

कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टिकरण तथा हिन्दू हितों की उपेक्षा की नीतियों से असन्तुष्ट होकर स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दू संगठन का कार्य आरम्भ किया था। इसमें उन्हें पण्डित मदनमोहन मालवीय तथा लाला लाजपतराय जैसे उन राष्ट्र-वादी नेताओं का भी सहयोग मिला, जो यद्यपि कांग्रेस के अत्यन्त सक्रिय तथा निष्ठावान् नेता थे, किन्तु साथ ही यह भी अनुभव करते थे कि देश के हिन्दू समाज को सुसंगठित, शक्तिशाली तथा प्रबुद्ध बनाये बिना स्वराज्य का लक्ष्य प्राप्त करना असम्भव है। अतः स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दू संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए जाति-पाँति के भेदभाव को समाप्त करने, वर्णाश्रम धर्म को उसका वास्तविक रूप प्रदान करने, अछूतों के प्रति समानता का व्यवहार करने तथा विधर्मी बने हिन्दुओं को समाज में पुनः सम्मिलित करने के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

इसी समय उन्होंने हिन्दू जाति के संगठनात्मक पहलुओं पर विचार करते हुए 'हिन्दू संगठन' शीर्षक एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखकर १९२४ ई० में प्रकाशित की। इसके प्रथम तीन प्रकरणों में ईसाइयत तथा इस्लाम द्वारा भारत के हिन्दू धर्म और समाज पर किये गए अनेक आक्रमणों का सविस्तार, प्रामाणिक विवरण दिया गया है। अवशिष्ट प्रकरणों में आर्यजाति में प्रचलित गुण-कर्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था में विकार आने, हिन्दू समाज में अछूतों और नारी जाति की अधो-गति जैसे ज्वलन्त प्रश्नों की सतर्क समीक्षा करने के पश्चात् हिन्दू संगठन और शुद्धि-आन्दोलन के जन्म और विकास की भी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। यद्यपि पुस्तक में दिये गए अनेक आँकड़े कई वर्ष पुराने हैं किन्तु इनसे तात्कालिक सामाजिक बुराइयों की व्याप्ति तथा उसके विस्तार को जानने में सहायता मिलती है। यद्यपि यह ग्रन्थ आज से लगभग ६३ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था, किन्तु हिन्दू समाज की वर्तमान स्थिति में भी कोई उत्साहवर्धक सुधार तब से अब तक देखने में नहीं आया है। अतः इस ग्रन्थ में व्यक्त विचारों की प्रासंगिकता यथावत् है। कई वर्ष पूर्व पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति ने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया था। हमने ग्रन्थ के मूल पाठ को पण्डित इन्द्र के संस्करण के ही अनुसार रक्खा है। यत्र-तत्र उद्धरणों के सही पते अवश्य दे दिये गए हैं।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

श्री स्वामी जी महाराज ने यह पुस्तक १९२४ में लिखकर समाप्त की। उस समय हिन्दुओं में संगठन की चर्चा का आरम्भ हुआ था। उसे भारत की तत्कालीन पराधीन मनोवृत्ति का ही परिणाम समझना चाहिए कि बहुत-से हिन्दुओं ने संगठन की चर्चा को भी गुनाह समझा और उसका विरोध किया। जो महानुभाव राजनैतिक क्षेत्र में अगुआ बने हुए थे, वे हिन्दू संगठन को एक हौआ-सा मानने लगे थे। ऐसे लोगों के भ्रम-निवारण और हिन्दू जनता के उद्बोधन के लिए यह पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित की गई थी। पुस्तक को प्रकाशित हुए तेईस वर्ष हो गए, भारत की राजनैतिक परिस्थिति पलट गई, परन्तु इस पुस्तक की आवश्यकता कम नहीं हुई। आज भी हिन्दुओं को मोह-निद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है और स्वतन्त्र भारत में भी ऐसे सज्जन विद्यमान हैं जो हिन्दू जाति के शक्तिसम्पन्न बनने के प्रयत्नों को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे लोगों को यह बताना आवश्यक है कि भारत में बसनेवाली मुख्य जाति का शक्तिसम्पन्न होना राष्ट्र की शक्तिसम्पन्नता का विरोधी नहीं प्रत्युत मूल आधार है। इसी उद्देश्य से पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है।

यह अनुवाद दो योग्य और उत्साही नवयुवकों ने किया है। पृष्ठ ६४ तक का अनुवाद श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति ने और उससे आगे के पृष्ठों का अनुवाद श्री विद्यासागर विद्यालंकार द्वारा किया गया है। विजय पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी के इन दोनों स्नातकों का आभारी है।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

आजकल के हिन्दुओं के पुरखा प्राचीन आर्य, जिनके नाम पर हमारी मातृभूमि आर्यावर्त कहलायी, बहुत ही सभ्य तथा संगठित जाति के थे। प्राचीन भारतीय इतिहास की निष्पक्ष शोध से सिद्ध हो जायेगा कि आज संसार की सभ्य कहलानेवाली जातियाँ जिस समय जंगलों में जंगली जानवरों की न्याईं भटकती फिरती थीं और पेड़ों की पत्तियाँ ही जिनके शरीरों का सहारा थीं, उस समय आर्य ऐसी असली संस्कृति को सींच रहे थे, जिसकी जोड़ की सभ्यता आज भी पैदा नहीं हुई। उनकी सभ्यता उन्नत, उदार एवं व्यापक थी, उससे उस समय का सम्पूर्ण जाना हुआ संसार प्रभावित था। आर्यावर्त के सम्पूर्ण महाद्वीप में सुख और शान्ति का साम्राज्य था, परिणामस्वरूप ध्रुवों, फारस, चीन, जापान, पूर्वी भारतीय द्वीपसमूहों तथा दूसरे गोलार्द्ध तक भी, जहाँ पुरानी आर्य सभ्यता के चिह्न राम-सीता के वार्षिक समारोहों तथा भारतीय प्रारम्भवाले पुराने अवशेषों में पाये गये हैं, औपनिवेशिक दल भेजे जाते थे।

फारस तथा यूनानियों द्वारा प्रारम्भ किये गये राज्यों के धुँधले इतिहासों में विदेशियों के भारत पर कुछ आक्रमणों का हाल मालूम पड़ता है, परन्तु इनका भारतीय जनता पर कोई असर नहीं पड़ा; यदि आक्रमणकारी कुछ विदेशी पीछे छोड़ भी गये तो विभिन्न आर्य जातियों ने पचा लिया, समय पाकर वे भारतीय राष्ट्र के हिस्सा बन गये। ईसाई संवत् के शुरू होने से पहले मकदूनिया का सिकन्दर महान् ही सब आक्रमणकारियों से अधिक सफल होकर सतलुज नदी के किनारे तक पहुँचने में कामयाब हो सका था। सिकन्दर ही था, जिसने अपने सेनापतियों को भारतीय क्षत्रप-सामन्त शासक के रूप में नियुक्त किया था, परन्तु उसी समय समुद्रगुप्त तथा दूसरे भारतीय शासक हुए, जिन्होंने न केवल विदेशियों से अपनी खोई हुई जमीनें छीनीं, अपितु यूनानी राजकुमारियों से भी विवाह किया, जो अपने यूनानी अनुचरों के साथ दूसरे भारतीय आर्यकुलों में उत्पन्न सन्तानों के समान हिन्दू बन गईं। भारतीय अपनी पुरानी पवित्रता को छोड़कर जब वाममार्ग की अपवित्र क्रियाओं को करने तथा दूसरी बुराइयों में पड़ गये, उस समय जनता के सुधार का बीड़ा भगवान् बुद्ध ने उठाया, परन्तु इनके अनुयायी भी कट्टर मजहबी बन गये। इसका नतीजा हुआ कि संयुक्त भारतीय जनता दो विरोधी दलों में बँट गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो शताब्दी से अधिक समय तक सम्पूर्ण आर्यावर्त पर बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा। भगवान् बुद्ध द्वारा प्रचारित शुद्ध धर्म जब नास्तिकवाद तथा एक खास तरह के कर्मकाण्ड में पड़ गया, उस समय शंकराचार्य ने वेदान्त के आध्यात्मिक हथियार को हाथ में ले बौद्ध धर्म को भारतभूमि से निकाल बाहर किया। इस समय राष्ट्र की पुरानी प्रतिष्ठित शासन-व्यवस्था के अनुकूल स्थापित सर्वोच्च शक्ति की परम्परा के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में अनियन्त्रित, स्वेच्छाचारी राज्य-तन्त्रों ने सिर उठाना प्रारम्भ किया। वेद में प्रतिपादित आर्यों के सामाजिक संगठन का पुराना आदर्श धीमे-धीमे बदलता गया, इसके साथ ही राष्ट्र का आदर्श भी बदल गया।

आर्य युग में भारतीय राज्य जनता की धरोहर समझे जाते थे। सिकन्दर के समय में भी कुछ राज्य ऐसे थे, जिनमें राजा नहीं होते थे; यूनानी लेखकों ने इन्हें प्रजातन्त्र के रूप में वर्णित किया है। उस समय राज्यों और राजाओं के नाम राज-परिवार पर न होकर जनता के नाम पर होते थे। बौद्ध युग में धीमे-धीमे विदेशी हमलों के लगातार होने तथा विदेशी शासन के कारण शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी मामलों में जनता की सम्मति कम-से-कम पूछी जाने लगी और राजा की ताकत लगातार स्वेच्छाचारी होती गई और अन्त में राज्यसत्ता का अधिकार जनता द्वारा न प्राप्त होकर दैवी कृपा से प्राप्त समझा जाने लगा।.........कौन हुकूमत करता है—जन-साधारण ने इसका खयाल करना छोड़ दिया; जो कोई राजा या राजकीय परिवार अपनी शक्ति को स्थापित करने में समर्थ होता, उसी के प्रति राजभक्ति दिखाने में गौरव अनुभव करते थे।*

भारत में राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त ने मजबूत जड़ जमा ली। 'नराणां नराधिपम्' मनुष्यों में राजा रूप में मेरी शक्ति ही शासन करती है—भगवान् कृष्ण के इस सुन्दर तथा उत्साहवर्धक वाक्य की गलत व्याख्या करी जाने लगी। संवत् ६६६ विक्रमी (मई ६०६ ईसवी) के ज्येष्ठ मास में स्थानेश्वर (थानेसर) में हर्ष जिस समय गद्दी पर बैठा तो उस समय आर्यों की मातृभूमि का नाम आर्यावर्त से बदलकर हिन्दुस्थान हो गया। हर्ष के राजपण्डित बाणभट्ट तथा प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसांग के आधार पर हम कह सकते हैं कि हर्ष वास्तव में एक चक्रवर्ती महाराजा था और उसके समय तक हिन्दुओं का अधः-पतन अधिक न पनप सका था। एक साल तक हर्ष ने राज्य की बागडोर सँभाली और उसके समय में विदेशी प्रभाव बिल्कुल देखने में नहीं आता था।

ह्यूनसांग कहता है—"देश की विभिन्न जातियों तथा वर्णों में ब्राह्मण सबसे अधिक पवित्र और आदरणीय हैं.........क्षत्रिय और ब्राह्मण अपने जीवन में

---

*वैद्य—हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इण्डिया, प्रिफेस, V.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल खरे और झूठा आडम्बर न करनेवाले, सच्चे और सादे हैं और वे बहुत मितव्ययी हैं............ चार पैतृक वर्णभेद मौजूद हैं।" गुण-कर्म की वैदिक व्यवस्था की जगह वर्ण पैतृक बनने लगे थे। आजकल मौजूद हजारों उपजातियों का उल्लेख उस समय नहीं मिलता, जिनसे आज का समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है।

ह्यू नसांग कहता है—"पहला स्थान ब्राह्मणों का है। वे अपने सिद्धान्तों का पालन करते हैं, तथा सख्ती से आचार-सम्बन्धी पवित्रता को निबाहते हुए संयम-पूर्वक जीवन बिताते हैं। क्षत्रियों का दूसरा स्थान है, इन्हीं से राजन्यों की जाति का निर्माण होता है। कई पीढ़ियों तक सर्वोच्च शक्ति इन्हीं के पास रही, भला करने की इच्छा तथा दया इनके उद्देश्य हैं। व्यापारियों की श्रेणी—वैश्यों का तीसरा स्थान है, जो व्यापार के लायक वस्तुओं का विनिमय करते हैं या लाभ के लिए दूर और पास जाते हैं। किसानों तथा शूद्रों का चौथा स्थान है। ये जमीन को उपजाऊ बनाने में मेहनत करते हैं तथा बोने और काटने के काम में बहुत मेहनती हैं।" वैदिक वर्ण-व्यवस्था से इस समय अन्तर आ गया मालूम पड़ता है। किसान पूरे वैश्य समझे जाते थे, न कि शूद्र। वैदिक काल में सेवा करनेवाली चौथी श्रेणी शूद्रों की समझी जाती थी और उस समय पाँचवाँ वर्ण कोई नहीं था।

"एक वर्ण का सदस्य अपने वर्ण में ही विवाह करता है। पिता या माता के पक्ष के सम्बन्धियों में आपसी विवाह नहीं होता और कोई स्त्री अपना दूसरा विवाह बिल्कुल नहीं करती।"

"उस समय विधवा-विवाह का उल्लेख नहीं मिलता, सम्भवतः बाल-विवाहों के न होने से। अपने पूर्ण यौवन में कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा ने हर्ष की बहिन राज्यश्री से विवाह किया था। वाण के कथनानुसार हर्ष के राज्यपण्डित वाण ने एक युवती ब्राह्मण कन्या से शादी की थी। शारीरिक दृष्टि से पूर्ण समर्थ होने पर राज्यश्री का परिणय किया गया था; विवाह के दिन ही सम्पूर्ण संस्कार की समाप्ति हो गई थी। वाण ने अपने-आप भी मयूर की युवती बहिन के साथ विवाह किया था। पुराने और आधुनिक भारत को अलग करनेवाली कड़ी के रूप में हर्ष का समय कहा जा सकता है क्योंकि इसके बाद हम देखेंगे कि धीमे-धीमे बाल-विवाह का प्रचलन जारी होता गया।" (वैद्य ६४, ६५)।

वर्णव्यवस्था अभी तक मजबूत न हुई थी, जितना कि पीछे जाकर हो गयी, क्योंकि हम श्री वैद्य लिखित 'मध्यकालीन हिन्दू भारतवर्ष' नाम वाली अंग्रेजी पुस्तक की पहली जिल्द में पढ़ते हैं—"वर्णव्यवस्था अब तक भी ढीली थी और ऊँचे वर्णवाले समीपस्थ निचले वर्णवाले से विवाह कर सकते थे और इसका सन्तान के वर्ण पर कोई असर न होता था। ह्यू नसांग वर्णन करता है कि हर्ष की लड़की का विवाह ध्रुवभट्ट से हुआ था। पहला वैश्य था तथा पिछला एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रिय था। वाण लिखता है कि हर्ष की बहिन कन्नौज के मौखरि ग्रहवर्मा से ब्याही गयी थी। हर्ष के परिवार का नाम वर्धन अथवा भूति शब्द से समाप्त होता था जो कि वैश्य वर्ण का वाचक था, मौखरियों के नाम वर्मन् शब्द से समाप्त होते थे जिनसे उनका क्षत्रिय वर्ण झलकता था।......ऊपरले वर्णवाले निचली वर्ण-वाली लड़कियों से विवाह कर लेते थे, परन्तु यह अनुलोम विवाह साधारणतौर पर साथवाले निचले वर्णवाले के साथ ही होता था, कभी-कभी दो या अधिक निचली वर्णवाली कन्या के साथ भी विवाह हो जाता था। बाण ने लिखा है कि उसके दो परस्व भाई (शूद्र स्त्री से ब्राह्मण के लड़के) थे।" (पृष्ठ ६१ और ६२)

जैसा हम बतला आये हैं उस समय उपजातियाँ नहीं थीं। "किसी प्रकार के छोटे-मोटे भेदों के विना ब्राह्मण एक वर्ण में गिने जाते थे। पंच द्रविड़ों और पंच गौड़ों के वर्तमान भेद तथा दूसरी छोटी-मोटी उपजातियों के विभेद उस समय तक पनप न सके थे........" (पृष्ठ ६७)

क्षत्रियों के सम्बन्ध में श्री वैद्य लिखते हैं—"जिस प्रकार पाँच गौड़ तथा पाँच द्रविड़—दस उपभेद पैदा न हुए थे, इसी प्रकार राजपूत खत्रियों के भेदों से क्षत्रिय नहीं बँटे थे.......और न क्षत्रियों ने ३६ परिवारों में विभक्त होकर अपने को पवित्र वंश का मानकर विवाह को अपने तक ही सीमित कर दिया था। इन ३६ परिवारों में से किसी एक का नाम भी इस समय तक सुनने में नहीं आता......किन्हीं विशिष्ट परिवारों में विवाह-सम्बन्धी पाबन्दी न लगाकर भारतीय क्षत्रिय एक संयुक्त वर्ण की न्याईं रहते थे।" (पृष्ठ ७०)

वैश्यों ने दूसरे ऊँचे वर्णों के समान अपने वर्ण की पवित्रता को अक्षुण्णा नहीं रक्खा है और उनमें से कुछ तो शूद्रों की स्थिति तक पहुँच गये हैं। ह्यूनसांग के समय के वैश्य, उसके कथनानुसार, व्यापारी, व्यवसायी, महाजन होते थे; इन्होंने सम्भवत: अपने को सीमित क्षेत्र में ही बाँधे रक्खा। माहेश्वरी तथा अग्रवाल आदि वैश्यों की उपजातियों के नामकरण अभी तक न हुए थे।" (पृष्ठ ७२ और ७३)

अन्त में, शूद्रों की बारी आती है, ह्यूनसांग के अनुसार जिनका व्यवसाय खेती का काम था। ईसाई संवत् से पूर्व खेती वैश्य किया करते थे, सेवाकार्य शूद्र-श्रेणी पर छोड़ा हुआ था। जिन्दगी के प्रति अरुचि-सम्बन्धी बौद्ध विचार के फैलाव से उद्योग-धन्धे का यह परिवर्तन हुआ।.........खेतिहरों के सिवाय बहुत-सी श्रेणियाँ थीं जो भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रम-कार्यों को करती थीं और ये श्रेणियाँ शायद मिले-जुले प्रारम्भ वाली थीं।" (पृष्ठ ७४)

तथाकथित 'अछूतों' की अवस्थिति के सम्बन्ध में श्री वैद्य का यह विचार कि वे वैदिक काल में थे, सम्भव प्रतीत नहीं होता, प्रतीत होता है कि वे ह्यूनसांग की यात्रा के समय अज्ञात नहीं थे। वह कहता है—"कसाई, मछुआरे, जल्लाद और मेहतरों के घर विशेष प्रकार के निशानों से चिह्नित होते थे। वे शहर से बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने के लिए बाध्य हैं। जब वे गाँव में घुसते हैं तो उन्हें बायीं ओर सरकते हुए जाना पड़ता है।" श्री वैद्य आगे लिखते हैं—"गन्दी आदतोंवाली तथा मरे हुए मांस पर जिन्दगी बसर करनेवाली द्रविड़ जातियों की तलछट से सम्भवतः इन दलित जातियों का निर्माण हुआ होगा। परन्तु सन् १६०१ की जनगणना में पंजाब और राजपूताना में इनमें आर्य जाति का मेल भी पाया गया। सर एच० रिस्ले ने इस अवसर पर मानव-जाति के विज्ञान-सम्बन्धी विशेष गणना की थी। इस गणना से मालूम पड़ा कि पंजाब के चमार और चूहड़ नसल में पूरी तरह आर्य हैं, शायद ये बौद्ध काल में अपने पेशे के कारण नीच समझे जाने लगे। स्मृतियों में कहा है कि प्रतिलोम विवाह की सन्तान—खास तौर से शूद्र पतियों की ब्राह्मण स्त्रियों से हुई सन्तान—यद्यपि ये बहुत कम देखने आती थीं—चाण्डाल समझी जाने लगीं, इस प्रकार से इनकी नसों में आर्य खून बहने लगा।"(पृ० ७५)

सारांश में—सम्राट् हर्ष की मृत्यु तक भारतीय भूमि पर विदेशियों के पाँव जमने नहीं पाये थे। विदेशी हमलों को लगातार व्यर्थ कर दिया गया था। यदि ये कभी किसी अंश में कुछ समय के लिए कामयाब हुए भी तो इन्हें आखिर में विफल कर ही दिया गया। अनार्य श्रेणियों का उस समय अभाव था। यदि कभी अनार्य आये भी तो उन्हें आर्यों के समाज ने अपने में पचा लिया। उस समय तीन ही ऊँचे वर्ण थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। इनमें कोई उपजाति न थी। मुख्य वर्णों में पारस्परिक विवाह प्रायः हुआ करते थे। शायद शूद्रों में उनके विभिन्न कार्यों के अनुसार उपजातियाँ थीं। आखिर में, तथाकथित अछूत या पंचम वर्ण-वाले भी थे, जो गाँव के बाहर रहने के लिए बाधित थे।

उन दिनों बालविवाह का प्रचलन नहीं था और इसीलिए बाधित विधवा-वृत्ति भी हिन्दू समाज की शान्ति को नष्ट करने के लिए पैदा नहीं हुई थी। राज्यश्री जैसा विधवावृत्ति का कोई उदाहरण कभी होता भी था तो उस अशान्त विधवा को बौद्ध विहार अपने भिक्षुणियों के संघ में लेने के लिए तैयार रहते थे। हिन्दू समाज की स्त्री की वर्तमान हालत की अपेक्षा हर्ष के समय हिन्दू स्त्री की बहुत अच्छी हालत थी। परन्तु इसमें एक अपवाद था। रामराज्य का एकपत्नीत्व का उदाहरण क्षत्रिय राजाओं में कहीं विरले ही देखने को मिलता था। हिन्दू राजाओं के रनिवासों में कई-कई पत्नियाँ, उपपत्नियाँ, वेश्याएँ, लड़ाई में जीते हुए या मारे गए राजाओं की विधवाएँ रहती थीं, जोकि शायद गुलामी की हालत तक पहुँच गई थीं। विधवा-विवाह के असम्मत होने से विजेता के परिवार की इस तरह की स्त्रियों की हालत उपपत्नियों के समान हो गई थी। इसमें अचम्भे की कोई बात नहीं है कि ये स्त्रियाँ गुलामी की अपेक्षा मर जाना ज्यादह पसन्द करती थीं और अपने पतियों की चिताओं पर या आग लगाकर स्वतन्त्रतापूर्वक मौत का आह्वान करती हुई बलि दे देती थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन अपवादों के सिवाय स्त्रियों की हालत सामान्यरूप से बहुत अच्छी मालूम पड़ती है। उनके साथ अच्छा वरताव होता था और उन्हें सुशिक्षित किया जाता था। राज्यश्री विभिन्न कलाओं और शास्त्रों में निष्णात एवं सुशिक्षित महिला थी।" (वैद्य, पृष्ठ ९६)

उस समय के लेखकों द्वारा वर्णन से मृत्यु संस्कार के अवसर पर की प्रथाओं से मालूम पड़ता है कि ब्राह्मणों को भोजन खिलाया जाता था और राजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति में से उन्हें दान भी दिया जाता था, परन्तु यह यमलोक जाते समय मौत की नदी को पार कराने में सहायक होगा, इस खयाल से यह नहीं दिया जाता था, अपितु उनके देखने से उनके शोक पर असर पड़ता था। (वही, पृष्ठ ९८)

अभी हाल (नवम्बर १९२४) में रावलपिण्डी में सनातन धर्म कान्फ्रेंस में सभापतित्व करते हुए पुराने सनातनी नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कहा था कि श्राद्ध के समय ब्राह्मणों को दिया जानेवाला भोजन पुरखाओं तक नहीं पहुँचता, परन्तु यह उनके सद्गुणों की पुण्यस्मृति में दिया जाता था।

संक्षेप में, विक्रमी संवत् के उत्तरार्ध में हिन्दुओं की यह दशा थी जब इस महान् राष्ट्र का अधःपतन शुरू हुआ। जनता की राजनैतिक मनोवृत्ति तथा अवस्था के इस परिवर्तन से विदेशियों के हमलों के शिकार बनने में आसानी हुई तथा सामाजिक रीतिरिवाज विदेशी हमले के कारण गुलामी की हालत हो जाने से ज्यादह बिगड़ते चले गए।

अगले पृष्ठों में हिन्दुओं की गिरावट का इतिहास वर्णन कर वर्तमान शोक-जनक अधोगति के कारण खोजने का प्रयत्न किया गया है। राष्ट्र के उद्धार की राह को दिखाने के लिए यह एक प्रयत्न है।

—श्रद्धानन्द संन्यासी

कुरुक्षेत्र गुरुकुल,
४ मंगसिर १९८१ वि०
(२० नवम्बर १९२४ ई०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण १

हिन्दू—एक विनाशोन्मुख जाति

फरवरी सन् १९२४ में कलकत्ता आर्यसमाज के विशालभवन में मैं जब खड़ा हुआ था, उस समय यूरोपियन पोशाक पहने हुए एक बंगाली भद्र पुरुष इण्डियन मेडिकल सर्विस के कर्नल यू० मुखर्जी का मुझसे परिचय कराया गया। उनकी पोशाक पहले मेरी उनके विरुद्ध धारणा बन गई थी, परन्तु जब उन्होंने अपनी उस पुस्तिका का उल्लेख किया जिसमें वह हिसाब से यह दिखाने जा रहे थे कि यदि कोई कारगर कदम न उठाया गया तो अगले ४२० सालों में भारतीय आर्य-जाति संसार से मिट जायेगी तो मैंने उनकी देशभक्ति को सराहने का खयाल किया और मन में निश्चय किया कि भविष्य में मैं कभी बाहरी भेस से ही किसी आदमी को न जाँचूँगा।

कर्नल मुखर्जी ने सन् १९११ ई० की 'भारत की जनगणना' सम्बन्धी अंग्रेजी पुस्तक की पहली जिल्द के पृष्ठ १२२ को मुझे पढ़कर सुनाया—

"पिछले ३० सालों में सम्पूर्ण भारत में कुल आबादी की दृष्टि से हिन्दुओं का अनुपात ७४ से ६९ प्रतिशतक गिर गया है, परन्तु यह कुछ हद तक प्रत्येक नई आनेवाली जनगणना में अल्पसंख्यक हिन्दुओंवाले इलाके शामिल करने से हुआ है।" कर्नल मुकर्जी से मैं इस बात में सहमत हो गया कि सम्पूर्ण भारतीय महाद्वीप के हिन्दुओं की गिनती के असली ह्रास का खयाल करें तो नये इलाकों के जुड़ने का असर नहीं के बराबर है। इस समस्या को कर्नल मुखर्जी ने इस ढंग से सुलझाया—

पिछले तीस वर्षों में हिन्दुओं की कमी के ५ प्रतिशतक के वास्तविक अनुपात को लें तो इस समय हिन्दू कुल आबादी के ६९ प्रतिशतक हैं। यदि वर्तमान क्षय को रोकने की कोशिश नहीं की गई तो हिन्दुओं की यह गिनती ४२० (१४ × ३० =४२०) सालों में गायब हो जायेगी। कर्नल मुखर्जी द्वारा मेरे सम्मुख उपस्थित किये गए तथ्यों का मेरे ऊपर असर पड़ा। मैं पहले से ही ईसाइयों और मुसल-मानों से शुद्धि के कार्य में रुचि रखता था, अब मैंने इस विषय का विशेष अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद १३ साल तक मैं संख्याशास्त्र का विद्यार्थी रहा, परन्तु सन् १९२३ ई० के प्रारम्भ में मैंने अपना दिल और दिमाग जनता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचाव तथा उन्नति की लड़ाई में लगा दिया और अब वह समय आ गया है जब मैं अपनी विचारणाओं और अनुभव को जनता के विचारशील हिस्से के सम्मुख उपस्थित करूँ।

गिनती में कमी के कारण

गिनती में हिन्दुओं के क्षय के कारण कई हैं, जिनमें से कुछ सन् १९११ ई० की जनसंख्या के डायरेक्टर ने दिखलाए हैं। उसने मुख्य प्रान्तों में मुसलमानों की प्रतिशत आबादी की तालिका निम्न रूप से उपस्थित की है—

सीमाप्रान्त	९३ प्रतिशतक
बलूचिस्तान	९१ ,,
पंजाब	५५ ,,
संयुक्त बंगाल	५३ ,,
आसाम	२८ ,,
बम्बई	२० ,,
संयुक्त प्रान्त	१४ ,,
विहार-उड़ीसा	१० ,,
बरार मध्यप्रान्त	·४ ,,
बर्मा	३·५ ,,

इसके बाद आप लिखते हैं—

"भारत के कुल मुसलमानों का ३६ प्रतिशतक अथवा २ करोड़ ४० लाख मुसलमान बंगाल में रहते हैं। वे अधिकतर पूर्वी और उत्तरी जिलों में पाये जाते हैं। बंगाल के पठान शासकों के समय में इस हिस्से में जबर्दस्त तथा बहुत ही सफल प्रचार किया गया था। यहाँ के निवासी पूरी तरह से हिन्दू कभी नहीं हुए थे, सम्भवत: उनमें से अधिकतर मुसलमानों के पहले हमले के समय बौद्ध धर्म के एक विकृत रूप को मानते थे। ऊँचे वर्णवाले हिन्दू उन्हें अपवित्र खयाल करते थे, इसलिए वे आसानी से मुल्लाओं की इस शिक्षा को स्वीकार कर लेते थे कि अल्लाह की नज़र में सब आदमी समान हैं। कभी-कभी इसके लिए जबर्दस्ती भी हुई होगी।

"दूसरा कम खयाल आनेवाला अपवाद मलाबार है। यहाँ पर स्थानीय मुसलमान बननेवालों के वंशज मोपला कहलाते हैं। ८वीं शताब्दी में मलाबार के समुद्री किनारे पर चक्कर लगानेवाले अरबों ने इन्हें इस्लाम में दीक्षित किया था। कुछ नये मुसलमान अब भी बनाये जाते हैं।

"इसके सिवाय यह भी खयाल करना चाहिए कि उत्तरी भारतवर्ष की मुसलमान आबादी भी पूरी तरह से विदेशी ख़ून से नहीं पनपी। पंजाब के १ करोड़ २० लाख इस्लाम के अनुयायियों में से १ करोड़ राजपूत, जाट, अरायन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गूजर, मोची, तुरखन और तेली आदि जातियों में गिने गए थे। ये सब शुरू में हिन्दू थे। विदेशी जातियों से सम्बन्ध रखनेवाले पठान, बिलोच, शेख, सैय्यद और मुगलों की गिनती २० लाख से भी कम थी। इनमें से भी बहुत-सों की नसों में बहुत ही कम विदेशी खून बहता है।"(पृष्ठ १२८) सन् १९०१ से १९११ ई० तक के आखिरी दशक में आबादी की बढ़ती के सम्बन्ध में जनसंख्या के डायरेक्टर १७२वें पैरा में कहते हैं—

"इस दशक में मुसलमानों की बढ़ती ६·७ प्रतिशतक हुई, वहाँ इनके मुकाबले में हिन्दुओं की बढ़ती केवल ५ प्रतिशतक तक हुई। हिन्दू तथा दूसरे धर्मों से मुसलमान बननेवाले लगातार पर कम होते हैं, बनिस्वत उनके जो पैगम्बर के अनुयायियों की सन्तान के लिए अत्यन्त उर्वरा भूमि होने से। सम्भवत: उनके भोजन के अधिक पौष्टिक होने का भी असर हो, परन्तु सामाजिक रीति-रिवाजों के कारण हिन्दुओं की अपेक्षा उनके अधिक ज्यादह सन्तानें होती हैं, उनमें विवाह-सम्बन्धी रुकावटें कम हैं, बालविवाह प्रचलित नहीं हैं और विधवाएँ पुर्नविवाह आसानी से कर लेती हैं।

"१५ से ४० उम्र तक की स्त्रियों की कुल संख्या में विवाहित स्त्रियों में हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या की अधिकता से मालूम पड़ता है कि मुसलमानों की उत्पादक शक्ति अधिक है। इसका नतीजा हुआ कि मुसलमानों में १५–४० वर्ष तक के, प्रत्येक आदमी के ५ साल की उम्र तक के ३७ बच्चे हैं, जबकि हिन्दूओं के केवल ३३ ही होते हैं। सन् १८८१ से जनगणनावाले इलाकों में मुसलमानों की संख्या २६·४ प्रतिशतक तक बढ़ गई वहाँ हिन्दुओं की केवल १५·१ प्रतिशतक बढ़ पाई।"

बर्मा में दोनों जातियों की तुलनात्मक बढ़ती के सम्बन्ध में जनगणना की रिपोर्ट के १७३वें पैरे में लिखा गया है—

"हमने देखा है कि बर्मा में हिन्दू प्रवासी बौद्ध जनता में घुलमिलकर पच जाते हैं, परन्तु मुसलमान नहीं। कई पीढ़ियों में मुसलमान घराने बर्मा के अलग-अलग और छितराये हुए हिस्सों में बस गए हैं; इन्होंने अपने ईमान को कायम रक्खा है। एक मुसलमान जब एक बर्मी औरत से शादी कर लेता है तो वह अपनी सन्तान को इस्लामी मजहब में ही दीक्षित करता है। इन मिले-जुले विवाहों से हुई दोगली सन्तान जरबदी कहलाती है।"

सन् १९११ की जनगणना के कुछ लम्बे उद्धरण मैंने यहाँ पर दिये हैं, क्योंकि इस रिपोर्ट में विस्तारपूर्वक हिन्दुओं की गिरावट के मूल कारणों को देखने की कोशिश की गई है। अब मैं हिन्दुओं के पतन के कारणों को एक-एक करके लेता जाऊँगा और देखूंगा कि हिन्दू सुधारकों ने समय-समय पर जाति के पुनरुद्धार और कायाकल्प के लिए क्या प्रयत्न किये हैं? अन्त में, मैं हिन्दू संगठन के आंन्दोलन को उसके प्रारम्भ के इतिहास से लेकर वर्तमान हिन्दू महासभा के संगठन तक रक्खूंगा। साथ ही यह जाँचने की कोशिश करूँगा कि इस संस्था ने हिन्दू जाति को संगठित एवं मजबूत करने में क्या उपाय सुझाये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण २

पहला कारण

दूसरे धर्मों में परिवर्तन

पाठकों के सामने वर्तमान विषय की प्रस्तावना उपस्थित करते हुए मैंने बताया था कि विक्रमी संवत् की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (ईसाई सन् की सातवीं सदी के मध्य में) सम्राट् हर्ष की मृत्यु तक किन्हीं अनार्य जातियों की उपस्थिति की साक्षी नहीं मिलती; यदि कुछ अनार्य आये भी तो इन्हें बौद्ध संगठन की राख के ऊपर नये निर्माण होनेवाले हिन्दू समाज ने अपने अन्दर पचा लिया। परन्तु हर्ष की मृत्यु के बाद दूसरों को अपने मत में दीक्षित करनेवाली इस्लाम की उत्साही भावना के माध्यम से विदेशियों ने भारत पर स्थायी कब्जा करना प्रारम्भ कर दिया।

"विक्रमी संवत् की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिन्ध में एक परिवर्तन हुआ। साहसी नाम का शूद्र राजा सिंध पर उस समय राज्य करता था। काक नाम के एक ब्राह्मण मन्त्री ने उसके राज्य पर कब्जा कर लिया और अपने स्वामी की विधवा रानी से विवाह कर लिया। काक ने एक ओर इस्कानिया, बाबिया, मुलतान और कोदर के प्रदेश जीते तथा दूसरी ओर उसने मकरान को पार कर सिविस्तान को जीत लिया। काक एक धर्मान्ध हिन्दू था। उसने लोहाना के बौद्धों को सिर झुकाने के लिए विवश किया। लोहाना और जाट अपने को क्षत्रिय कहते थे, इसलिए उसने उनपर दूषित सामाजिक नियम लादने चाहे। "इस समय हिन्दुत्व शक्ति-सम्पन्न हो रहा था, इसलिए हिन्दू समाज ने प्रत्येक उप-जाति को उसकी परम्पराओं के अनुसार स्थिति को स्वीकृत करना प्रारम्भ कर दिया। लोहाना तथा जाटों—दोनों में ही विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा थी। कट्टर हिन्दू तथा ठोस क्षत्रिय इसके विरोधी तथा इसका पालन न करते थे, इसी कारण वे लोहानों को वैश्य तथा जाटों को शूद्र स्वीकार करते थे। इन दोनों जातियों में अब तक भी सैनिक प्रवृत्ति बची हुई है। एक ऐतिहासिक यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि हिन्दू कट्टरपन ने ताकत इकट्ठी कर कुछ जातियों की सैनिक प्रवृत्ति को ठण्डा कर दिया जिसके परिणामस्वरूप भविष्य के घटनाचक्र पर हानिकारक असर पड़ा।" (वैद्य, पृष्ठ १६५-१६६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम द्वारा जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन

सिन्ध सरलता से विदेशी हमलों का शिकार बन सकता था, इसलिए अरबी मुसलमानों ने इसे जीतने के कुछ असफल प्रयत्न किये। अन्त में, जब ईरान जीत लिया गया, उस समय सिन्ध पर हमला आसान हो गया। इसके लिए एक अच्छा बहाना भी मिल गया ! सिन्धु नदी का डेल्टा डाकुओं का अड्डा था। वे लंका के मुसलमान यात्रियों पर हमला करते थे, उनके कीमती खजानों को लूटकर पुरुष व स्त्री यात्रियों को कैद कर लेते थे। काक के लड़के, तत्कालीन सिन्ध के राजा दाहिर ने इनकी फरियाद सुनी, परन्तु डाकुओं के घृणित अपराध की जिम्मेदारी स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इसपर ईरान के हाजी शासक ने अपने दामाद मुहम्मद कासिम को सिन्ध के काफिरों से लड़ने को भेजा। हल्ले में देवल को ले लिया गया। अरबी मुसलमान ऐतिहासिक 'शाहनामा' के आधार पर इतिहास-लेखकों ने इस लड़ाई के परिणाम का वर्णन किया है। शहर के सम्पूर्ण पुरुष-नागरिकों को कत्ल कर दिया गया। जनता ने भयभीत होकर दया की प्रार्थना की, परन्तु मुहम्मद कासिम ने कहा कि उसे रहम करने की इजाजत नहीं है। जब मुहम्मद कासिम उस मन्दिर के पास पहुँचा जिसका कलश गिरा दिया गया था तो उसने वहाँ बुद्ध की शरण में प्राप्त ७०० सुन्दर स्त्रियों को पाया। इन्हें "उसने निश्चयपूर्वक गुलाम बना लिया।" सम्भवत: मन्दिर एक बौद्ध स्त्रियों का विहार था। देवल अधिकतर बौद्ध था। सूबेदार भी एक बौद्ध ही था, जिसे शाहनामा में जहीन बुद्ध नाम दिया गया है। कैद किये गए मुसलमान स्त्री-पुरुष कैदियों का पता देनेवाले आदमियों को मुहम्मद कासिम ने माफी दे दी। इन कैदियों को सौंप देने पर उन आदमियों को तथा कैद में उदारतापूर्वक व्यवहार करने पर उनके हिन्दू अफसर को प्राणभिक्षा दे दी गई। कैदियों के प्रति मुसलमानों के क्रूर व्यवहार तथा बौद्धों के उदार व्यवहार में अन्तर देखिये। उस हिन्दू अफसर को बाद में मुसलमान बनना पड़ा………।

"यह इसका भयंकर प्रारम्भ था, जिसके फलस्वरूप मुसलमानों द्वारा भारत-विजय हुई। देवल इसका पहला शिकार था। पुरुष-आबादी में से अधिकतर का कत्ले-आम कर दिया गया। शहर पूरी तरह से लूट लिया गया। इच्छा तथा अनिच्छा से बहुत-सी जनता को इस्लाम स्वीकार करना पड़ा और बहुत-सी सुन्दर स्त्रियों को लूट में ले-जाया गया।……नेरू दूसरा शहर था…बिना लड़े ही उसने घुटने टेक दिये…बौद्ध सूबेदार ने राजभक्ति की शपथ ली। इसने फौज को भी खूब खुश किया। परिणामस्वरूप नेरू को छोड़ दिया गया। (परन्तु) मुहम्मद कासिम ने शहर में प्रवेश किया, और मन्दिर के स्थान पर मस्जिद बनवाई और उस स्थान की शासन-व्यवस्था का इन्तजाम किया।" (वैद्य, पृष्ठ १७१-१७२)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब सिविस्तान पर हमला किया गया। यहाँ का शासक वत्सराज दाहिर का चचेरा भाई था। उसने लड़ने का इरादा किया, परन्तु बौद्ध नागरिक अपने बचाव के लिए विश्वासघाती बन गए और उन्होंने नगर के दरवाजे खोल दिये। वत्सराज किले का बचाव न कर सका और अपनी फौज के साथ भाग गया। मुहम्मद कासिम शहर में घुसा और समनी बौद्ध लोगों को छोड़कर सम्पूर्ण शहर को उसने लूट लिया।

इसी समय कुकुरमुत्ते की तरह गद्दार लोग उठ खड़े हुए, मोक वस्सय इनका मुखिया था। दाहिर और उसके लड़के बहादुरी से लड़े। अरबों ने इस बात को स्वीकार किया है कि युद्धक्षेत्र की इस आखिरी लड़ाई में वे खूब वीरतापूर्वक लड़े। मुकाबिला बड़ा भयंकर था, परन्तु अन्त में अरबों के श्रेष्ठ हथियारों ने विजय पायी। बहुत-सी लूट के सिवाय दाहिर की रानी, कई राजकुमारियों और दाहिर की भांजी के साथ हजारों स्त्रियों को गुलाम बना लिया गया। दाहिर की स्त्री लाड़ी को, जिसे मुहम्मद कादिर ने पैसा देकर छुड़ाया और फिर विवाह कर लिया, छोड़कर शेष सब स्त्रियाँ निःसन्देह खलीफा के पास भेज दी गयीं। दाहिर की दूसरी रानी बाई 'राओर' में ही रही और उसने कासिम का १५००० सिपाहियों से मुकाबिला किया। परन्तु यह अनुभव कर कि वे इन चाण्डालों और गोमांस खानेवालों के पंजों से नहीं बच सकतीं, उसने और दूसरी बहुत-सी राजपूत स्त्रियों ने एक घर में प्रवेश कर उसे आग लगा दी और जलकर भस्म हो गयीं।

"पहले समय में भी भारतीय आपस में ही लड़े थे और कभी-कभी विजित राजाओं की रानियों को अपना लिया था। परन्तु इन उदाहरणों में कभी जबर्दस्ती नहीं की गई। यदि वे विजेता की पत्नी या रखैल बनने से इन्कार कर देती थीं, तो उन्हें सेविकाओं के रूप में रहने दिया जाता था या उन्हें बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में या दूसरे ढंग से एकान्तवास करने दिया जाता था। परन्तु मुसलमान विजेताओं का मामला बिल्कुल दूसरा था। वे स्त्रियों को जबर्दस्ती व्याह लेते थे या उन्हें रखैल या गुलाम बना लेते थे अथवा उन्हें मुसलमान बनने के लिए बाधित करते थे।" राओर को जीत लिया गया और लूट लिया गया। लड़ाकू आदमियों का कत्लेआम कर दिया गया और औरतों को गुलाम बना लिया गया। शाहनामा में कहा गया है कि 'राजघराने की कई सुन्दर स्त्रियों सहित सब मिलाकर कुल ६०००० गुलाम थे।' लूट की न्याईं इन्हें भी सरकार और सिपाहियों के बीच बाँट लिया गया।" (वैद्य, पृष्ठ १८०-१८१)।

"ब्राह्मणवाद का भी उसी रीति से पतन हो गया। व्यापारियों तथा दूसरे न लड़नेवाली जनता ने अपने को मुहम्मद कासिम की दया पर छोड़कर फाटक खोल दिये। एकदम शहर पर अधिकार कर लिया गया। व्यापारियों पर रहम किया गया (कत्ल नहीं किया गया), और योद्धाओं को कत्ल कर दिया गया और शहर

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लूट लिया गया। स्त्री गुलामों पर कब्जा कर लिया गया। इनमें दाहिर की दो कुमारी लड़कियाँ भी थीं। इन्हें लूट के पाँचवें शाही हिस्से के साथ खलीफा के पास भेज दिया गया। (वैद्य, पृष्ठ १८२)

"दाहिर की इन कुमारी कन्याओं ने खलीफा को यह कहकर धोखा दिया कि मीर कासिम ने उन्हें अल्लाह के खलीफा के पास भेजने से पूर्व भ्रष्ट कर दिया है। कासिम को हुक्म दिया गया कि वह जहाँ भी हो अपने को कच्चे चमड़े में बन्द कर सीधा खलीफा के पास आ जाए।" मुहम्मद कासिम ने हुक्म को शब्दशः माना। जब ताजे चमड़े के अन्दर सिया हुआ उसका शरीर बगदाद पहुँचा और उसकी लाश बाहर निकाली गई, उस समय दाहिर की कुमारी कन्याओं ने समझ लिया कि उन्होंने बदला ले लिया।

सिन्ध में मुसलमान मजबूती से जम गए परन्तु इस्लाम-विजय की लहर और इसके परिणामस्वरूप होनेवाले अत्याचार ३०० वर्षों या इससे अधिक के लिए रुक गए।

भारत में इस लम्बी शान्ति के बाद सन् ९९७ ई० में अपने पिता की मृत्यु के बाद महमूद गजनी की राजगद्दी पर बैठा। उसने "अपनी सरहद के पूर्वी देशों की सम्पत्ति और वैभव के सम्बन्ध में बहुत-कुछ सुन रक्खा था। उसने खुदा से मनौती माँगी थी कि यदि उसके देश में शान्ति रही तो वह हिन्दुस्तान के मूर्ति-पूजकों के विरुद्ध जिहाद छेड़ देगा और मुल्क से मूर्तिपूजा को खत्म कर देगा और इसके स्थान पर सच्चे एक खुदा की उपासना प्रारम्भ करवा देगा......अगस्त सन् १००१ ई० में उसने गजनी से पेशावर के लिए कूच कर दिया ('लतीफ पंजाब', पृष्ठ ८०)। लाहौर के राजा जयपाल ने उसका मुकाबिला किया पर हार गया। उसके ५००० आदमी मारे गये तथा विजेताओं ने लाखों की लूट हासिल की।

महमूद अपने दूसरे आक्रमण में २८० हाथियों तथा दूसरे लूट के सामान के साथ बहुत-से गुलाम ले गया। यह घटना १००४ ई० में हुई।

सन् १००५ में महमूद फिर भारत लौटा और उसने मुल्तान जीत लिया। २०००० सुनहरी मुहरें भेंटस्वरूप हर वर्ष लेने का वायदा कर वह अपनी राजधानी को लौट गया।

सन् १००६ में महमूद ने चौथी बार भारत पर चढ़ाई की। हिन्दू से नौमुस्लिम बननेवाले सेवकपाल, जिसने बगावत खड़ी की थी, को जिन्दगीभर कैद तथा ४ लाख मोहरें दण्डस्वरूप वसूल करके वह राज्य को लौट गया।

सन् १००८ में छठा हमला हुआ। पेशावर के दर्रे पर हिन्दुओं की एक संयुक्त सेना इकट्ठी हुई, जिसके साथ पंजाब की पहाड़ी जाति के ३००००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कक्कड़[1] भी मिल गए। कक्कड़ों ने पहले तो मुसलमानी फौज को हरा दिया और ५००० को मार डाला; परन्तु मुसलमान फिर इकट्ठे हुए और उन्होंने हिन्दू फौज को शिकस्त देकर बहुत बड़ी संख्या को कत्ल कर डाला।

इस बार पहली बार महमूद में भारत में इस्लाम के प्रचार का मजहबी जोश भड़का। वह नगरकोट (वर्तमान कांगड़ा) के पवित्र शहर की ओर चढ़ दौड़ा और उसने हिन्दू मूर्तियों को तोड़ डाला और उनके मन्दिरों को जमीन से मिला दिया।"

सन् १०१३ ई० की सातवीं चढ़ाई में महमूद ने "काश्मीर की सारी दौलत लूट ली और वहाँ के बाशिन्दों को पैगम्बर के मजहब को मानने के लिए मजबूर किया और बड़ी लूट के साथ अपनी राजधानी को लौट गया।"

"दो साल बाद उसने आठवीं बार भारत पर चढ़ाई की, परन्तु काश्मीर के विरुद्ध अपने धावे में वह असफल रहा।

सन् १०१७ की वसन्त ऋतु में महमूद ने भारत पर नौवीं बार चढ़ाई की। कन्नौज के राजा ने शान्ति के लिए प्रार्थना की। हरदत्त ने घुटने टेक दिये। महवान को नष्ट कर दिया; इस स्थान के राजा ने अपनी रानी, बच्चे तथा अपनी हत्या कर डाली थी। इसके बाद महमूद ने कृष्णार्पण हुए मथुरा के धनी शहर की ओर कूच किया। थोड़े-से विरोध का मुकाबिला कर उसने शहर को लूट-मार के लिए छोड़ दिया। सब मूर्तियाँ तोड़ डाली गईं, अधिकांश मन्दिर नष्ट कर दिये गए और सोने-चाँदी की अपार राशि लूट में चली गई। महमूद कन्नौज में २० दिन तक ठहरा। इस सारे समय में शहर आग और लूट का शिकार बना रहा।" लूट से लदा हुआ तथा अधिकृत वस्तुओं के भार के साथ वह गजनी लौट गया।

१०२१ ई० में ११वीं चढ़ाई में लाहौर का शहर लूट लिया गया और महमूद ने इसका नाम लाहौर से बदलकर महमूदपुर कर दिया।

१०२३ में ११वीं चढ़ाई के परिणामस्वरूप कुछ और राजाओं ने पराजय स्वीकार की। अगले साल महमूद भारत में बारहवीं बार आया और सोमनाथ के मन्दिर को लूटने की प्रतिज्ञा की। हिन्दू इस मन्दिर का बहुत आदर करते थे। रास्ते में महमूद ने अजमेर लूटा और दूसरे किलों को जीतता हुआ तेजी से सोमनाथ पहुँच गया। "किले के राजपूत बड़ी मजबूती से रक्षा कर रहे थे। तीन दिन तक लगातार मुसलमानों के हमलों को भारी हानि के साथ बेकार कर दिया गया। अन्त में महमूद अपने घोड़े से कूद पड़ा और जमीन पर दण्डवत् पड़ गया और खुदा से मदद की दुआ की। घोड़े पर सवार होकर.........उसने अपने सिपाहियों को इतने जोश से उत्साहित किया कि उन्होंने किले पर हल्ला बोलकर कब्जा कर लिया और रक्षक सेना के ५००० आदमियों को अपने पैरों

---

१. गक्खड़ (सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तले मरा छोड़ दिया।" जो अपनी जान बचाने के लिए नौकाओं में चढ़ गए उन्हें डुबो दिया गया। मन्दिर में घुसने पर महमूद की नजर मूर्ति की नाक पर गई। इसपर उसने हुक्म दिया कि मूर्ति के दो टुकड़े कर गजनी ले-जाये जायँ। एक टुकड़े को बड़ी मस्जिद की देहली पर डाल दिया जाये और दूसरे को उसके महल के बाहरी दरवाजे पर। साथ ही दो टुकड़े मक्का और मदीना भेजे जायँ।" मूर्ति को टुकड़ों में विभक्त कर दिया गया, लूट के दूसरे सामान के साथ करोड़ों रुपये के कीमती पत्थर ले-जाये गए।

सन् १०२७ में महमूद का तेरहवाँ तथा आखिरी हमला सिन्धु की जाट जातियों के विरुद्ध हुआ। इन्हें हरा दिया गया।

महमूद गजनवी के इतिहास को देखने से मालूम पड़ता है कि उसके हमले जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन करने की अपेक्षा लूट के उद्देश्य से अधिक हुए थे। तो भी हजारों स्त्री-पुरुष कैदियों के रूप में, जिन्हें गुलाम बनाकर ले-जाया गया, हिन्दू समाज को एक स्थायी नुक्सान उठाना पड़ा तथा गिनती में स्वाभाविक बढ़ती में एक भावी बाधा का कारण उत्पन्न कर दिया।

यदि हम मूल मुसलमान ऐतिहासिकों की साक्षी लें तो हमारे पास पर्याप्त सामग्री हो जाएगी जिसके आधार पर हिन्दुओं के इस्लामी धर्म-परिवर्तन में ताकत का मुख्य हिस्सा रहा है—यह सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु इन्हें और इनके अंग्रेजी अनुवादों को एक ओर छोड़कर मैं डॉक्टर पी० डब्ल्यू० आरनोल्ड के ग्रन्थ "इस्लाम की शिक्षा" के उद्धरणों से ही सन्तुष्ट रह जाऊँगा, क्योंकि यह सज्जन मुसलमानी मजहब के प्रति अपने पक्षपात के लिए सुप्रसिद्ध हैं।

आप इस स्थापना से प्रारम्भ करते हैं कि "६ करोड़ ६० लाख भारतीय मुसलमानों में मुसलमानी मजहब को स्वीकार करनेवाले या उनके वंशजों की ही बड़ी संख्या है, जिनके धर्म-परिवर्तन में बलप्रयोग का कोई हिस्सा नहीं है और वे केवलमात्र शान्त प्रचारकों की शिक्षाओं और प्रेरणाओं से ही मुसलमान बने हैं।" परन्तु उपर्युक्त स्थापना के लिए एक अकल्पित क्षमायाचना के बाद उसे अनिच्छापूर्वक यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि आक्रान्ताओं में जिनके साथ कोई प्रचारक या उपदेशक नहीं था, "बहुत-से ऐसे थे जिन्हें हिन्दुस्तान पर आक्रमण जिहाद—धर्मयुद्ध की रोशनी में दीख पड़ता था। महमूद गजनवी और तैमूर के दिलों में ऐसे ही खयाल चक्कर काट रहे थे। दिल्ली-विजय के बाद तैमूर ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा था—'मुझे दिल्ली में पन्द्रह दिन हो गए हैं। मैंने यह समय आनन्द एवं भोगविलास में, शाही दरबार बुलाने तथा बड़ी दावतों को देने में बिताया है। इसके बाद मुझे अनुभव हुआ कि मैं तो काफिरों के विरुद्ध लड़ाई करने आया हूँ। मेरा उद्देश्य इतना अच्छा है कि जहाँ कहीं भी गया हूँ विजयी हो रहा हूँ। विरोधियों के प्रति मैंने जीत हासिल की है। कुछ लाख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफिरों और बुतपरस्तों को मैं मौत के घाट उतार चुका हूँ और मैंने ईमान के दुश्मनों के खून से अपनी तलवार को रंग दिया है। अब जब कि यह शानदार जीत हो गई है तो मैं अनुभव करता हूँ कि मुझे आराम से समय बर्बाद नहीं करना चाहिए था अपितु हिन्दुस्तान के काफिरों के विरुद्ध जिहाद में अपने को लगा देना था।' (पृष्ठ २५६)

आगे वह फिर कहता है—

"यह सच है कि काफिर हिन्दुओं पर हमला करने से पूर्व इस्लाम स्वीकार करने का न्यौता दिया जाता है। ऐसी माँग को ठीक समय पर मान लेने में कई बार भय का भी हिस्सा होता था, इन धमकियों से हुआ धर्म-परिवर्तन मुसलमानी आक्रमण के प्रारम्भिक दिनों में क्षणिक होते थे………" (वही) बुलन्दशहर के हरदत्तराय के विरुद्ध लड़ाई का उल्लेख करता हुआ महमूद का मुहर्रिर लिखता है—"अन्त में महमूद बावला (बुलन्दशहर का पुराना नाम) के किले पर पहुँच गया। इस इलाके का राजा हरदत्त था। जब हरदत्त ने अल्लाह के सुरक्षित सूरमाओं की चढ़ाई का हाल सुना, कि वे सागर की लहरों की न्याईं बढ़े चलते थे, उनके सब ओर फरिश्ते हैं तो वह अत्यन्त उत्तेजित हो गया, उसके पैर काँप गए और वह अपनी जिन्दगी के लिए व्याकुल हो गया जो कि खुदा के कानून के अनुसार गँवायी जा चुकी थी। इसलिए उसने निश्चय किया कि उसकी सुरक्षा इस्लामी मजहब को मानकर ही हो सकती है, क्योंकि खुदा की तलवार म्यान से खींच ली गई है और सजा का कोड़ा तान लिया गया है। इसलिए वह दस हजार आदमियों के साथ आया। सबने धर्म-परिवर्तन के लिए अपनी बेचैनी का तथा मूर्तिपूजा छोड़ने का ऐलान किया।" (पृष्ठ २५७)

यदि इसे जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन नहीं कह सकते तो इस्लाम में बलात् धर्म-परिवर्तन को ढूँढना व्यर्थ है। आरनल्ड की पुस्तक से अब मैं कुछ उद्धरण और दूँगा, जिससे उनकी कहानी अपने-आप मालूम पड़ जायगी।

(१) "उत्तरी पंजाब के पहाड़ी जिलों की जंगली जाति कक्कड़ों[1] ने प्रारम्भिक आक्रान्ताओं को बहुत तंग किया था। इन्हें १२वीं शताब्दी में मुहम्मद गोरी के दबदबे से धर्म-परिवर्तन करना पड़ा।" (पृष्ठ २५८)

(२) "इब्नबतूता के अनुसार खिलजी ने यह प्रथा जारी कर इस्लाम स्वीकार करनेवालों को बढ़ावा दिया था कि प्रत्येक नौमुस्लिम को सुल्तान की खिदमत में पेश किया जाये, जिसे वह उसके ओहदे के अनुसार सुनहरा बाजूबन्द, तावीज तथा इज्जत लायक पोशाक पहनाता था………फिरोजशाह तुगलक अपनी आत्मकथा में लिखता है—"मैंने अपनी काफिर प्रजाओं को बढ़ावा दिया कि वे

१. गक्खड़ (सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैगम्बर के मजहब को मान लें और मैंने ऐलान कर दिया कि जो कोई खुतबा दोहरा देगा, उसे जजिया या जन-कर से छुटकारा मिल जायेगा। जनता को जब इसकी खबर मिली, तो हिन्दू बड़ी संख्या में वहाँ पहुँचे और इस्लाम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वे दिन-प्रतिदिन सब जगहों से आने लगे और इस्लाम मानने लगे। परिणामस्वरूप जजिया से मुक्त किये जाने लगे और खिलअत तथा इज्जत से अनुगृहीत किये जाने लगे।" (पृष्ठ २५०) कुछ मुख्य मुसलमानी रियासतों में दूसरे धर्मों से मुसलमान बनाने की यह रीति अब भी प्रचलित है।

(३) कहा जाता है कि औरंगजेब की हुकूमत के सिवाय हिन्दुओं के ऊपर निरन्तर सरकारी दबाव कभी नहीं पड़ा। पंजाब के पूर्वी जिलों में बहुत-सी जातियाँ इस प्रकार की हैं जिनमें गाँव की मुसलमान बिरादरी का कोई पुराना "गाँव की जमीन को बचाने के लिए" मुसलमान हो गया था। दिल्ली के पास गुड़गाँव में एक हिन्दू बनियों का परिवार है, जिनके नाम के साथ शेख उपनाम लगाया जाता है (जो कि मुसलमान बने हुए हिन्दू अपने नाम के साथ लगाया करते हैं)। इस परिवार का एक सदस्य जिसकी सन्तान-परम्परा अब नहीं बची है, परिवार-सम्पत्ति को जप्ती से बचाने के लिए मुसलमान बन गया था। इसी कारण से कानपुर के बहुत-से राजपूत जमींदारों को मुसलमान बनना पड़ा था। (मुसलमानों में दीक्षित परिवार इसका एक उदाहरण है और दूसरे वे उदाहरण हैं कि जो औरंगजेब के समय में गैरमुस्लिम काश्तकार मुस्लिम अत्याचार से या कभी-कभी लगान दे सकने में असमर्थ होने पर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए धर्म को बदल लेते थे।) दूसरे उदाहरणों में कोई पूर्वज कैदी या बन्धक के रूप में दिल्ली ले-जाया गया था और वहाँ जबर्दस्ती खतना करवाकर मुसलमान बना दिया गया था··· बिना किसी सन्देह के यह सिद्ध किया जा चुका है कि मुसलमान शासकों ने जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन किये हैं और यह सम्भव मालूम पड़ता है कि औरंगजेब की अपने मजहब के प्रति धर्मान्धता ने उत्तरी भारत के बहुत-से परिवारों को धर्म बदलने के लिए विवश किया हो। यही कारण बहुत सम्भव प्रतीत होता है। इसी तरह से दक्षिण में औरंगजेब तथा हैदरअली और टीपू सुल्तान ने अनेक परिवारों तथा आबादी के एक हिस्से को मुसलमान बनाने में नामवरी हासिल की है।" (पृष्ठ १६० और १६१)

(४) टीपू सुल्तान ने ऐलान कर दिया था कि यदि दक्षिण के हिन्दू बहुपतित्व को बन्द न कर देंगे तो वह उनके विरुद्ध चढ़ दौड़ेगा। इससे मलाबार में विद्रोह का झण्डा खड़ा हो गया और टीपू २०००० से अधिक की फौज लेकर चल पड़ा और उसने यह सामान्य आज्ञा निकाल दी—"बिना किसी भेदभाव के जिले के प्रत्येक प्राणी को मुसलमान बना लिया जाय और जो कोई भागने का प्रयत्न करे, उसके घर में आग लगा दी जाय और उनके छिपने के स्थानों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका पता लगाया जाय और सबको मुसलमान बनाने के लिए सच्चे-झूठे, ताकत तथा छल-कपट के सब उपायों को काम में लाया जाय।" परिणामस्वरूप हजारों हिन्दुओं का खतना कर दिया गया और गोमांस खाने के लिए विवश किया गया।

(पृष्ठ २६२)

(५) एक हिन्दू जाति बिश्नोइयों में अभी कुछ समय पूर्व तक कुछ रीति-रिवाजों में निष्फल एवं झूठे धर्म-परिवर्तन के कुछ विचित्र अवशेष पाये जाते थे। इन्होंने विष्णु के अतिरिक्त दूसरे देवी-देवताओं को मानना छोड़ दिया था। वे अभी हाल तक अपने मुर्दों को जलाने के स्थान पर भूमि में गाड़ते थे। ये अपने नाम गुलाम मोहम्मद या ऐसे ही दूसरे मुसलमानी नाम रखते थे और मुसलमानी ढंग से ही सलाम आदि करते थे। इन मुसलमानी रीतिरिवाजों को अपनाने में इन्होंने कारण बताते हुए कहा कि एक बार एक विधवा के सती होने में एक काजी के हस्तक्षेप करने पर उसे मार डाला गया था। इस अपराध के दण्ड से छूटने के लिए इन्हें मुसलमान बनना पड़ा। इन्होंने अब इन रीतिरिवाजों के स्थान पर हिन्दू सामाजिक प्रथाओं का अवलम्बन करना शुरू कर दिया।

(पृष्ठ २६२-२६३)

बिजनौर तथा आसपास के जिलों में ये बिश्नोई रहते थे और आर्य प्रचारकों ने उन्हें उनके प्राचीन धर्म में प्रवेश करवाया है।

(६) हिन्दुओं के इस्लाम-प्रवेश में बहुत बार स्वार्थ भी मूल कारण रहा है—"इस रीति से बहुत-से राजपूत मुसलमान बन गये और उनके उत्तराधिकारी आज भी जमींदार सम्भ्रान्त समाज में पाये जाते हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण बछगोती परिवार की मुसलमानी शाखा है, जिसका मुखिया अवध का एक प्रमुख मुसलमान नवाब है। एक किम्वदन्ती के अनुसार इनके एक पूर्वज तिलोकचन्द को बादशाह बाबर ने कैद कर लिया था, और छुटकारा पाने के लिए इसने इस्लाम स्वीकार कर लिया। एक दूसरी कहानी के अनुसार इसका धर्म-परिवर्तन हुमायूँ के शासनकाल में हुआ। इस बादशाह ने तिलोकचन्द की स्त्री की अद्भुत सुन्दरता के बारे में सुन रक्खा था। एक बार जब उसकी स्त्री एक मेले पर गई हुई थी तो उसे उठा ले-जाया गया। अन्त में उसे छोड़ दिया गया, इस उपकारस्वरूप तिलोकचन्द और उसकी पत्नी ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। दूसरी कहानी देखते ही असत्य मालूम पड़ती है।

"बुलन्दशहर जिले में लालखानी पठान नाम का एक बड़ा मुस्लिम कुनबा है। यह अभी तक पुराने हिन्दू उपनामों और परिवार के विवाह-सम्बन्धी रीति-रिवाजों का पालन करता है। इस परिवार की हिन्दू शाखाएँ भी इसके पास ही फल-फूल रही हैं। मिर्जापुर जिले के गहरवार राजपूत जो कि अब मुसलमान हैं, सब घरू मामलों में हिन्दू कानून और रीतिरिवाजों का पालन करते हैं तथा अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमानी नामों के साथ आदरसूचक हिन्दू उपनाम लगाते हैं।" (पृष्ठ २६०)

उपर्युक्त तथ्य एक यूरोपियन लेखक से लिये गए हैं जो भारत के मुसलमानों के प्रति अपने पक्षपात में मूल मुसलमान ऐतिहासिकों को भी मात दे देता है। परन्तु यदि हम मुस्लिम भारत के सर्वसम्मत विश्वस्त ऐतिहासिक फरिश्ता पर विश्वास करें तो बाबर और उसके मुगल उत्तराधिकारियों के पहले आनेवाले मुसलमान बादशाह मजहबी कट्टरपन और धर्मान्धता में बहुत बुरी बातों पर भरोसा करना पड़ेगा। कुछ उदाहरण यहाँ पर असंगत न होंगे—

(७) सन् १२३१ ई० में शम्सुद्दीन अल्तमश ने भिलसा के हिन्दू किले को जीता और महाकाली को समर्पित एक भव्य मन्दिर को नष्ट कर डाला। मन्दिर को प्रतिष्ठित करनेवाली विक्रमादित्य और महाकाली की मूर्तियाँ दिल्ली ले जायी गईं और बड़ी मस्जिद के "दरवाजे पर तोड़ दी गईं।" (पृष्ठ २३४, जॉन ब्राइट द्वारा अनूदित)

(८) "गयासुद्दीन बल्बन ने यह नियम बना लिया था कि किसी भरोसे और ताकत की जगह पर किसी हिन्दू को नियुक्त न किया जाय, कहीं वे अपने प्राप्त अधिकारों को मुसलमानों के विनाश में काम में न लायें।"

इस सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए क्योंकि अंग्रेज हिन्दुस्तानियों —हिन्दुओं और मुसलमानों से समान अविश्वास से व्यवहार करते हैं।

(९) अलाउद्दीन खिलजी ने अपने काजी से पूछा था—"हिन्दुओं के किस वर्णन से आज्ञापालन और कर देना कानून-सम्मत है?"

इसका जवाब था—"सब काफिरों से राजभक्ति और कर-प्राप्ति कानून-सम्मत है और उन्हें ही राजभक्त समझा जा सकता है जो जजिया तथा खिराज बिना किसी प्रकार की हिचक के दें। यदि हो सके तो इसे ताकत से भी प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि पैगम्बर के एक कानून के अनुसार काफिरों के लिए लिखा गया है—'वे जिस हद तक दे सकें उतना महसूल लगा दिया जाय या उन्हें बिल्कुल नष्ट कर दिया जाय।' पैगम्बर ने इस्लाम के अनुयायियों को हुक्म दिया है 'उन्हें कत्ल कर दो या उन्हें ईमान में ले आओ!' पैगम्बर के शब्दों में अधिकतम (सजा) रक्खी गई है। तो भी परिणामस्वरूप इमाम हनीफ का विचार है कि जितना अधिक बर्दाश्त कर सकें उतना जजिया तथा खिराज लगा देना चाहिए और इसके पूरा न होने पर मौत की सजा दे देनी चाहिए और इसके अनुसार उसने मना कर दिया कि उनका खून व्यर्थ ही न बहाया जाय। इसलिए यह आज्ञा दे दी गई कि उनसे अन्तिम दमड़ी तक जजिया और खिराज वसूल किये जाने चाहिएँ और सजा लगभग मौत होनी चाहिए।" बादशाह मुस्कराया और बोला— "......तुम अनुभव कर सकते हो कि विद्वत्तापूर्ण किताबें पढ़े बिना ही पैगम्बर की आज्ञाओं को अपने-आप ही क्रियारूप में परिणत करने का अभ्यासी हो गया हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास साक्षी है कि किस प्रकार पैगम्बर द्वारा लिखे गए कानून का खिलजी बादशाह ने अपने खूनी सिपहसालार मलिक काफूर द्वारा प्रति-अक्षर पालन करवाया।

(१०) फिरोज तुगलक ने नगरकोट पर हमला करते हुए मूर्तियाँ तोड़ डालीं और उनके टुकड़ों को गोमांस के लोथड़ों से मिलवाकर बोरों में भर ब्राह्मणों के गलों में बँधवा दिया गया, फिर उनका सारी छावनी में चक्कर लगवाया गया। इस रीति से वे इस्लाम के सन्देश से पवित्र किये गए।

(११) निष्ठुरता तथा हिंसा के कई कार्यों के लिए सिकन्दर लोदी का शासन स्मरणीय रहेगा। एक ब्राह्मण को सुल्तान-सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया गया क्योंकि उसने कहा था कि "यदि सचाई से अमल किया जाय तो मुसलमानों और हिन्दुओं के धर्म समानरूप से परमात्मा को स्वीकार्य हैं।" सुल्तान ने ब्राह्मण को काजी पियोला और शेख बदर के सामने विचार के लिए पेश किया। कौन-सा फतवा उद्घोषित किया जाय, इस बारे में दोनों का मतभेद रहा। अन्त में बारह मुल्ला इकट्ठे हुए जिन्होंने ब्राह्मण से बहस की। ब्राह्मण को समझा सकने या चुप करने में असमर्थ हो विद्वान् मुसलमान मुल्लाओं ने फतवा दिया कि यदि काफिर अपनी गलती न मान ले और मुसलमानी धर्म स्वीकार न कर ले तो उसे मौत की सजा भुगतनी पड़ेगी। धर्म छोड़ना स्वीकार न करने पर हिन्दू को फाँसी दे दी गई।

सन् १५०४ ई० में मुन्दरिल पर कब्जा करके सिकन्दर लोदी ने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट कर डाला और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवायीं।

१५०६ ई० में सिकन्दर ने हनवन्तनगर जीत लिया, राज की छावनी नष्ट कर डाली और हिन्दू मन्दिरों को ढवाकर उनकी जगह मस्जिदें बनवाईं। सन् १५०६ में वह नरवार में छः मास तक मन्दिर तुड़वाता और मस्जिदें बनवाता रहा। सिकन्दर लोदी के बारे में फरिश्ता लिखता है—"मुसलमानी मजहब में वह गहरा विश्वास रखता है और उसने सब मन्दिरों को तुड़वाने का पक्का इरादा कर लिया है। मथुरा शहर में नहाने की पौड़ियों के सामने, जहाँ से नदी का रास्ता जाता था, मस्जिदें और बाजार बनवाया और हुक्म दिया कि कोई हिन्दू वहाँ नहा नहीं सकता। शहर-निवासियों की दाढ़ी और सिरों के बालों को काटने की नाइयों को मुमानियत कर दी गई जिससे वे ऐसी तीर्थयात्रा में अपनी विधियों को पूरा न सकें। गद्दी पर बैठने से पहले एक बार उसकी एक सन्त पुरुष से तकरार हो गयी जिसने कहा था कि शासक को यह शोभा नहीं देता कि वह प्रजा को उसके धर्म के पालन से रोके तथा युगों से जिन स्थानों पर आकर वे नहाने के अभ्यासी हो गये हैं, वहाँ उन्हें नहाने से रोका जाय। शाहजादे (सिकन्दर) ने म्यान से तलवार निकाल ली और कहा—"क्या तुम हिन्दू मजहब को दुरुस्त ठहराते हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी देर के लिए मैं यहाँ पर रुककर पाठक से कहना चाहता हूँ कि वह भारत में मुसलमान बादशाहों की क्रूर कट्टरता द्वारा हिन्दू धर्म के प्रति किये गए नुकसान की गहराई को अनुभव करें। इसपर भी क्या कोई आश्चर्य है कि लाखों और लाखों हिन्दू इस्लाम में जबर्दस्ती ले लिये गये और उनके उत्तराधिकारी करोड़ों की गिनती में पहुँच गए!

ईसाइयत द्वारा जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन

भारत में सर्वप्रथम आनेवाले ईसाई पादरी, जिन्होंने पूरे जोश से ईसाई बनाना शुरू किया—जेस्युइट लोग थे। यूरोपियनों में पुर्तगाली या ओलन्देज लोग ही सर्वप्रथम थे जो वास्को-द-गामा के पथ-प्रदर्शन में दक्षिणी भारत में उतरे थे और सारे मलाबार-तट पर अधिकार कर लिया था। ईसाइयत को माननेवाले कुछ आदमी उसे मिले परन्तु उनकी ईसाइयत में इतनी अधिक बुतपरस्ती मिली हुई थी कि उस समय का ईसाई शासक काँप गया और उसने फ्रेंसिस्कन पादरियों को भेजा जिससे उसकी मूर्तिपूजक प्रजा में सच्चे धर्म का फैलाव हो सके। 'जेस्युइट्स, एक पूरा इतिहास' शीर्षक के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में जर्मन राजनैतिक पत्रकार थियोडोर ग्रिसिगर ने भारत में रोमन कैथोलिक ईसाई पादरियों के सम्बन्ध में एक स्पष्ट वर्णन किया है। इस सहजगम्य ऐतिहासिक ग्रन्थ का जर्मन भाषा से अंग्रेजी में अनुवाद श्री ए० जे० स्मिथ, एम० डी० ने किया है। पुस्तक का प्रकाशन इण्डिया आफिस, लन्दन के प्रकाशक डब्ल्यू० ऐच० ऐलन एण्ड कम्पनी ने सन् १८९२ में किया है। इसी पुस्तक से मैं बहुत-से उदाहरण दूंगा—

"इस तरह के काम के लिए फ्रेन्सिस्कन्स बहुत असफल सिद्ध हुए। मालूम हुआ कि धर्म-परिवर्तन या 'मूर्तिपूजकों के प्रति कार्य' करना उनके बस की बात नहीं, यद्यपि गवर्नर-वायसराय अल्फान्सो अल्बुकर्क ने फौजी ताकत की सारी संगीनें उनकी मर्जी पर छोड़ दी थीं......भारतीय वैसे-के-वैसे ही रहे और अपने देवताओं की अपने पिताओं तथा पूर्वजों की रीति से पूजा करते रहे। यद्यपि कुछ थोड़े-से फौजी दबाव से पोप के अनुयायी बन गए थे, परन्तु जनता का अधिकतर हिस्सा ब्रह्मा और विष्णु की उपासना में ही लगा रहा!" (पृष्ठ ८६)

यह हालत देर तक नहीं सही जा सकती थी और पुर्तगाल के जॉन तृतीय जो १५२१ से १५५७ तक राज्य करता रहा इससे बेचैन हो गया और सोचा "उसके नये प्राप्त किये हुए प्रदेशों के निवासी सच्चे पुर्तगाली प्रजाजन नहीं बन सकते, जब तक वे उसी क्रॉस के सम्मुख दण्डवत् न लेटें, जिसके आगे पुर्तगाली घुटने टेकते हैं।" इस काम के लिए फ्रान्सिस क्षेवियर[1] सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति था क्योंकि

१. ज़ेवियर (सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें धर्म-परिवर्तन का जोश दूसरे सब विचारों को जीत लेता था। वह भारत में आया, उसके साथ पोप की आज्ञायें भी आईं जिनसे उसे सम्पूर्ण भारत में रोम के पोप के प्रतिनिधि की स्थिति मिल गयी तथा एशियाई देशों में पुर्तगाली अफसरों के ऊपर सम्पूर्ण व्यावहारिक प्रभाव डालने का अधिकार मिल गया। अन्त में एक तीसरे फरमान द्वारा बादशाह जॉन तृतीय ने आशा अन्तरीप से गंगा तक के सब बादशाहों, राजाओं और सरकारों से उसकी विशेष सिफारिश की थी।"

फ्रान्सिस क्षेवियर ६ मई १५४२ को गोआ में उतरा ······यद्यपि शाही साजो-सामान तथा राजकीय भवन उसकी इच्छा पर शहर के गवर्नर ने छोड़ दिये थे परन्तु उसका खयाल सबसे पहले स्वयं हस्पताल पहुँचने का हुआ, जिससे कि वह स्वयं बीमारों की देखभाल कर सके और उसकी अपनी देख-रेख लायक साधन जनता के दान से एकत्र हो सकें। 'कुछ या बिल्कुल नहीं' जो कुछ भी इस ढंग से किया जाय यही उसका असली उद्देश्य था और इसलिए क्षेवियर ने उस स्थान के पादरी की मदद चाही। परन्तु एक दूसरी दिक्कत सामने आ खड़ी हुई। "क्षेवियर ने उनसे क्या कहा—इसका एक शब्द भी मूर्ख बाशिन्दे समझ नहीं पाये और इजराइल ने उसे किसी प्रकार वाणी की सहायता नहीं पहुँचाई।" (पृष्ठ ८८)

इसपर क्षेवियर ने हिन्दुस्तानी पढ़नी शुरू की। साथ-ही-साथ होली पाल का कॉलेज स्थापित किया और······वायसराय की फौजों की सहायता से उसने गोआ के पास के मूर्तिपूजकों के मन्दिरों को उखड़वा डाला और उनकी बहुत-सी सम्पत्ति को नये कॉलेज के उपयोग और लाभ में लगा दिया।" (पृष्ठ ८९)

इसके बाद क्षेवियर सम्पूर्ण मलाबार में प्रचार-यात्रा पर चल दिया। उसने अपने साथ एक घण्टा ले लिया जिसके साथ सुसज्जित होकर वह दिन-दहाड़े उसे बजाता हुआ गलियों में भागता था जब तक उत्सुकता से प्रेरित होकर बच्चों तथा दूसरों की टोली ठट्ठा तथा हँसी करती हुई उसके पीछे न लग जाती थी। जब उसे इस प्रकार काफी गिनती में श्रोता मिल जाते थे तो वह एक बड़े पत्थर पर खड़ा होकर लेटिन, स्पेनिश, इटालियन और फ्रेंच भाषाओं के टुकड़ों से मिली हुई देश की भाषा में दोनों हाथों तथा पैरों को विचित्र ढंग से हिलाता हुआ उपदेश देता था। आखिर में वह एक बड़ा क्रॉस निकालता था जिसे वह बड़ी भक्ति से चूमता था और भीड़ से यही करने की प्रेरणा करता था। जो कोई यह कर लेता था उसे वह एक सुन्दर गुलाब का फूल भेंट में देता था। वह हजारों गुलाब के फूल पुर्तगाल से लाया था। यह उसके तरीके का पूर्वार्ध ही था। उत्तरार्ध अधिक प्रभावक था। वह सरकार से माँगी हुई पुर्तगाली फौज की मदद से देसी लोगों के मन्दिरों को तुड़वा डालता था और उनके स्थान पर सूली पर चढ़े ईसामसीह की मूर्ति के साथ ईसाई गिरजों को बनवा देता था और उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ोस में बाँसों की एक सुन्दर इमारत बच्चों की शिक्षा के लिए बनवा दी जाती थी।......उन्हें ईसाइयत के सिद्धान्तों से परिचित कराने के स्थान पर वह उन्हें प्रभु की प्रार्थना मन्तव्य के साथ पढ़ाता था और उन्हें समझाने की कोशिश करता था। अन्त में विनयपूर्वक उनकी बाहों से क्रॉस छुआता था।"

(पृष्ठ ८९ और ९०)

इन्हें बप्तिस्मा लिये हुए मान लिया गया, परन्तु यह सिलसिला बहुत धीमे चला। क्षेवियर ने अपने गुरु जेस्युइटवाद के संस्थापक इगनातिन लियोला से और अधिक सहायक मंगाये। २० से अधिक सहायक भेजे गये और अब क्षेवियर के लिए इकट्ठे ईसाई बनाने का काम सहल हो गया। अगले छ: सालों में जिन-जिन स्थानों में पुर्तगाली झण्डे की हुकूमत थी, वहाँ छोटा या बड़ा स्कूल कायम हो गया। धर्म-परिवर्तन का मुख्य अखाड़ा गोआ का कॉलेज रहा, जहाँ यूरोप से सहायकों के आने पर क्षेवियर ने फौजी ताकत से हिन्दू सभ्य समाज के १२० लड़के इकट्ठे कर लिये जिससे कि वे भविष्य में अपने देशवासियों को ईसाई बना सकें। पुर्तगाली संगीनों ने तथा उनसे भी अधिक इनके भय ने इस दिशा में बहुत परिणाम दिखलाये।" (पृष्ठ ९१)

इस तरीके से जो ईसाई बनते थे "वे मन्तव्य को दोहरा सकते थे...मामले के सम्बन्ध में कुछ जानकारी सीख सकते थे जिससे वे जुलूसों में भाग लेते थे और दूसरे बाहरी समारोहों में हिस्सा ले सकते थे..." परन्तु जब ईसाई पादरी उस जगह से विदा हो जाते थे तो ब्राह्मणों को उन आदमियों के पुराने धर्म में जिसमें वे पाले और पोसे गये थे लेने में कोई दिक्कत नहीं होती थी। यह वास्तव में उनको बेचैन करने योग्य उन्माद रोग था। क्षेवियर का एक साथी ऑटोन क्रिमिनल, जिसने कन्याकुमारी में ईसाई बनाये थे, इसपर ब्राह्मणों के विरुद्ध बहुत क्रुद्ध हो उठा कि उसने उनपर बहुत ही पाशविक अत्याचार किये। इसपर हताश होकर इन अपराधी और गोआ के गवर्नर से प्राप्त कुछ सिपाहियों के विरुद्ध उन्होंने मदद की पुकार मचायी...यह जनता के उस श्रेणी के आदमी थे जो अल्पमतवाले पुर्तगालियों की अधीनता में नहीं आए थे। परिणामत: एक लड़ाई हुई जिसमें वे अपराधी सब पुर्तगालियों के साथ मार डाले गए। इसी समय लंका में काण्डी के राजा को अपनी बाहों में क्रॉस लेकर क्षेवियर की आज्ञा से जबर्दस्ती हथियारों के दबाव से ईसाई होने के लिए बप्तिस्मा लेना पड़ा। उसके सरदारों और सूबेदारों को आदेश दिया गया था कि यदि वे बप्तिस्मे की कार्यवाही में अड़चन डालेंगे तो उनकी सम्पत्ति जप्त कर ली जाएगी। ईसाइयत में हजारों को इस तरीके से प्रतिदिन ले लेना बड़ा आसान था।" (पृष्ठ ९१)

"इसके बाद कुछ समय तक कोई पादरी अपनी कारस्तानी दिखाने नहीं आया। ब्राह्मणों ने कड़े मुकाबिले से अपनी स्थिति मजबूत नहीं की, अपितु बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुरा असर हुआ क्योंकि फ्रान्सिस क्षेवियर ने मौके का लाभ उठाकर स्पेनिश इन्क्विज़िशन (पोप के विरोधियों का विचार करने का विचारालय) के ढंग पर एक धार्मिक न्यायालय कायम कर दिया; इसपर बिना किसी विरोध के इसी का प्रभुत्व था। पुर्तगाली हथियारों की मदद से ईसाइयत के प्रचार में किसी तरह की बाधा पैदा करनेवाले या बप्तिस्मा लेनेवाले देशी लोगों को दुबारा उनके पुराने मूर्तिपूजक धर्म में लेनेवालों के विरोध में अत्यन्त भयंकर अत्याचार करने लगा। इस तरह से असंख्य ब्राह्मण और खास तौर पर से "उनमें धनी व्यक्तियों ने जल्लादों के हाथों अपनी जानें गँवा दीं या समाज के लाभ के लिए सम्पत्ति के छीने जाने के डर से वे राज्य से निकाल दिये गए……वास्तव में स्त्री-स्वभाव के हिन्दुओं पर दबाव डाला गया कि वे इन्क्विज़िशन की कैद से परिचय प्राप्त करने के स्थान पर बप्तिस्मा ले लें अथवा धीमी आँच पर जिन्दे भूने जाने का खतरा उठायें…" परिणामस्वरूप सभी उपयुक्त स्थानों पर जेस्युइट कॉलेज खड़े हो गए, जिन्हें कि कत्ल किये गये या नष्ट किये गये नास्तिकों की सम्पत्ति से मजबूत बनाया गया। और भी अधिक गिनती में गिरजाघर बनाये गए, क्योंकि अब सैक्सन्स के विरुद्ध चार्ल्स महान् के क्रूर व्यवहार को उदाहरणस्वरूप रखकर मानो जेस्युइट्स ने मूर्तिपूजकों के मन्दिरों को आग और तलवार की मदद से नष्ट करने में झिझक छोड़ दी हो।" (पृष्ठ ९२)

ईसाइयत की क्रूरताओं के दृष्टान्त अधिक देना व्यर्थ है। ईसाइयत का सम्पूर्ण इतिहास शान्ति के देवदूत के अनुयायियों द्वारा इन्क्विज़िशन तथा गुलिटन (फांसी का यूरोपियन संस्करण) के माध्यम से मानवता पर की गयी तबाही के खेल से भरा पड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण ३

ताकत के सिवाय दूसरे साधनों से इस्लाम का प्रचार

इस्लाम के अपने मजहब में दीक्षित करने के कार्य में हमारे मुख्य आधार श्री टी० डब्ल्यू० आरनोल्ड का कहना है कि "मुसलमानी मजहब को स्वीकार करनेवाले या उनके वंशजों की ही बड़ी संख्या है, जिनके धर्म-परिवर्तन में बल-प्रयोग का कोई हिस्सा नहीं है और वे केवलमात्र शान्त प्रचारकों की शिक्षाओं और प्रेरणाओं से ही मुसलमान बने हैं।" यहाँ सवाल पैदा होता है कि खुलेआम शिक्षा दी गयी, सचाई से प्रेरित किया जाता रहा अथवा इस्लाम के प्रचारक अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए उचित साधनों को काम में लाये अथवा पूर्वजों के धर्म में विश्वास को कम करने के लिए उन्होंने भारतीयों के भोले अन्धविश्वास का फायदा उठाया; यदि पिछले उपाय काम में लाये गए तो श्री आरनोल्ड के सुझाव के अनुसार इस्लाम के प्रचारक अपने को धर्मभीरु कहकर बढ़ावा नहीं दे सकते। वह कहता है—

"यद्यपि कुछ मुसलमान शासक अपनी कुछ हिन्दू प्रजाओं को इस्लाम स्वीकार करवाने में कामयाब रहे हैं···(सर एल्फ्रेड सी० लायल के 'एशियाटिक स्टडीज़' पृष्ठ २३६ के) इस कथन में चाहे कितना ही सच हो कि "भारत में मुसल-मानों की धार्मिक स्थिति को, उनके राजनैतिक रूप को समझे बिना जानना असम्भव है, हम निस्सन्देह मालूम करते हैं कि इस्लाम ने उन समयों और स्थानों पर महानतम और स्थायी प्रचार-सम्बन्धी विजयें प्राप्त की हैं कि जहाँ उसकी राजनैतिक शक्ति सबसे अधिक क्षीण थी जैसे दक्षिणी भारत और पूर्वी बंगाल में।" (पृष्ठ २६३)

श्री आरनोल्ड के वर्णन के आधार पर हम दक्षिणी भारत, दक्खिन, सिन्ध, कच्छ, गुजरात तथा फिर बंगाल में मुस्लिम प्रचार और प्रेरणा के इतिहास का शान्तिपूर्वक निरीक्षण करें, देखें कि वे बुद्धि और न्याय की कसौटी पर खरे उतरते हैं या नहीं ?

१६वीं शताब्दी के एक मुस्लिम ऐतिहासिक जयनलदीन के आधार पर आर-नोल्ड सर्वप्रथम मुसलमान बननेवालों का वर्णन कहता है। आठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में मुसलमान शरणार्थियों के एक गिरोह ने बस्ती बसायी थी। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणार्थियों और सहिष्णु हिन्दू शासकों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विद्यमान थे। हिन्दू शासक मुसलमान बनने के कार्य में किसी तरह की कोई अड़चन पेश न करते थे। देसी मुसलमानों के साथ···उनके समाज के निचली श्रेणी से सम्बन्धित होने पर भी समान व्यवहार किया जाता था। लंका में आदम के पदचिह्नों पर चलते हुए यात्रियों का एक दल क्रांगानोर पहुँचा था, जिस स्थान के राजा को उन्होंने इस्लाम की शिक्षायें समझाईं। यात्रियों के तीर्थयात्रा से लौटते समय राजा राजव्यवस्था को विभिन्न राजप्रतिनिधियों के हाथ में छोड़कर अरब-तट को जाने वाले एक जहाज में उनके साथ बैठकर "चुपके से चला गया"। यहाँ वह कुछ समय तक रहा और अपने देश के लिए वहाँ पर मस्जिदें बनाने तथा मुस्लिम धर्म को फैलाने के इरादे से चल पड़नेवाला ही था कि वह बीमार पड़ गया और मर गया। मृत्युशैया पर उसने अपने साथियों को आदेश दिया कि वे अपनी प्रस्तावित मलाबार-यात्रा को न छोड़ें। अपने साथियों को उनके प्रयत्न को सफल बनाने के लिए उसने राजप्रतिनिधियों के नाम सिफारिशी चिट्ठियाँ भी लिख दीं जिसके साथ ही उसकी मौत का हाल छिपाने के लिए भी कह दिया गया।" उसके बाद मुसलमान इतिहास-लेखक विभिन्न स्थानों में मस्जिदें किस प्रकार बनीं, इसका वर्णन करता है।

यह कहानी अविश्वसनीय मालूम पड़ती है, क्योंकि जब राजप्रतिनिधियों के हाथ में शासनव्यवस्था खुलेआम छोड़ दी गई तब राजा की रवानगी को छिपाने की क्या जरूरत थी? वास्तव में सचाई यह मालूम पड़ती है कि राजा अरब के दौरे पर गया था, वहाँ वह मर गया और इसपर पवित्र मुस्लिम प्रचारकों ने उसके जाली दस्तखत बनाकर राजप्रतिनिधियों को ठग लिया। आरनोल्ड भी स्वीकार करता है ऐतिहासिक रूप से इसकी कोई साक्षी नहीं है। हिन्दुओं को इस्लाम में लाने के प्रथम प्रयत्न को यहाँ बहुत देख लिया। "कहा जाता है कि अरब वाणिज्य के संरक्षकों में से मुख्य कालीकट के जमोरीन ने इस्लाम-प्रवेश को बढ़ावा दिया था, क्योंकि उसकी बढ़ती को मुख्य आधार अरब जहाजों को जहाजियों की जरूरत थी। इसलिए उसने हुक्म दिया कि उसके राज्य के प्रत्येक मछियारे परिवार में से एक या अधिक पुरुष सदस्यों को मुसलमानों की न्याईं पालना चाहिए।" इन्हें मप्पिला या मोपला कहा जाता था। "१६वीं शताब्दी के पूर्व में मप्पिला लोग मलाबार की जनता के पाँचवें हिस्से के बराबर थे। ये हिन्दुओं के समान भाषा बोलते थे और इन्हें इनकी लम्बी दाढ़ियों और खास ढंग की सिर की टोपी से ही पहचाना जाता था।"

इस प्रकार कालीकट के हिन्दू राजा के लालच और स्वार्थ-परायणता ने तथा हिन्दुओं के 'मुझे न छुओ' के कुसंस्कार ने दक्षिणी भारत में इस्लाम का प्रवेश करवाया, न कि मुसलमान प्रचारकों के प्रचार और प्रेरणा से। आरनोल्ड आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखता है—"यदि पुर्तगाली लोग न आ जाते तो इस समुद्रतट के सम्पूर्ण निवासी मुसलमान हो गए होते, क्योंकि गुजरात तथा दक्षिण के भारतीय हिस्सों तथा अरब और फारस के मुस्लिम व्यापारियों के जबर्दस्त प्रभाव से निरन्तर इस्लाम में प्रवेश हो रहे थे।" परन्तु पुर्तगाली ईसाइयों के इस दैवी हस्तक्षेप से मलाबार की हिन्दू जनता की रक्षा हो गई। 'कड़ाही से निकलकर आग में पड़ने' का यह अच्छा उदाहरण है, इसका दक्षिण भारत में ईसाई मिशनों का इतिहास साक्षी है।

कालीकट के जमोरीन राजा की अपने मछियारे प्रजाजनों के एक हिस्से को मुसलमान बनने की उत्कण्ठा को सुनकर तिमुरिद शाहरुख बहादुर ने वहाँ इस्लाम को फैलाने के कार्य को अधिक बढ़ावा देने के लिए अब्दुल रज्जाक को भेजा परन्तु "जैसा कि मालूम पड़ता है कि उसे सफलता नहीं मिली क्योंकि छः मास तक वहाँ रहने के बाद उसने मूल उद्देश्य छोड़ दिया" और खुरासान लौट गया।

इसके बाद आरनोल्ड नाथुर शाह का वर्णन करता है। इसने त्रिचपापल्ली के खुत्तान लोगों को तथा लड़ाकू योद्धा सैयद इब्राहीम शहीद, जिसके लड़के के वंशज ईनाम में दी गयी भूमि का फायदा आज भी उठा रहे हैं, मुसलमान बना लिया था। शाह अलहमीद का भी उल्लेख किया गया है, नागोर में जिसकी कब्र आज भी पूजी जाती है। दुन्देकुलों को बाबा फखरुद्दीन ने मुसलमान बनाया था, जिसकी कब्र पेनुकोण्डा में आज भी विद्यमान है। कहा जाता है कि उसने एक हिन्दू पुजारी से करामात करने में होड़ की थी। दोनों को चूने के बोरों में बन्द कर तालाब में डाल दिया गया। "हिन्दू पुजारी ने फिर सिर न उठाया, परन्तु बाबा फखरुद्दीन ने नगर से बाहर एक पहाड़ी पर आश्चर्यजनक रूप से प्रकट होकर अपने ईमान की महत्ता को दिखा दिया। इसपर राजा मुसलमान हो गया और उसके उदाहरण पर आस-पड़ोस के बहुत-से निवासियों ने अनुकरण किया और मन्दिर को मस्जिद में बदल दिया गया।"

आश्चर्य यह कि ये चमत्कार अपने प्रभाव से उस समय प्रसिद्ध हुए, जिस समय एक भी ऐसा चमत्कार उस सम्पूर्ण रक्तपात को समाप्त कर देता, जिनसे वर्तमान भारत का इतिहास अपमानित हो रहा है।

अछूतों और कभी-कभी अब्राह्मण नायरों और देसी ईसाइयों का जो मलाबार में मुसलमान बन जाते थे, आरनोल्ड वर्णन करता है, परन्तु उसी के साथ-साथ वह लिखता है—"हिन्दुओं से इतनी बड़ी संख्या में धर्म-परिवर्तन हुए कि दक्षिणी भारत के पश्चिमी और पूर्वी किनारों पर रहनेवाले मुसलमान हिन्दुओं या आदिवासियों की न्याईं रहने लगे।" आगे लिखता है—

"असल में पश्चिमी किनारे पर रहनेवाले लोग—छोटी जातियों के हिन्दुओं में से धर्मपरिवर्तन कर इतना ज्यादह बढ़ रहे हैं कि कुछ सालों में यह सम्भव हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगा कि पश्चिमी किनारे की सम्पूर्ण छोटी जातियाँ मुसलमान बन जायँ।"
(पृष्ठ २६९)

उपर्युक्त पंक्तियाँ सन् १९१३ में लिखी गयी थीं और इसके आठ साल बाद मोपला (मलाबार के गैर-मुस्लिम छोटी जाति के हिन्दू) जबर्दस्ती सुन्नत कर हिन्दू स्त्री-पुरुषों को तलवार की ताकत से मुसलमान बना रहे थे जिससे मालूम पड़ता था कि कितने थोड़े समय में कुरान की शिक्षा पाकर कानून का पालन करनेवाले हिन्दू कट्टर शैतान बन जाते हैं।

किसी ने भी उस समय विचार नहीं किया था जिस समय कालीकट के जमोरीन ने अपने मछियारे प्रजाजनों को इस्लाम स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया था कि किसी दिन ये ही मलाबार से हिन्दू धर्म को समाप्त करने का प्रयत्न करेंगे।

दक्षिणी भारत में इस्लाम के तथाकथित शांतिमय साधनों द्वारा फैलाव पर विचार करते हुए ऐतिहासिक को संदिग्ध परम्पराओं पर ही आश्रित रहना पड़ता है। परन्तु हिन्दुओं के इस्लाम में प्रवेश पर हमें कुछ साधनों से कुछ विश्वसनीय विवरण मिले हैं। आरनोल्ड द्वारा दिये गये उन आधे दर्जन मुसलमान प्रचारकों के नाम जो सन् १३०४ ई० से १५६८ ई० तक दक्षिण भारत में कार्य करते रहे, नाम देकर मैं इस कहानी को आगे चलाता हूँ। वह आगे लिखता है—"मुल्तान के शहर को केन्द्र बनाकर एक दूसरी प्रचारकों की लहर कार्य कर रही थी। अरब-विजयों के प्रारम्भिक दिनों में यह इस्लाम की बाहरी चौकी थी (७१४)...... अरब शासन की तीन शताब्दियों में विजेताओं के धर्म में बहुतों ने प्रवेश किया होगा। सिन्ध के कई राजाओं ने खलीफा उमर बिन अब्दुल अजीज की प्रेरणा पर इस्लाम स्वीकार किया था (आश्चर्य है कि यह प्रेरणामय निमन्त्रणमात्र था या जबर्दस्ती शक्ति-प्रयोग द्वारा किया कार्य)। अल बालाधुरी के कथनानुसार उसके समय में (एक शताब्दी बाद) सावान्दरी की जनता ने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था और विजेता के खरीतों में बार-बार काफिरों द्वारा इस्लाम स्वीकार करने की बात कही गयी है।" (पृष्ठ २७२)

निस्सन्देह आरनोल्ड इन सब धर्म-परिवर्तनों को स्वेच्छापूर्वक बतलाता है परन्तु बल-प्रयोग सदा मौत के सीधे भय के साथ ही नहीं किया जाता था।

प्रेरणा द्वारा धर्मपरिवर्तन की यहाँ बानगी देखिये, अल बालाधुरी काश्मीर, मुलतान और काबुल के मध्यवर्ती "उसाईफन" देश के राजा के धर्म-परिवर्तन की नीचे लिखी कहानी सुनाता है। इस देश की जनता एक मूर्ति की पूजा करती थी जिसके लिए उसने एक मन्दिर बनवाया था। राजा का लड़का बीमार पड़ गया। उसने मन्दिर के पुजारियों से अपने लड़के के स्वास्थ्य-लाभ के लिए मूर्ति की उपासना करने को कहा। पुजारी चले गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने लौटकर कहा

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमने उपासना की है और हमारी विनती स्वीकार कर ली गयी है।" परन्तु थोड़े समय के बाद लड़का मर गया। इसपर राजा ने मन्दिर पर हमला किया, मूर्ति को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और पुजारियों को कत्ल कर दिया। इसके बाद उसने मुसलमान व्यापारियों के एक दल को आमन्त्रित किया जिन्होंने उसे एक अल्लाह पर विश्वास करवाया जिसपर उसे ईमान आ गया और मुसलमान बन गया। मूर्ति तोड़ने तथा पुजारियों को कत्ल करने से पूर्व राजा का मुस्लिम व्यापारियों से क्या सम्बन्ध था—यह यहाँ नहीं झलकता।

"मुस्लिम व्यापारियों की विभिन्न श्रेणियों द्वारा निस्सन्देह इसी तरह का प्रचारात्मक असर पैदा किया जा रहा था जो हिन्दुस्तान में काफिरों के शहर में अपना मजहब ले जाते थे।" (पृष्ठ २७३)

अब्दाल कादिर जिलानी १४२२ में सिन्ध आया और १० साल की मेहनत के बाद वह लोहाना जाति के ७०० परिवारों को मुसलमान बनाने में सफल हो गया, जिन्होंने अपनी जाति के दो व्यक्तियों का उदाहरण सम्मुख रखते हुए इस्लाम स्वीकार कर लिया। एक फकीर द्वारा करामात दिखाये जाने पर ये दोनों आदमजी तथा ताज मुहम्मद नाम रखकर मुसलमान बन गये। पहले आदमी के नेतृत्व में इन आदमियों ने कच्छ को हिजरत कर दी जहाँ उनकी गिनती कच्छ के लोहानों का धर्म-परिवर्तन कर और बढ़ गयी।

"सन् १४३० में खोजा जाति का मुखिया इस्लामी प्रचारक पीर सदरअलदीन ने भी सिन्ध में प्रचार का कार्य किया। इस फिरके द्वारा सुविधाजनक सिद्धान्तों का पालन करने के आधार पर इसने अपना एक हिन्दू नाम रख लिया और हिन्दुओं के कुछ धार्मिक विश्वासों को इसने प्रचलित रहने दिया जिनमें वह धर्म-परिवर्तन करना चाहता था। उनमें उसने दशावतार नामक पुस्तक का प्रारम्भ भी कर दिया। उसने विष्णु, दसवें अवतार को अली कहा। खोजा जाति प्रारम्भ से ही इसे एक धर्म-पुस्तक के रूप में स्वीकार करती आयी है। मरणोन्मुख व्यक्ति की शैया के पास और बहुत-से उत्सवों पर भी इस पुस्तक का पाठ किया जाता है। यह पुस्तक नौ अवतारों को तो उसी रूप में सच मान लेती है परन्तु पूर्ण सत्य से कुछ कम होने से इस्माइलियों के सिद्धान्तों के आधार पर अपूर्ण वैष्णव संस्थान को अली के अवतार तथा आगामी प्रदर्शन से पूर्ण किया जाता है। इससे भी बढ़-कर उसने ब्रह्म को मुहम्मद, विष्णु को अली और आदम को शिव होनेवाला स्वीकार कर लिया। उत्तरी सिन्ध के गाँवों और शहरों में पीर सदर-अल-दीन के पहले अनुयायी बने।"

इस्माइली प्रचारकों में भारत आनेवालों में पीर सदर-अल-दीन ही सबसे पहला नहीं था। १०६७ में यमन से भेजा गया प्रचारक अब्दुल्ला उससे भी पहले आया था……दूसरा इस्माइली प्रचारक इस्माइलियों के गुरु के गढ़ अलामुत से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत भेजा गया था। इसका नाम नुरुलदीन था, परन्तु इसे सामान्यतया नूर सतगुर के हिन्दू नाम से जानते थे। हिन्दू राजा सिद्धराज के शासनकाल में यह सिन्ध पहुँचा। इसने एक हिन्दू नाम रख लिया परन्तु मुसलमानों को बताया कि उसका असली नाम सैयद संआदत है। उसने कनबियों, खरवास, कोड़ी आदि गुजरात की नीची जातियों को मुसलमान बनाया। जिस प्रकार नूर सतगुर का खोजों का प्रथम धर्मप्रचारक कहकर आदर करते हैं उसी प्रकार मुख्यतया शियाओं के बड़े तथा महत्त्वपूर्ण फिरके हिन्दू प्रारम्भवाले बोहरों का संस्थापक समझा जाता है जोकि बम्बई इहाते के मुख्य व्यापारिक केन्द्रों में बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। परन्तु कुछ दूसरे प्रथम बोहरा धर्मप्रचारक होने का गौरव मुल्ला अली को देते हैं जिसके धर्म-परिवर्तन के तरीकों को शिया ऐतिहासिक ने इस प्रकार लिखा है—'क्योंकि उन दिनों में गुजरात के आदमी काफिर थे और वे एक बूढ़े मनुष्य को धार्मिक गुरु मानकर उसकी शिक्षाओं का अन्धानुकरण करते थे—मुल्ला अली उसका चेला बन गया और मुल्क की पुस्तकों का गहरा अध्ययन कर बूढ़े मनुष्य को अपना मजहब बता दिया, जिसपर वह मुसलमान बन गया। कुछ हिन्दू चेलों ने भी अनुकरण किया। इसके बाद प्रधानमन्त्री गुप्तरूप से मुसलमान बना लिया गया। यह खबर राजा को भी मिली, वह इसपर विश्वास करने के लिए "एक दिन बिना पूर्व-सूचना के अपने मन्त्री के घर गया। वहाँ उसने देखा कि वह प्रार्थना में सिर झुका रहा है। मन्त्री ने राजा के आने का कारण समझ लिया और अनुभव किया कि उसकी प्रार्थना सिर झुकाने तथा दण्डवत् पड़ने से उत्पन्न सन्देह से उसके मन में उसके प्रति नाराजगी हो गई है 'परन्तु खुदा की अगुआई तथा अवसरयोग्य दैवी कृपा से, उसने कहा कि वह कमरे के कोने में एक साँप को देख रहा था। जब राजा कमरे के कोने की ओर बढ़ा, दैवी आयोजन से उसने वहाँ एक साँप देखा और मन्त्री के बहाने को मान लिया और उसका मन से सन्देह दूर हो गया। अन्त में राजा भी गुप्त रीति से मुसलमान बन गया परन्तु राज्य के कारण से उसने अपने इस मानसिक परिवर्तन को छिपाये ही रक्खा…।"

(पृष्ठ २७४ और २७६)

इस बनावटी कहानी को पढ़ने से कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं। दैवी कृपा से मन्त्री झूठा और पाखण्डी क्यों बन गया? राजा को कोने में साँप दिखाकर धोखा देने के स्थान पर अल्लाह ने राजा के मन पर इस्लाम के मजहब का प्रकाश क्यों न पहुँचा दिया? किस चीज ने राजा को मन्त्री द्वारा धोखा दिये जाने पर गुप्त-रूप से मुसलमान बनने के लिए प्रेरित किया? सम्भवतः सतह पर सीधा काम करने के स्थान पर अन्दर-अन्दर काम करने की इस्माइली प्रवृत्ति अधिक अभीष्ट थी। परन्तु मुख्य कारण उस समय के हिन्दुओं के भोले तथा अन्धे कुसंस्कारों में पाया जा सकता है। मुसलमान बादशाहों और सुल्तानों के समय में हिन्दुओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमान बनाने में मुसलमान प्रचारकों द्वारा प्रयुक्त धोखेबाजी के उदाहरणों का ज्यादह देना निरर्थक होगा। मुसलमानों के प्रति पक्षपात से लिखनेवाले ऐतिहासिकों के लम्बे उद्धरणों को देने का मेरा केवल यही प्रयोजन है कि ऊँची जाति के तथाकथित हिन्दुओं के भोलेपन, कुसंस्कार तथा असहिष्णु अत्याचार ने नीची जात के लाखों को मुसलमान बनाया, न कि इस्लाम के किसी गुण तथा अच्छाई की पहचान ने। अप्रत्यक्ष रूप से मेरे दृष्टिकोण का श्री आरनोल्ड ने भी नीचे के उद्धरण में समर्थन किया है—

"वास्तव में कई बार धर्म-परिवर्तन का कार्य बहुत अपूर्ण रहा। बहुत-से नाम-मात्र के मुसलमानों को आधा हिन्दू कहा जा सकता है। वे बिरादरी के नियमों का पालन करते हैं, वे हिन्दुओं के त्यौहारों में शामिल होते हैं और बहुत-से मूर्ति-पूजक रीतिरिवाजों का पालन करते हैं। कुछ जिलों में······बहुत संख्या में ऐसे मुसलमान मिलते हैं जो कि नाम के अतिरिक्त मजहब को नहीं जानते, उनके यहाँ मस्जिदें नहीं हैं और वे नमाज भी नहीं करते। गाँवों के मुसलमानों और देश के उन भागों में जहाँ कट्टर मुसलमान नहीं रहते—वहाँ विशेष रूप से यही देखने को मिलता है···।" (पृष्ठ २८६)

ताकत के सिवाय दूसरे साधनों से ईसाइयत का प्रचार

ताकत द्वारा ईसाइयत के खून जमानेवाले विवरण मैं पहले ही दे चुका हूँ। मुझे विश्वास है कि वे आसानी से खिलजी, औरंगजेब और टीपू सुल्तान के अत्यधिक धर्मान्ध कारनामों की तुलना भी आसानी से कर सकते हैं। अब मैं विश्वस्त अधिकारी व्यक्तियों के प्रमाणों से सिद्ध करूँगा कि मुसलमान साथियों की तुलना में जेस्युइट धर्म-प्रचारक कपट के क्षेत्र में भी बाजी मार गए हैं। अपने विचार को सिद्ध करने के लिए मैं थियोडर ग्रिसिंगर के कुछ उद्धरण दूँगा—

"पूर्वी भारत में पुर्तगालियों के आधीन जो कोई भी महत्त्वपूर्ण स्थान हुआ वहीं क्षेवियर ने ईसाई धर्म-प्रचारकों का रास्ता साफ कर दिया। कॉलेज, निवास-स्थानों और प्रचार-केन्द्रों आदि के नाम पर जेस्युइट बस्तियों की स्थापना की गयी। ये लगातार बढ़ती गयीं। लोयला के लड़के के लिए इस काम में सफलता पाना बड़ा आसान था, क्योंकि राजा के आदेश से पुर्तगाली गवर्नर इन धर्म-प्रचारकों के हाथों में खेलते थे और दूसरे किसी विरोध को वे स्पेनिश धार्मिक न्यायालयों की स्वयं स्थापना कर आसानी से दबा सकते थे। प्रत्येक जगह प्रचार-केन्द्रों की संख्या बढ़ाना भी मुश्किल काम न था। जहाँ कहीं भी पुर्तगाली या दूसरे यूरोपियन लुटेरे गए वहाँ जेस्युइट धर्म-प्रचारक भी बढ़ते चले गए और बहुत सरल तरीकों से ईसाइयत की जातियों को बनाने के लिए अपने पैर मजबूती से जमा लिये। तो ये सरल तरीके क्या थे? "इसके सिवाय दूसरा तरीका नहीं था कि ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म-प्रचारक भारतीय पुजारियों या ब्राह्मणों के भेस में जाते थे जिससे······कि वे देसी लोगों के समान गुजर सकें ··(पृष्ठ १०१)

उनमें से एक का नाम पीटर कान्स्टैण्टोनियो बेसची था, जिसने हिन्दुओं की भाषा तथा संस्कृति का सावधानतापूर्वक अध्ययन किया था। यह हिन्दुओं के रीति-रिवाजों और तरीकों तथा ब्राह्मणों के जीवनक्रम की इतने ठीक रूप से नकल करता था कि दक्षिण के लोग, जिनमें वह अधिक समय से रहता था, वास्तव में ही उसे एक सन्त के समान पूजने लगे। इस काफिरों के स्वर्ग में वह देशीभाषा में लोक-प्रिय कविताएँ भी तैयार करता था, जिनसे वह सब मुल्कों में पूजा जाने लगा।··· दक्षिण के शासक ने इस भरोसे से कि वह सच्चा ब्राह्मण है, उसे दरबार का मुख्य दरबारी अफसर, मन्त्री बना दिया और कान्स्टैण्टाइन बेसची ने गलती को बचाने की तकलीफ बिलकुल नहीं उठायी, इसके विपरीत इस मान्य पीटर ने इस समय से सम्पूर्ण यूरोपियन रीतिरिवाजों और परम्पराओं को त्यागकर सुन्दर पूर्वी पोशाक पहननी शुरू कर दी, कीमती साजवाले घोड़े पर सवार हो वह सार्वजनिक रूप से निकलने लगा या गुलामों से उठायी जानेवाली पालकी में बैठने लगा। उसके साथ सदा कुछ घुड़सवार होते थे जो कि बड़े आदमी का रास्ता साफ करते जाते थे, साथ ही उसके आने तथा जाने का तुरही से ढिंढोरा पीटते जाते थे। किसी को यह खयाल न था कि वह असल में एक यूरोपियन है अथवा बप्तिस्मा लिया हुआ कोई ईसाई है। वह अपने अन्तिम दिनों तक जेस्युइट ही बना रहा और उसके संघ के साथी भी उसपर कम नाज न करते थे। सुयोग्य पीटर बरथेलिमी अकोस्टा का दूसरा उदाहरण मैं यहाँ उपस्थित करना चाहता हूँ। यह बिल्कुल विभिन्न चरित्र का व्यक्ति था। वह देश की समाज के उच्च श्रेणी के व्यक्तियों के पास बहुत कम जाता था, परन्तु वह जनता की सबसे निचली तलछट में घुले रहना अधिक पसन्द करता था। सम्भवतः प्रधानमन्त्री और वजीरेआजम कान्स्टैण्टोनियो बेसची की न्याईं निस्सन्देह उसका भी वही उद्देश्य और आशय था। वह समाज की बदनाम वेश्याओं और नर्तकी के कोठों पर गया और वह बयादेरों की झोंपड़ियों में गया। उसे अच्छी तरह पता था कि वे हर समय, हर दिन प्रेम के देवता को रिझाने में लगे रहने से पुरुषजाति को प्रभावित कर सकते हैं, इसलिए उसने उनके साथ बहुत अच्छे सम्बन्ध बना लिये। वह उनके साथ जाकर खेलता था, नाचता था और शराब पीता था। इन सब तरीकों से वह उनका सबसे प्रिय मित्र और विश्वासपात्र बन गया। वे दीन प्राणी उससे खूब खुश थे। उन्होंने उसके हाथों ही स्वर्ग के रास्ते पर चलना निश्चय किया, जिसने कि सारा मामला बहुत आसान कर दिया था। ईसाइयत का मजहब स्वीकार करने में उन्हें एक ही बाधा दिखाई देती थी, वह यह थी कि उन्हें बताया गया था कि ईसाई पादरी उस व्यवसाय को पापमय जुर्म कहते थे जिसपर वे जिन्दगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिताते थे। परिणामस्वरूप उनके बप्तिस्मे के धर्मानुष्ठान को करने का समय क्षण-प्रतिक्षण टलता ही जाता था। इसपर उस योग्य धर्म-पिता ने क्या किया ?

"उसने उन्हें शिक्षा दी कि वे किसी प्रकार का पाप किये बिना ही ईसाई बन सकते हैं, और परमात्मा के प्यार पर अपने को न्यौछावर कर सकते हैं, यदि वे अपनी आमदनी के कुछ हिस्से को ईसाई चर्च को सौंप दें तथा सब अवसरों पर जो उनकी मोहिनी शक्ति से उनके बस में हैं, उन्हें ईसाई बनाने की कोशिश करें। इन तथा इसी तरह की दूसरी रीतियों से जेस्युइट लोग सम्पूर्ण भारत में धीमे-धीमे घुस गये और जब तक पुर्तगाली हुकूमत बची रही, वे देश के असली शासक बने रहे अथवा यह कहना ठीक होगा कि उन्होंने इस अनन्त प्रदेश को स्वेच्छापूर्वक लूटने में खुली छूट पायी.........वे ईसाई बनाते थे, कॉलेज और छात्रावासों की स्थापना करते थे क्योंकि उन्हें पुर्तगाल के राजा बहुत ही अधिक प्यार करते थे।" (पृ० १०२ और १०३)

१८८६ ई० के जुलाई मास के 'थियोसोफिस्ट' में भारत में जेस्युइट लोगों के कारनामों और ईसाई बनाने के उत्साह का वर्णन कर एक लेखक उनके कार्यों के परिणाम का सारांश इस तरह रखता है—

१५५८ में क्षेवियर की मृत्यु के समय भारत के दोनों किनारों पर विभिन्न प्रचार-केन्द्रों में २०० जेस्युइट कार्य कर रहे थे। कुछ ही सालों में हिन्दू मन्दिरों के ध्वंसावशेषों पर उन्होंने शाही गिरजाघर खड़े कर दिये थे। कुछ हिन्दू मन्दिर बिल्कुल मिट्टी में मिला दिये गये थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने नये ईसाइयों के लिए धार्मिक स्कूलों की स्थापना की। परन्तु वे इंजील के बुरे शिक्षक थे। डॉक्टर थॉमस मैकरी कहते हैं कि पवित्र ईसा का नाम बहुत बुरे कार्यों में आया जब वह उस समाज पर थोपा गया जो 'विनीत और निम्न' था। यह ईसा की वास्तविक भावना और चरित्र से विरुद्ध था। जेस्युइट लोगों ने अपने फायदे के लिए एक बिल्कुल नया आचारशास्त्र गढ़ लिया था। दैवी कानून के स्थान पर उन्होंने अपने चरित्र का अनुकरण करना, अपने बड़ों का आँख मूंद कर आज्ञापालन, जिसे वे परमात्मा के स्थान पर स्वीकार करने को बाध्य हैं और उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए अपनी इच्छाओं को मृतलाश या बूढ़े आदमी की टेक के समान छोड़ देना होगा।..........नवयुवकों के शिक्षक के नाते वे सावधानी बरतते थे कि मानव-ज्ञान का क्षेत्र कम-से-कम विस्तृत किया जाय क्योंकि वह उनके धर्मप्रचार के प्रभुत्व के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता था। इसलिए उन्होंने अपने शिष्यों को साहित्यिक अध्ययन तक ही सीमित रखा जो कि अन्धकार-युग के पक्षपात को कम किये बिना उन्हें प्रसन्न रख सकता था। धर्म-प्रचारकों के नाते वे सब देशों को बप्तिस्मा देने की मेहनत में अधिक परिश्रमी और सफल रहे, बनिस्वत इसके कि इंजील की शिक्षा देते।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं और मुसलमानों को ईसाइयत में बहका लाने के लिए उन्होंने सब उपायों का आसरा लिया और तमिल तथा दूसरी भाषाओं में पर्चे व पुस्तकें प्रकाशित कीं। यह उस समय की हालत थी जब बादशाह अकबर ईसाइयत के बारे में अपनी जिज्ञासा पूरी कर रहा था और उसने १५८२ में अपने दरबार में जेस्युइट लोगों को बुलाकर उनसे ईसा की जीवनी के बारे में पूछा था। कपटी पादरियों ने यह सोचकर कि उसकी पूर्वी कल्पना को लुभाने के लिए सरल जीवन आकर्षक न होगा, उन्होंने बादशाह को हिन्दुओं के पुराणों के समान दन्त-कथाओं से भरी ईसा की झूठी जीवनी सुनाई। पर यह चालाकी मात दे गयी। अकबर ने कपट को पकड़ लिया और उन्हें दरबार से विदा कर दिया। इस तरह से वे देशी लोगों से इंजील की विशेषताओं को छिपाकर रखते थे। वे जनता के भद्दे-से-भद्दे सिद्धान्तों से मेल करने का प्रयत्न करते थे। यही काफी न था। वे रोम से कल्पित सन्तों के सिर और कपाल लेते थे, साथ ही चालाकी से वे इन सब स्मारक-चिह्नों के करतबों तथा कारनामों को सर्वत्र फैला देते थे। इसके बाद तारों से मूर्तियों को हिलाते थे, जिसे वे कहते थे इन्हें स्वर्ग से आश्चर्यजनक रूप से हिलाया जा रहा है। कोरोमण्डल किनारे पर मलियापुर में एक कब्र को छलपूर्वक सेण्ट थॉमस की समाधि बताया जाने लगा। साथ ही हवाला दिया जाने लगा कि ईश्वर-दूत सिन्धु को पार कर कर्नाटक तक दक्षिण में पहुँच गया था और वहाँ शुभ समाचार सुनाकर शहीद हो गया था। इस तरह के सन्तों की हड्डियों से वे शैतानों से हास्यजनक लड़ाइयाँ लड़ते थे और अशिक्षित जनता की आँखों में धूल झोंकते थे। भारत की जनता को ठगने के लिए इन चतुर पादरियों ने कितनी अनगिनत चालबाजियाँ कीं, इनकी गणना के लिए एक बड़े ग्रन्थ की जरूरत होगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण ४

दूसरा कारण

आर्य वर्ण-व्यवस्था का भंग

कुरान तथा हजरत मुहम्मद की जीवन-कहानियों के संग्रह हदीस पर आश्रित मुसलमानों की सामाजिक व्यवस्था केवल १४ शताब्दी पुरानी है। सुधार किये हुए यहूदी धर्म तथा बुतपरस्ती के मेल से बनी ईसाई सामाजिक व्यवस्था भी २० शतक से पुरानी नहीं है। ३५ शताब्दी पूर्व हजरत मूसा के पथ-प्रदर्शन में यहूदी लोग जिस समय अपने समाज का निर्माण कर रहे थे, उस समय आर्यसामाजिक संगठन लाखों साल से अछूता बचा हुआ था और अपने ऊँचे स्थान से गिरा ही चाहता था।

वेदों की शिक्षाओं के आधार पर आर्य वर्ण-व्यवस्था स्थिर थी और आर्य लोग विश्वास रखते थे कि वेदों का ईश्वरीय ज्ञान संसार के प्रारम्भ से विद्यमान था। अंग्रेजों के प्रथम वैदिक विद्वान् सर विलियम जोन्स लिखते हैं—......"हम वेदों को सबसे अधिक प्राचीन होने के गौरव को देने से इन्कार नहीं कर सकते।" महान् फ्रेंच न्यायशास्त्री लुई जैकोलियो अपने मौलिक ग्रन्थ 'भारत में बाईबिल' में लिखते हैं—"प्राचीनता की दृष्टि से सबसे पुराने विवरणग्रन्थों से भी निर्विवाद रूप से वेद पुरातन हैं। ये पवित्र ग्रन्थ जिन्हें ब्राह्मण परमात्मा द्वारा प्रतिपादित ज्ञान का संग्रह कहते हैं फारस, एशिया माइनर, मिस्र और यूरोप में जिस समय उपनिवेश भी न बसे थे, कोई बस्तियाँ न थीं, उस समय वे भारत में पूजे जाते थे।" आगे फिर वह लिखते हैं—"भारत संसार का पालना है, वहाँ से यह सार्वजनिक मातृभूमि अपने बच्चों को आगे भेज रही है और सुदूर पश्चिम भी अपने प्रारम्भ की स्पष्ट साक्षी उसकी वसीयत में पाता है। उसकी भाषा, उसके कानून, उसका नीति-शास्त्र, उसका साहित्य, उसका धार्मिक विरोधी फारस, अरब, मिस्र सब प्रारम्भ में उसी की थाती को लिये बैठे हैं। अपनी सूर्यतप्ता जन्मभूमि को छोड़कर बहुत दूर ठण्डे मेघाच्छन्न प्रदेश में जाकर वे व्यर्थ ही अपने रवानगी के स्थान को भुला बैठें, उनकी त्वचा भूरी रहे या पश्चिम की बरफ के संयोग से वह सफेद बन जाय, उनके द्वारा संस्थापित संस्कृति की शानदार सल्तनतें गिरकर चकनाचूर हो जायें और उनका कोई निशान सिवाय कुछ वास्तुकला के ध्वंसावशेषों के न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचा रह जाय, पहलों की धूल पर नये मानव खड़े हो जायँ, पुरानों के खण्डहरों पर नये शहर चाहे आबाद हो जायँ, परन्तु समय और बर्बादी मिलकर भी अपने प्रारम्भ के सदा स्पष्ट चिह्न को नहीं मिटा सकते।·········'व्यवस्थापक मीनु'[१] जिनकी प्रामाणिकता सन्देह से ऊपर है, ईसाई सम्वत् से ३००० वर्ष पुराने समय के हैं; ब्राह्मण तो उन्हें और भी प्राचीनकाल का बताते हैं। पूर्वी तिथिक्रम की पुष्टि के लिए हमारा ज्ञान तथा भौतिक साक्षियाँ (बाईबल की परम्पराओं पर आश्रित) हमारे तिथिक्रम से कम हास्यास्पद हैं और इस संसार के निर्माण के लिए विज्ञान की तान से अधिक मेल खाता है·········हम अभी देखेंगे मिस्र, जूडिया, यूनान, रोम—सब अपने-अपने पुरातन को ब्राह्मण समाज के वर्णों, सिद्धान्तों, धार्मिक विचारों का उल्था किये हुए हैं, और इसके ब्राह्मणों, पुजारियों तथा इसकी चित्रहीनता को अपना लिये हैं, साथ ही भाषा-व्यवस्थापन तथा प्राचीन वैदिक समाज के दर्शन को अंगीकार कर गये हैं, जिस समाज से उनके पूर्वज प्रारम्भिक ज्ञान के महान् विचारों को संसार को देने के लिए विदा हुए थे।"

वेदों का प्रारम्भिक ज्ञान मानवजाति को उस पवित्र स्थल पर हुआ होगा जो सर्वप्रथम पानी से निकला होगा, क्योंकि इस भौतिक जगत् के स्थिरता में आने के बाद क्या हमारे इस ब्रह्माण्ड पर जीवनयात्रा सम्भव थी? तिब्बत का पठार सबसे पहले पानी से बाहर निकला, इसलिए वेदों का प्रारम्भिक ज्ञान शुरू के मानवसमाज को उस पवित्र स्थल पर हुआ होगा। अच्छे और पुण्यात्मा तथा बुरे और पापियों में मनुष्य बँट गये। वेद में पहलों को आर्य और पिछलों को दस्यु कहा गया है। यही केवल भेद था, नसल का उस समय कोई भेद न था क्योंकि सारा मानवसमाज एक नसल का था।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था

प्राकृतिक नियमों के आधार पर वेदों में सामाजिक संगठन का ढांचा खड़ा किया हुआ है। सामाजिक संगठन का आधार व्यक्तिगत अंगसंस्थान रक्खा गया है और व्यक्तिगत अंगसंस्थान के विभिन्न प्राकृतिक कार्यों के आधार पर समाज को चार हिस्सों में विभक्त किया गया था—सिर, दो हाथ, जाँघ और दो पैर। चार वर्णों में विभक्त ये मानव-समाज के चिह्न थे। यदि समाज को एक शरीर माना जाय तो इसका शरीर-संस्थान इस प्रकार कार्य करेगा। यजुर्वेद के ३१वें अध्याय के १०वें मन्त्र में प्रश्न किया गया है—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमुरू-पादा उच्येते॥

---

१. मनु (सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न पूछा जाता है कि यह विराट् व्यक्तिरूप को प्राप्त हुए मानवता की शक्ति व गुणों का वे कितनी प्रकार से वर्णन करते हैं? मुँह कौन-सा है, हाथ कौन-से हैं, जंघा कौन-सी है और इस विराट् पुरुष के पैर कौन-से हैं?

११वें मन्त्र में उत्तर दिया गया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत॥

ऋषि दयानन्द ने उपर्युक्त मन्त्र का आशय इस प्रकार से व्यक्त किया है—

पुरुष के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई कही जाती है अर्थात् ज्ञान आदि सर्वप्रथम तथा सर्वोत्कृष्ट गुणों तथा सच्ची वाणी और शिक्षक व प्रचारक के कार्यों से वह युक्त होता है। उसने क्षत्रियों को बनाया और उन्हें शक्ति व शौर्य के गुण दिये गये। कृषि, व्यापार व वाणिज्य के गुण लगभग मध्यवर्ती श्रेणीवाली जनता के हैं। ब्रह्मा के अनुशासन से इन गुणों से युक्त वैश्य या व्यापारी की उत्पत्ति हुई। दूसरों की सेवा व उनपर निर्भर होने के विभेदक गुणोंवाला शूद्र विचारशक्ति की शून्यता से सबसे निम्न स्तर के गुणों से उत्पन्न हुआ।

वर्णव्यवस्था शब्द से मानवीय समाज के चारों विभाजक घटक हिस्सों का बोध होता है। 'व्यवस्था' शब्द प्रबन्ध, संगठन को व्यक्त करता है, और वैदिक शैली की व्याख्या के अनुसार निरुक्त के अध्याय २, भाग ३ में 'वर्ण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

वृ धातु वृञ् वरणे—चुनना, नियत करना मूल से वर्ण शब्द निर्माण हुआ है। इसलिए इसका मतलब है 'वह जो चुना जाना हो', 'चुनाव योग्य' या 'वह व्यक्ति जो अपने गुण व कर्मों का पूरा विचार कर नियत किया जाता है अथवा चुना जाता है।'

भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। ४।१३

इन गुणों, कार्यों, श्रेष्ठता, कार्य, चरित्र व आचार से पुराने आर्य लोगों का वर्ण निश्चित हुआ करता था। समाज में मनुष्य की स्थिति का निर्धारण करने के लिए जन्म ही अकेला साधक नहीं था। सामाजिक संस्थान या शारीरिक संस्थान को व्यक्तिगत मानवीय अंगसंस्थान की तुलना करनेवाली यजुर्वेद की आलंकारिक ऋचाओं का क्या अभिप्राय है? संस्थातमक व्यवस्था में ब्राह्मण की वही स्थिति है जो मानवीय संगठन में सिर की व्यवस्था है? मानवीय व्यवस्था में सिर की क्या स्थिति है? इन्द्रियों के देखने, सुनने, सूँघने, चखने और छूने के पाँचों हिस्से शरीर के प्रमुख भाग सिर में अवस्थित हैं। इन्द्रियों के इन सब हिस्सों से सच्चा ज्ञान मन के माध्यम से बुद्धि तक पहुँचता है जो सम्पूर्ण शरीर को नियन्त्रित करती है। शरीर के भाग में केवल क्रिया का भाग वाणी ही विद्यमान है। शरीर को स्थिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षात्र तेज की विशिष्टता जड़ से ही विनष्ट हो गयी और ब्राह्मणवर्ग अनियन्त्रित हो गया तथा उसने दूसरे वर्णों को अपने दासरूप में परिवर्तित कर दिया। मनुष्य के वर्ण-निर्धारण करने के लिए जिस चरित्र व आचार की आवश्यकता होती है, उसकी उपेक्षा करके जन्म को निर्णायक वस्तु समझा जाने लगा। धीमे-धीमे इस जातिगत दृढ़ता ने व्यवस्था का रूप धारण कर लिया और विद्वान् ब्राह्मणों का अभाव हो गया। धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य-व्यवस्था की भी समाप्ति हो गयी, क्योंकि ब्राह्मणों को यह डर नहीं रह गया था कि यदि उनकी सन्तान का उचित शिक्षण न हुआ तो वह शूद्रों की श्रेणी में पतित हो जायेगी, और यह वर्ण-व्यवस्था बद्ध-मूल हो गई तो निम्नवर्ग के लिए उच्चवर्ग में जाने का कोई प्रलोभन भी नहीं रहा। विशुद्ध वैदिक विश्वास, अन्धविश्वासों में परिवर्तित हो गये। वैदिक भावनाओं के एकमात्र सार (तत्त्व) 'अद्वितीय ब्रह्म' का स्थान, असभ्य जातियों के १००१ देवताओं ने ले लिया और आध्यात्मिक ज्ञान का एकमात्र अधिकारी ब्राह्मणों ने अपने को घोषित कर दिया। उत्तर भारत में यद्यपि वर्ण-व्यवस्था कठोर रूप में और जन्मगत थी, तो भी वर्णों के चारों विभागों को स्वीकृत किया जाता था। परन्तु दक्षिण भारत में तो क्षत्रियों और वैश्यों की सत्ता को ही समाप्त कर दिया गया तथा सम्पूर्ण जाति को, ब्राह्मण और अब्राह्मण दो भागों में विभाजित कर दिया गया।

इसके बाद ये उपजातियाँ कुकुरमुत्ते की भाँति बढ़ने लगीं। मूर्तिपूजा और मनुष्यपूजा ने तो पहले ही ९९९ धार्मिक श्रेणियों को जन्म दे दिया था, परन्तु प्रतीत होता है कि हिन्दू-समाज को विघटित करने के लिए यह पर्याप्त नहीं था और प्रमुख जातियाँ ९९,९९९ उपजातियों में विभाजित हो गईं। जब एक बार यह विघटन प्रारम्भ होता है तो उसे रोक सकना लगभग असम्भव होता है। प्रत्येक श्रेणी और प्रत्येक उपजाति दूसरों को तिरस्कार से देखने लगी और जो लोग राजनैतिक दृष्टि से पिछड़े हुए थे, उन्हें अपने-आपको 'उपजाति का' कहने-वालों ने घृणा की दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उत्तर भारत में अस्पृश्यता को जन्म मिला और दक्षिण भारत में तो उन्हें अदर्शनीय समझा जाने लगा तथा उन्हें दूर-दूर रक्खा जाने लगा।

तथाकथित पंचम

महाभारत-काल तक न तो वेदों में, और न ही शास्त्रों में पंचम वर्ण का कोई वर्णन उपलब्ध है। प्रतीत होता है कि बाद में अस्पृश्यों और दलितों को 'पंचम' नाम से पुकारा जाने लगा। महाभारत में कहा है—

स्मृताश्च वर्णाः चत्वारो पञ्चमो नाभिगम्यते।

विश्व के इतिहास में प्रथम बार इस प्रकार का अतुलनीय सामाजिक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक अत्याचार प्रारम्भ हुआ। सम्पूर्ण हिन्दू-समाज का एक-तिहाई भाग आजकल 'पंचम' वर्ग में रक्खा जाता है। इस तिहाई भाग में वे लोग सम्मिलित नहीं हैं जो कि उत्तर भारत में शूद्र कहलाते हैं। दक्षिण भारत में, ब्राह्मणेतरों को 'अ-ब्राह्मण' कहा जाता है और यह समझा जाता है कि इन्हें हिन्दुओं के धार्मिक संस्कारों का अधिकार प्राप्त नहीं है। आज के युग का अशिक्षित ब्राह्मण शिवाजी महाराज के परम्परागत उत्तराधिकारी कोल्हापुर के महाराज को भी, वैदिक संस्कारों के योग्य नहीं समझता। २४ करोड़ हिन्दुओं में से (जैसा कि मैं आगे दिखाऊँगा) केवल १,४२,५४,६९१ व्यक्ति ब्राह्मण हैं, लगभग ३½ करोड़ उच्च-वर्ण के समझे जा सकते हैं, शेष सबको ब्राह्मणों ने शूद्रों में गिन दिया है। और मनु का कहना है कि जिस देश में शूद्र बहुतायत से छा जाते हैं उस देश का अवश्य ही अध:पतन होता है।

यह 'पंचम' कहलानेवाले लोग ही गत ५० वर्षों से ईसाई मिशनरियों के शिकार हो रहे हैं। यही वह वर्ग है जिसमें से ईसाई समाज के लिए रंगरूट भरती होते हैं। भारत में वर्तमान समय में विद्यमान, ५० लाख ईसाइयों में लगभग ४७ लाख, पंचम वर्ग में से गये हुए हैं।

अस्पृश्य गिने जानेवालों की संख्या

सन् १९२१ की जनगणना के अनुसार बर्मा को छोड़कर ब्रिटिश भारत, बड़ौदा, ग्वालियर, मैसूर और ट्रावन्कोर जैसी प्रमुख रियासतों में अस्पृश्यों अथवा दलितों की संख्या ५,२६,८०,००० थी। 'सैन्सस ऑफ इण्डिया' के भाग १ पृष्ठ २२५ और २२६ पर इन संख्याओं की यथार्थता के सम्बन्ध में एक नोट देते हुए लिखा है—"इस प्रकरण में हिन्दुओं में 'दलित' कहे जानेवाले वर्ग को 'न्यूनतम' संख्याओं में और मोटे-मोटे रूप में ही अंकित किया गया है। प्रान्तीय संख्याओं के जोड़ने से यह संख्या लगभग ५ करोड़ ३० लाख तक जा पहुँचती है। तो भी यह ध्यान रखना चाहिए कि ये संख्याएँ न्यूनतम और अनुदार अंकन का परिणाम हैं क्योंकि इन संख्याओं में निम्न बातें समाविष्ट नहीं हैं—

(१) दलित वर्ग से सम्बद्ध जातियों, उपजातियों की ठीक-ठीक परिगणना और उनका शक्ति-सन्तुलन।

(२) वे आदिवासी जातियाँ जो कि अभी-अभी हिन्दुओं में समाविष्ट हो गई हैं और शूद्र नहीं गिनी जातीं। हम पूर्ण विश्वास के साथ अशुद्ध माने जानेवाले दलित वर्ग की संख्या ५½ करोड़ और ६ करोड़ के बीच कूत सकते हैं।"

इसमें पहाड़ों और जंगलों में रहनेवाली उन जातियों को भी गिना जा सकता है जो अपने-आपको 'हिन्दू' कहती हैं परन्तु उन्हें 'अज्ञेयधर्मी' गिना जाता है। इनकी संख्या के सम्बन्ध में 'सैन्सस रिपोर्ट ऑफ इण्डिया' का कहना है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आदिवासियों की ठीक-ठीक संख्या बता सकना सम्भव नहीं है, परन्तु पहाड़ों और जंगलों में रहनेवाली तथा उन्हीं स्थानों की निवासिनी समझी जानेवाली जातियों की तथा गोंड, संथाल और ओरायन आदि जातियों की संख्या, मोटे तौर पर १ करोड़ ६० लाख से कुछ अधिक है।" दलितों की जो संख्याएँ घोषित की गई हैं उनके मध्यमान $= \frac{५५० + ६००}{२} =$ ५७५ लाख में यदि पहाड़ों और जंगलों में रहनेवाली जातियों की १६० लाख संख्या जोड़ दी जाय, तो हिन्दुओं में निम्न वर्ग अथवा दलित और अस्पृश्य कहे जानेवालों की संख्या ७३५ लाख हो जाती है। इस प्रकार २३,६७,५४,५८४ हिन्दुओं में मोटे रूप में ७$\frac{१}{२}$ करोड़ उपर्युक्त लोग हैं, अर्थात् हिन्दू जनसंख्या का एक-तिहाई भाग उससे इस कारण पृथक् हो जाता है, क्योंकि ४० लाख का पुरोहिताई करनेवाला एक वर्ग एवं अपने को सनातनधर्मानुयायी कहनेवाले ब्राह्मण उनसे अमानुषिक व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। यहाँ मेरा अभिप्राय १४२ लाख ब्राह्मणों में से केवल ४० लाख से है, क्योंकि शेष तो अन्य नास्तिक कहे जानेवाले हिन्दुओं (यहाँ लेखक का अभिप्राय सुधारक हिन्दुओं से है—अनु०) की भाँति अस्पृश्यता को पूर्णरूप से समाप्त कर देने के लिए व्यग्र हैं। मैं जानना चाहता हूँ—क्या जागृत और शिक्षित १ करोड़ ब्राह्मणों की नैतिक सहायता से संगठित १५ करोड़ अब्राह्मण, अपने ७$\frac{१}{२}$ करोड़ सहधर्मियों का गोमांसाहारी धर्मवालों द्वारा अपहरण होने देंगे?

अस्पृश्यता प्रगति में बाधक है

हिन्दुओं में प्रचलित अस्पृश्यता का अभिशाप उनके सम्मान पर बट्टा है और उनके इस पाप का दुष्परिणाम सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र भुगत रहा है। जब कभी हमारे राजनैतिक नेता स्वराज्य की माँग पेश करते हैं तो उनके सामने उनके पापों को रखकर उनका मुँह बन्द कर दिया जाता है। जो लोग अपने ही समाज के एक-तिहाई लोगों को गुलाम बनाये हुए हों और उन्हें पैरों-तले कुचल रहे हों, उन्हें विदेशियों द्वारा किये गये अत्याचारों के विरुद्ध शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं है।

अछूत कौन हैं?

प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये अस्पृश्य अथवा अछूत कौन हैं? क्या वे दक्षिणी अफ्रीका के जुलु लोगों के देश से आये थे अथवा नरक की जलती हुई अग्नि में से बाहर धकेल दिये गये थे? कम-से-कम वे स्वर्ग से नहीं ही गिराये गये, यह तो उनकी अवस्था से भलीभाँति प्रकट है। यदि थोड़े धैर्य से और पक्षपातशून्य होकर खोज की जाय तो यह अच्छी प्रकार सिद्ध किया जा सकता है कि अछूतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के—और तो और, भंगियों और धेड़ों के भी—गोत्र वही हैं जो कि तीन उच्चवर्णी कहे जानेवाले सवर्ण हिन्दुओं के हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इनका भी मूल उद्गम-स्थान वही है जहाँ से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रकट हुए हैं। बहुत सम्भवत: उनके नैतिक पतन के कारण उन्हें सामाजिक दृष्टि से भी निम्न वर्ग में धकेल दिया गया। यदि वे अपने रहन-सहन को सुधार लेते हैं और नैतिक दृष्टि से ऊपर उठने लगते हैं तो उन्हें अपनी पुरानी स्थिति प्राप्त करने से कोई नहीं रोक सकता। यह एक सीधा-सादा सत्य है जिसकी हिन्दुओं ने शताब्दियों से उपेक्षा की है। महाप्रभु चैतन्य, कबीर, नानक, दादू, गुरु गोविन्द तथा कुछ अन्य सुधारकों ने हिन्दुओं के इस पाप के विरुद्ध आवाज उठायी, परन्तु उनकी वाणियाँ बहरे कानों में पड़ीं। तब एक बाल-ब्रह्मचारी का प्रादुर्भाव हुआ, और उसने गुंजायमान शब्दों से हिन्दुओं में कर्तव्य की भावना उत्पन्न की और सम्पूर्ण आर्य-जगत् की हड्डियों तक को कंपा दिया। यह सुधारक था

महर्षि दयानन्द सरस्वती

इसने प्रत्येक मनुष्य के समानाधिकार का दावा किया और समाज को गुण-कर्म के अनुसार चार वर्णों में विभाजित करने की आवाज उठाई। जब यह महान् आचार्य कार्य-क्षेत्र में उतरा तब हिन्दुत्व, धाराप्रवाह रूप में ईसाइयत में विलीन होता चला जा रहा था। उसने एक बुलन्द और आध्यात्मिक आवाज में रुकने का आदेश दिया और प्रवाहित होती धारा एकदम रुक गई। पथभ्रष्ट लोगों को पथ का निर्देश किया, देहरादून के मुंशी मुहम्मद उमर को पुन: ग्रहण करके अलखधारी नाम रक्खा। इसके बाद तो उन सैकड़ों हिन्दुओं को—जो कि लालच आदि द्वारा सार्वजनिक वैदिक अक्षय वृक्ष की छाया से दूर हटा दिये थे—पुन: आर्य-धर्म में खींच लिया।

परिणामत: उच्चवर्ग के हिन्दुओं का, विरोधी धर्मों में प्रवेश एक भूतकालीन वस्तु हो गई। जब महर्षि दयानन्द ब्रह्मधाम को प्रस्थान कर गये तो आर्यसमाज ने अपने आचार्य के काम को उठाया। तब ईसाई मिशन ने दुराग्रही हिन्दुओं द्वारा पीड़ित अछूतवर्ग को पॉल के धर्म में परिवर्तित करने का सोचा। यह एक सरल और सीधा-सादा कार्य था। एक बार रामचरण चमार की चोटी कटी, उसके माथे पर पानी से क्रॉस के चिह्न बनाये गए, उसने गोमांस खाना शुरू कर दिया, उसका नाम पीटर, जॉन अथवा पॉल रख दिया गया, उसे उसी कालीन पर बैठने का अधिकार प्राप्त हो गया, उसी कुएँ से पानी खींचने का अधिकार मिल गया जिनका उपयोग सवर्ण हिन्दू करते हैं; और तो और, वह ब्राह्मणों से हाथ भी मिलाने लगा। चमार, धेड़, डोम और पारसी हजारों की संख्या में ईसाइयत को अपनाने लगे। तब इस समस्या की ओर आर्यसमाज का ध्यान आकृष्ट हुआ, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज ने इन पथभ्रष्ट लोगों को इनके पथ पर लाना शुरू किया तथा समाजियों ने लोगों को प्रश्रय और अभय देना, अपने धर्म को छोड़कर जानेवाले दलितों को शुद्ध करना आरम्भ कर दिया।

इस शुद्धि-आन्दोलन का कट्टर हिन्दुओं द्वारा प्रबल विरोध किये जाने के कारण यह प्रतीत होने लगा कि अछूतोद्धार का कार्य लगभग असम्भव हो जायेगा। परन्तु आर्यसमाज ने हल पर अपना दृढ़ हाथ रखकर भूमि को सुधार के बीज बोये जा सकने योग्य बनाना नहीं छोड़ा। सबसे प्रथम रहतियों की सामूहिक शुद्धि की गई। यह एक सिक्खों का वर्ग था, परन्तु खालसा लोग भी इन्हें अपने साथ दरी पर बैठने का अधिकार नहीं देते थे। सिक्ख-धर्म के संस्थापक श्री गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं इस वर्ग को 'कृपाण' द्वारा तैयार अमृत पिलाकर सिख-धर्म में दीक्षित किया था। सन् १८९६ के मध्य में इस वर्ग के लोगों ने अपनी शुद्धि के लिए प्रार्थना की और अगले कुछ मासों में एक हजार से भी अधिक व्यक्ति आर्य-समाज में, भाइयों के रूप में प्रविष्ट कर लिये गए। इन लोगों को पूर्ण सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्रदान किये गए। पहले-पहले तो आर्यसमाजियों को अनेक कष्ट दिये गए, और आर्यसमाजियों का सामाजिक एवं जाति-बहिष्कार किया गया, परन्तु १८९८ के अन्त तक यह विरोध-भाव समाप्त हो गया और लगभग एक हजार रहतिए हिन्दू समाज में खपा लिये गए।

१९०२ में आर्यसमाज ने स्यालकोट (पंजाब) में मेघों के उद्धार का प्रश्न अपने हाथ में लिया। इन मेघों को भी अछूत समझा जाता था। पहले तो यहाँ भी इस कार्य का तीव्र विरोध किया गया। हिन्दुओं द्वारा इन नये आर्यसमाजियों को पीड़ित करने के कार्य में मुसलमान भी सम्मिलित हो गए थे, परन्तु जब १½ लाख से भी अधिक व्यक्ति अन्य आर्यों के समान अधिकार भोगने लगे तो यह विरोध अपनी प्राकृतिक मृत्यु से मर गया। और तब मुजफ्फरगढ़ और मुलतान जिले के ओड़, पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों के डोम हजारों की संख्या में शुद्ध किये गए एवं मेघों के उद्धार के लिए जम्बू और काश्मीर रियासत में तथा अन्यत्र आन्दोलन किया गया, परिणामत: ४० हजार से भी अधिक आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गए और अब तक वे आते जा रहे हैं। इस प्रकार पंजाब पथप्रदर्शन करता रहा है, और पिछली 'सैंसस रिपोर्ट' (१९२१) से पता चलता है कि संयुक्त-प्रान्त के आगरा और अवध का ईसाई मिशन इस बात की शिकायत करने लगा है कि उनके द्वारा संचालित धर्म-परिवर्तन के कार्य में आर्यसमाजियों द्वारा रुकावटें डाली जाती हैं।

दिल्ली तथा उसके आस-पास, आर्यसमाज उन सैकड़ों अछूतों को पुनः हिन्दू-धर्म में ले आया जो केवल नाम-मात्र के ईसाई थे। हजारों धनकों, चमारों, रेगड़ों और भंगियों तक को भविष्य में ईसाइयों के होनेवाले आक्रमणों से बचा लिया। ईसाई मिशनरियों ने तो निराश होकर यह धर्म-परिवर्तन का कार्य ही

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ दिया होता, यदि उन्हें अप्रत्याशित रूप से सहायता न मिल गई होती।

हिन्दुओं के सामूहिक रूप से धर्म-परिवर्तन के लिए अत्यधिक उत्साही होते हुए भी मुसलमानों को अपना यह काम छोड़ देना पड़ा और उनका यह कार्य भाग्य के सहारे अति सूक्ष्म ढंग से होने लगा। सैंसस रिपोर्ट से यह स्पष्ट हो जाता है कि १९११ से पंजाब में तथा अन्यत्र, मुसलमान भंगियों की संख्या कम हो गई है जबकि अनुपात से हिन्दू भंगियों की संख्या बढ़ गई है। संयुक्त प्रान्त के सम्बन्ध में १९११ की सैंसस रिपोर्ट के पृष्ठ ५४ पर कहा गया है—'इस्लाम में धर्म-परिवर्तन के उदाहरण इतने विरल हैं कि उनकी उपेक्षा की जा सकती है'। परन्तु असहयोग-आन्दोलन के पूर्ण यौवन के दिनों में जब महात्मा गांधी ने स्वराज्य प्राप्त करने की शर्तों में एक यह भी शर्त रख दी कि अछूत वर्ण को हिन्दुओं में पूर्णरूप से मिला लिया जाय और उनका उद्धार किया जाय तो मुसलमान नेताओं ने इसे एक स्वर्ण अवसर समझा और हिन्दू अछूतों को इस्लाम में दीक्षित करने का एक आयोजन प्रारम्भ कर दिया।

मेरे लिए तो अस्पृश्यता के अभिशाप को उखाड़ फेंकना भारतीय राष्ट्रीयता की सुरक्षा के लिए एक आवश्यक शर्त है। अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के ३४वें अधिवेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्षपद से २७ दिसम्बर १९१९ को अमृतसर में बोलते हुए मैंने राष्ट्रीयता को संकट में से निकालने के लिए, राष्ट्रीय शिक्षण और अस्पृश्यता-निवारण इन दो साधनों पर बल दिया था। अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में मैंने कहा था—

"राष्ट्र में एक वस्तु की कमी है, वह क्या है? मुक्ति-सेना (सॉल्वेशन आर्मी) के जनरल बूथटकर ने 'सुधार योजना-समिति' के सम्मुख अपने वक्तव्य में कहा था कि ६½ करोड़ भारतीय अछूतों को विशेष सुविधा दी जानी चाहिए क्योंकि वे ब्रिटिश सरकार के आधार-स्तम्भ हैं। मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप इस वक्तव्य के अन्तस्तल में घुसकर जानने का प्रयत्न करें कि ये ६½ करोड़ अछूत, सरकार के आधार-स्तम्भ कैसे बन सकते हैं? जबकि आप इस पवित्र पण्डाल में इकट्ठे हुए हैं तो मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप यह शपथ उठायें कि इन अछूतों के प्रति आपका व्यवहार इस प्रकार का हो कि उनके बच्चे आपके बच्चों के साथ कॉलेज और स्कूलों में पढ़ सकें, आप इन्हें अपने परिवारों में उसी प्रकार घुलने-मिलने दीजिये जिस प्रकार आप स्वयं अपने परिवारों में घुलते-मिलते हैं; इसका परिणाम यह होगा कि वे आपकी राजनैतिक प्रवृत्तियों और प्रगति में आपके साथ अपने कन्धे भिड़ाकर चल सकेंगे। देवियो और सज्जनो! आप मेरे साथ मिलकर हृदय से प्रार्थना कीजिये कि मेरा यह स्वप्न सत्य सिद्ध हो! ..."

अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन के बाद मैंने गुरुकुल का कार्य सँभाल लिया, परन्तु जब कांग्रेस का कलकत्ते में विशेष अधिवेशन हुआ तो मैं केवलमात्र इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण उसमें सम्मिलित हुआ क्योंकि मैंने स्वागत-समिति को एक प्रस्ताव भेजा हुआ था, जिसमें उस महान् राष्ट्रीय असेम्बली से यह प्रार्थना की गई थी कि वह कांग्रेसी प्रोग्रामों की सूची में अछूतोद्धार के कार्यक्रम को सम्मिलित कर ले। परन्तु दुर्भाग्य से उस प्रस्ताव पर विषय-समिति तक में विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

नागपुर के कांग्रेस-अधिवेशन से पूर्व महात्मा गांधी मद्रास गए थे। वहाँ दलित-जाति के लोगों ने, अपनी स्थिति के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रश्न गांधी जी से किये कि वे हकला गए और उसके बाद स्वराज्य-प्राप्ति के लिए यह भी एक शर्त लगा दी कि १२ मास के अन्दर-अन्दर अस्पृश्यता दूर कर दी जानी चाहिए।

गुरुकुल का प्रबन्ध दूसरे हाथों में सौंपकर जब मैं १५ अगस्त १९२१ को दिल्ली पहुँचा तो दलितों का प्रश्न उग्ररूप धारण कर चुका था। तब मैंने दिल्ली में दलितोद्धार-सभा का संगठन किया और महात्मा गांधी को कार्यसमिति से आर्थिक सहायता दिलाने के लिए तार दिया। परन्तु बाद में मुझे पता लगा कि कांग्रेस इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकती, और ९ सितम्बर १९२१ को मैंने एक पत्र हिन्दी में महात्मा जी को लिखा था, उसका कुछ भाग इस प्रकार है—

"मैंने लाहौर से तार दिया था कि मैं चाहता हूँ कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के द्वारा आर्थिक सहायता दी जाय, परन्तु दिल्ली पहुँचने पर मुझे ज्ञात हुआ कि कांग्रेस के लिए अछूतोद्धार-कार्य के लिए व्यय करना असम्भव है। दिल्ली और आगरा के चमारों की केवलमात्र यह माँग थी कि उन्हें उन कुओं से पानी भरने दिया जाय, जिनसे हिन्दू और मुसलमान दोनों पानी भरते हैं और उन्हें पानी पत्तों द्वारा न पिलाया जाया करे। मैं अनुभव करता हूँ कि कांग्रेस-कमेटी के लिए केवल इस माँग को भी पूरा करा सकना सम्भव नहीं है। केवल इतना ही नहीं मैंने जिस कांग्रेसी मुसलमान से इस कार्य के लिए सहायता माँगी, उसने उत्तर दिया कि यदि सार्वजनिक कुओं से हिन्दुओं ने अछूतों को पानी भरने की आज्ञा दे भी दी, तो मुसलमान उन्हें बल-प्रयोग द्वारा कुओं से भगा देंगे क्योंकि चमार मुर्दा पशुओं का मांस खाते हैं। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि इन चमारों में से हजारों शराब और मांस को छूते भी नहीं हैं, और जिन्हें मुर्दा-मांस खाने की लत पड़ भी गई है अब वे भी आर्यसमाज के प्रचार के परिणामस्वरूप अपनी इस आदत को छोड़ते जा रहे हैं। मैंने यह पत्र आपको केवल सूचना देने के लिए लिखा है कि अब, मैं कांग्रेस कार्यसमिति से आर्थिक सहायता के लिए प्रार्थना नहीं कर सकता। मैं अपने सीमित स्रोतों के अनुसार जो कुछ कर सकता हूँ, वह सब करूँगा।"

एक अवसर और उपस्थित हुआ जब मैंने लखनऊ में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन के समय यह प्रयत्न किया कि कांग्रेस सच्चे हृदय से अस्पृश्यता-निवारण के प्रश्न को अपने हाथ में ले ले, परन्तु इस पत्र-व्यवहार का कुछ परिणाम नहीं निकला। इस पत्र-व्यवहार को मैंने 'माई पार्टिंग एडवाइस' के नाम से कुछ समय पूर्व प्रकाशित कर दिया था और वहाँ देखा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण ५

तृतीय कारण

बाल-विवाह और पददलित स्त्री-समाज

"हे ब्रह्मन् ! हमारे राष्ट्र में ज्ञानवान् ब्राह्मण उत्पन्न हों, बाण चलाने में कुशल, शत्रुओं को ताड़ना देनेवाले महारथी निर्भयी राजपुत्र उत्पन्न हों, दूध से तृप्त करनेवाली गौएँ, भार उठाने में समर्थ बैल, शीघ्रगामी घोड़े, व्यवहार-कुशल स्त्रियाँ, रथ पर स्थिर रहने एवं शत्रुओं को जीतनेवाले सभ्य युवा पुरुष उत्पन्न हों, हमारे राजा के घर में वीर पुरुष उत्पन्न हों, जिस-जिस कार्य के लिए हम प्रयत्न करें उस-उस कार्य में मेघ वर्षा करें, हमारे लिए ओषधियाँ फलवाली होकर पकें, हमारे लिए कल्याणकारक विधान करो।"

आज से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व, जब से कि हमारी संस्कृति और सभ्यता का पतन आरम्भ हुआ है, प्रत्येक घर और प्रत्येक यज्ञशाला में उपर्युक्त प्रार्थना की जाती थी। यह प्रार्थना प्रत्येक स्त्री और पुरुष के हृदय से निकलती थी। इस प्रार्थना का वाणी से उच्चारण होता था और क्रियात्मक रूप से अनुसरण किया जाता था।

भगवान् द्वारा प्रदत्त ज्ञान और सत्य के उपदेष्टा (अर्थात् सच्चे ब्राह्मण) कैसे पैदा किये जा सकते हैं, समाज के रक्षक क्षत्रियों को किस प्रकार शक्ति से विभूषित किया जा सकता है कि वे अधर्म का नाश कर सकें, समाज के नेता किस प्रकार यज्ञों को पूर्ण कर सकते हैं कि समय पर वर्षा हो और अन्न, फल तथा वनस्पति की उत्पत्ति द्वारा जनसामान्य का ठीक-ठीक पोषण हो? 'वेद' और जीवन-विज्ञान के अनुसार इसका एकमात्र यही उत्तर हो सकता है, और वह उत्तर हमारे समाज के प्रथम कानून-निर्माता मनु के शब्दों में है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ ३।५६

जिस समाज में नारियों का आदर-सत्कार किया जाता है वहाँ देवताओं का निवास होता है (अर्थात् वहाँ सत्य, पवित्रता, सुख, शान्ति और सम्पदा का निवास होता है) परन्तु जहाँ उनका निरादर किया जाता है वहाँ सम्पूर्ण क्रियाएँ असफल होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक समाज में स्त्रियों का स्थान 'देवी' के रूप में था और वे अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों में भाग बँटाती थीं तब तक प्राचीन आर्यावर्त्त संसार का गुरु बना रहा। सम्पूर्ण विश्व में आर्यों की समाज-व्यवस्था का अनुकरण किया जाता था और इस प्रकार यह प्राचीन देश सच्चे अर्थों में 'आर्यावर्त्त' कहा जाता था। हमारे प्रथम स्मृतिकार के शब्दों में—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मना।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥२।२०

सम्पूर्ण विश्व के निवासी ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर सभ्यता का पाठ पढ़ने के लिए इस देश में आते थे। उस समय कोई भी व्यक्ति आत्मविनाश को निमन्त्रण दिये बिना आर्य देवियों को कामातुर चक्षुओं से नहीं देख सकता था, कोई भी पापी दण्ड पाये बिना नहीं बच सकता था। परन्तु जब हममें से ही अभिमान और लम्पटता में चूर होकर दुःशासन जैसे राक्षस पैदा हो गए और समाज की द्रौपदियों के सतीत्व पर आक्रमण करने लगे तो महाभारत के युद्ध का जन्म हुआ; इसने न केवल हमारी पवित्रता और पराक्रम को नष्ट कर दिया, अपितु सच्चा ब्राह्मणत्व और रक्षक क्षात्र-धर्म भी नष्ट हो गया। तब वाम-मार्गियों ने गुप्तरूप से आमोद-प्रमोद के आयोजन आरम्भ किये, परिणामतः समाज अव्यवस्थित हो गया। देश के विभिन्न भागों में छोटे-छोटे राजा उठ खड़े हुए और वे ईर्ष्या और द्वेषवश एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगे। उनका एक-मात्र यदि कोई आदर्श था, तो वह था विजित प्रदेशों का उपभोग और सामाजिक अव्यवस्था को जन्म देना।

सारांश यह है कि लगभग १३०० वर्ष पूर्व हर्षवर्धन के राज्यकाल के समय भारत की अवस्था यह थी—"बाल-विवाह एक अज्ञात वस्तु थी, इसलिए बाधित वैधव्य नहीं था और हिन्दू समाज की शान्ति में कोई खलल नहीं पैदा हुआ।" परन्तु जब अत्यन्त संगठित रूप से, सुदृढ़ धार्मिक श्रद्धा से और पूर्ण पौरुष के साथ मुस्लिम आक्रान्ताओं ने इस देश पर आक्रमण करके असंगठित हिन्दू शत्रुओं को पराजित कर दिया तो हिन्दू नवयुवतियाँ विजेताओं की कामुकता का शिकार होने लगीं। उत्तर भारत के कुलाचारभ्रष्ट हिन्दुओं ने हिन्दू घरों पर मुस्लिम गाजियों के आक्रमणों से बचने के लिए बाल-विवाह और पर्दे जैसी अप्राकृतिक वस्तुओं को रिवाज के रूप में अपने समाज में ग्रहण कर लिया। छोटी-छोटी कन्याओं का छोटे-छोटे लड़कों से ब्याह होने लगा और कभी-कभी तो उदरस्थ बच्चों का वाग्दान कर दिया जाता था।

वह निरंकुश और निर्दयी मुसलमानी शासन अब भूत की वस्तु हो गया है। हिन्दू समाज की जीवनीशक्ति को नष्ट करनेवाली सामाजिक कुरीतियों को समाप्त कर देने के लिए परिस्थितियाँ गत ८० वर्ष से अनुकूल हैं। परन्तु रिवाज के जाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जकड़ा हुआ हिन्दुत्व अभी तक सोया हुआ है और हिलने तक में आपत्ति करता है। भारत के दूरतम कोने तक हिन्दुओं में अब भी बालविवाह प्रचलित है। १९२१ की जनगणना की निम्न तालिका के अनुसार मैसूर राज्य में सनातनी हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों में तुलनात्मक दृष्टि से बालविवाह का प्रचलन इस प्रकार था—

५ वर्ष की आयु से पूर्व विवाह हुए

	लड़के	लड़कियाँ
हिन्दू	७५	१२८
ईसाई	×	१
मुसलमान	२	२

५ से १० वर्ष की आयु में विवाह हुए

	लड़के	लड़कियाँ
हिन्दू	४२४	२८५१
ईसाई	१	५
मुसलमान	६	२७

कुल ५५ लाख निवासियों में से लगभग ३॥ लाख मुसलमान हैं और एक लाख ईसाई तथा अन्य सम्प्रदाय हैं। यदि मुसलमानों और ईसाइयों में भी बाल-विवाह उसी प्रकार प्रचलित होता जिस प्रकार हिन्दुओं में है तो उन दोनों सम्प्रदायों में दस वर्ष की आयु तक ब्याहे गये लड़के और लड़कियों की कुल संख्या ३४७८ (यह संख्या दस वर्ष की आयु तक व्याहे गये हिन्दू बच्चों की है) का ग्यारहवाँ भाग होती अर्थात् लगभग ३१६ होती। मुसलमान और ईसाइयों में दस वर्ष की आयु तक व्याहे गये बच्चों की कुल संख्या ४४ तक ही पहुँचती है।

जैसा कि जनगणना के प्रतिवृत्तों से प्रकट है इसका परिणाम सम्पूर्ण भारत में भयंकर रूप से दिखाई दिया है। १९२१ की जनगणना के अनुसार पौराणिक कट्टर हिन्दुओं में आर्यसमाजियों, ब्रह्मसमाजियों, सिखों, जैनियों और बौद्धों को पृथक् कर देने के बाद बालविधवाओं की ठीक संख्या निम्न प्रकार से है—

आयु	कुल विधवाएँ
०—१	५९७
१—२	४९४
२—३	१,२५७
३—४	२,८३७
४—५	६,७०७
५—१०	९५,०३७
१०—१५	२,३३,१४७
१५—२०	३,९६,१७२
कुल संख्या	७,३६,२४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये संख्याएँ भयंकर रूप से स्तब्ध कर देनेवाली हैं। ७½ लाख विधवाओं में से हजारों की संख्या में विधवाएँ सतीत्व का जीवन व्यतीत करती हैं और सम्भवतः यह उनकी तपस्या का ही फल है कि हिन्दू समाज आज भी अपनी सत्ता को स्थिर रक्खे हुए है। परन्तु प्रबल बहुमत उन्हीं का है जो कि अपने घरों को छोड़ने के लिए इस कारण बाधित हुई हैं क्योंकि उन्हीं के सगे स्त्री-पुरुष सम्बन्धियों ने उनपर अकथनीय अत्याचार किये अथवा कामुकतापूर्ण आक्रमण किये। और, उन्हें या तो मुसलमानों का आश्रय लेना पड़ा अथवा वेश्याओं को जन्म देना पड़ा। इस प्रकार एक ओर तो उनके कारण हिन्दुओं की संख्या कम हो गई, दूसरी ओर गोमांसाहारी समाज की संख्या और शक्ति वढ़ गई।

केवलमात्र यही एक बुराई नहीं है जो इस प्रकार बढ़ गई है। परन्तु यदि एक विवाहित छोटी आयु की लड़की विधवा नहीं हो पाती तो उसका गर्भाधान उपयुक्त आयु से पूर्व हो जाता है और वह दुर्बल बच्चों को जन्म देती है। इसी वस्तु ने हिन्दुओं को एक दुर्बलों की जाति बना रक्खा है। आयुर्वेद के हिन्दूशास्त्रों ने इस व्यवस्था की घोर निन्दा की है। सुश्रुत के ८वें अध्याय के ४७ और ४८वें श्लोक में भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं—

ऊनषोडशवर्षायामवाप्तः पञ्चविंशतिम्,
यद्याधित्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

यदि १६ वर्ष से कम आयु की लड़की २५ वर्ष से कम आयुवाले पुरुष से गर्भाधान कराती है तो प्रायः गर्भपात हो जाता है, और यदि गर्भपात नहीं होता तो बच्चा बहुत देर तक जीवित नहीं रहता, यदि जीवित रह भी जाता है तो वह अत्यन्त दुर्बलेन्द्रिय होता है, इसलिए बहुत छोटी आयु की बाला का गर्भाधान नहीं कराना चाहिए।

महामुनि धन्वन्तरि ने १६ वर्ष से कम आयु की कन्या को 'अत्यन्तबाला' कहा है। परन्तु हिन्दू समाज में प्रतिदिन १३ वर्ष और कभी-कभी तो १२ वर्ष की कन्या को एक बच्चे के साथ देखा जा सकता है और तब भी उस समाज के अन्तःकरण पर कोई चोट नहीं लगती। इसका परिणाम यह हो रहा है कि मुसलमान द्विगुणित और त्रिगुणित होते जा रहे हैं जबकि हिन्दुओं की जनसंख्या उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। १९११ के जनगणना-सम्बन्धी प्रतिवृत्त में कहा गया है—

"गत दशाब्दि में मुसलमानों की संख्या ६·७ प्रतिशत बढ़ गई है जबकि हिन्दुओं की ५ प्रतिशत ही बढ़ी है। इसमें एक कारण यह भी है कि हिन्दुओं तथा अन्य धर्मों से लोग थोड़े-थोड़े परन्तु निरन्तररूप से इस्लाम में दीक्षित हो रहे हैं, परन्तु इस अपेक्षाकृत वृद्धि का प्रमुख कारण यह है कि पैगम्बर के अनुयायियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजनन-शक्ति का बाहुल्य है। इसका एक आंशिक कारण यह भी हो सकता है कि उनका भोजन अधिक पौष्टिक होता है, परन्तु प्रमुख कारण यह है कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की सामाजिक रीतियाँ जनसंख्या को बढ़ाने में अधिक उपयुक्त और अनुकूल हैं। मुसलमानों में विवाह-सम्बन्धी प्रतिबन्ध अपेक्षाकृत कम हैं, बालविवाह का प्रायः अभाव है और विधवाएँ बहुधा पुनर्विवाह कर लेती हैं।

"मुसलमानों में अपेक्षाकृत अधिक प्रजनन-शक्ति है इसकी पुष्टि इसी से हो जाती है कि १५–४० वर्ष की आयु की कुल स्त्रियों में मुसलमानी विवाहित स्त्रियों की संख्या अनुपाततः अधिक है जबकि हिन्दू विवाहित स्त्रियों की संख्या कम है। इसी का परिणाम यह है कि १५–४० वर्ष के प्रत्येक मुसलमान व्यक्ति के पीछे ५ वर्ष तक की आयु के ३७ बच्चे हैं जबकि हिन्दुओं में केवल ३३ हैं। १८८१ से अबतक मुसलमानों की संख्या में २६·४ प्रतिशत वृद्धि हुई है और हिन्दुओं में १५·१ प्रतिशत ही बढ़ती हुई है।

संक्षेप में सार यह है कि हिन्दुओं की तुलनात्मक दृष्टि से अवनति का मुख्य कारण बालविवाह और बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह न होना है। इस सबसे बढ़कर, हिन्दू-मुसलमानों के बीच दंगों और द्वेष का एक कारण हिन्दू बाल-विधवाओं की समस्या भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण ६

चौथा कारण

आश्रमधर्म का भंग

सनातन वैदिक धर्म की शिक्षाओं के अनुसार सामान्य मनुष्य की जीवन-अवधि सौ वर्ष समझी जाती थी। इसे २५ वर्ष के चार समान भागों में विभक्त किया जाता था। जीवन की इस सामान्य अवधि को विधिवत् जीवनयापन द्वारा तथा विशेष साधनों द्वारा ३०० वर्ष तक और कभी-कभी ४०० वर्ष तक खींचा जा सकता था। इसे सामान्य रूप से इन चार भागों में विभक्त किया जाता था—(१) ब्रह्मचर्य अथवा विद्यार्थी जीवन, (२) गृहस्थ जीवन, (३) वानप्रस्थ जीवन अर्थात् चरित्र की कमियों को पूरा करने के लिए साधु जीवन व्यतीत करना एवं अध्यात्मविद्या तथा चिन्तन का अभ्यास, (४) संन्यास जीवन अर्थात् सम्पूर्ण सांसारिक सम्बन्धों को समाप्त करके विश्वभर में सत्य और सदाचार का प्रचार करना तथा त्यागमय जीवन व्यतीत करना।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि आश्रमधर्म की सम्पूर्ण रचना एक ही चूल पर लटक रही है और वह है ब्रह्मचर्य। जब तक इन्द्रियाँ विधिवत् और उपयुक्त ढंग से अभ्यस्त न हो जायँ और शरीर की भौतिक वृद्धि समरस न हो, कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, स्मृति और अहंकार अपने नियन्त्रण में न हों, तब तक मनुष्य-जीवन का उत्तरभाग (अर्थात् शेष तीन आश्रम) समरस रूप में और प्राकृतिक नियमों के अनुरूप नहीं व्यतीत हो सकता।

प्राचीन भारत में लड़कों और लड़कियों के लिए पृथक्-पृथक् ब्रह्मचर्य-आश्रम थे और इनमें शारीरिक और बौद्धिक शिक्षण होता था। भारत में बौद्धकाल तक में युवकों का शिक्षण किस प्रकार होता था यह नालन्दा और तक्षशिला के अवशेषों से प्रकट है। ये शिक्षणालय गुरुकुल कहलाते थे क्योंकि आचार्य विद्यार्थियों का स्थानापन्न माता-पिता होता था। एक समय था जबकि उच्चवर्ग के वयस्क हिन्दू गुरुकुल शब्द से ही अपरिचित थे और शिक्षित भारतीय गुरुकुल शिक्षण-पद्धति के प्रवर्तकों के प्रयत्नों को व्यंग-दृष्टि से देखते थे। परन्तु अब यह भूत की वस्तु हो गई है। प्रत्येक भारतीय और प्रगतिशील विदेशी भी ब्रह्मचर्य को समझता है, इसलिए इसके अधिक विस्तार में जाना निरर्थक है। इतना कहना ही पर्याप्त है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ब्रह्मचर्य के यथार्थ तत्त्व के लुप्त होने पर हिन्दू जाति की जीवनी शक्ति समाप्त हो गई और ये संसार के साहसी अभियात्रियों की महत्त्वाकांक्षाओं की शिकार हो गई।

भगवान् धन्वन्तरि ने लड़कों के लिए विवाह-योग्य आयु २५ वर्ष और कन्याओं के लिए १६ वर्ष नियत की है। उस महामुनि का कहना है :

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वा गतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक् ॥ ३५।२५

विवाह के लिए पुरुषों की न्यूनतम आयु २५ वर्ष और स्त्रियों के लिए १६ वर्ष निर्धारित की गई है। परन्तु यह तो ब्रह्मचर्य के निमित्त आवश्यक उपायों में से एक है। एक निर्दिष्ट आयु तक अविवाहित रहना व्यर्थ होगा यदि शारीरिक और मानसिक अभ्यास द्वारा मनोवृत्तियों पर नियन्त्रण नहीं किया जाता, उपयुक्त चिन्तन और परिश्रम द्वारा इन्द्रियों को वश में नहीं किया जाता और 'उच्च विचार तथा सादा जीवन' की एक उक्ति को चरितार्थ नहीं किया जाता। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए शिक्षण के वर्तमान स्वरूप में पूर्णरूप से परिवर्तन कर देना होगा। वस्तुत: आर्यसमाजियों में इस प्रकार के प्रयत्न आरम्भ हो गए हैं; प्राचीन विचारों के कट्टर सनातनियों में भी हलचल प्रारम्भ हो गई है; जैनियों ने भी इनका अनुसरण किया है। परन्तु हिन्दू जाति को प्राचीन भौतिक और नैतिक शक्ति प्राप्त कराने के लिए संगठित और प्रचंड प्रयत्नों की आवश्यकता है।

वेदों की आज्ञा है कि विवाहित युगल केवलमात्र स्वस्थ संतानोत्पत्ति के लिए ही सहवास करें। २५ वर्ष के वैवाहिक जीवन में उन्हें केवल दस बच्चे ही उत्पन्न करने चाहिएँ, गर्भधारण के समय से लेकर ढाई वर्ष का समय प्रत्येक बच्चे के पालन-पोषण के लिए रहना चाहिए, इस समय में युगल को सम्भोग से सदा दूर रहना चाहिए। परन्तु आज का हिन्दू समाज वर्तमान सभ्य कहे जानेवाली दुनिया के पीछे भागा जा रहा है और कानून-सम्मत वेश्यावृत्ति हमारे राष्ट्र के शारीरिक और नैतिक स्वास्थ्य को नष्ट करती जा रही है।

आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने आर्यशास्त्रों के आधार पर शिक्षकों और विद्यार्थियों के पथप्रदर्शन के लिए ठोस परामर्श दिया है—

'शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने शिष्यों के हृदयों में ठोस और उपयुक्त शिक्षाएँ भरते रहें। इस बात की विशेष सावधानी रक्खें कि ब्राह्मणों के अतिरिक्त राजकुमारों, क्षत्रियों, वैश्यों और प्रतिभाशाली शूद्रों की शिक्षण में उपेक्षा न हो। क्योंकि यदि अकेले ब्राह्मणों का ही शिक्षण होगा तो विज्ञान, धर्म, राजनीति, सम्पत्ति किसी में भी हमारी प्रगति न होगी। कारण यह है कि ब्राह्मणों को, जिनका प्रमुख कार्य शिक्षा प्राप्त करना और शिक्षण देना है, अपनी आजीविका के लिए क्षत्रिय आदि वर्णों पर निर्भर रहना पड़ता है और उन्हीं के लिए वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रकार और कानून-निर्माता हैं। इस कारण ब्राह्मणों को सभी बाधाओं तथा क्षत्रिय आदि वर्णों के भय से मुक्त होना चाहिए और ये वर्ण अशिक्षित होने पर ब्राह्मणों या प्रदत्त शिक्षणों की यथार्थता और अयथार्थता को जाँचने में असमर्थ होंगे। वे ब्राह्मण अवसर पाकर अपनी शक्ति का उपयोग अपने स्वार्थों के लिए करने लगेंगे, छल-कपट और पाखण्ड करने लगेंगे और जो चाहेंगे वही करेंगे; इन्हें उदाहरण बनाकर अन्य वर्ग भी तब अनुसरण करने लगेंगे। परन्तु जब क्षत्रिय तथा अन्य वर्ग भी अच्छी प्रकार शिक्षण प्राप्त करेंगे तो अन्य वर्गों में अपनी स्थिति को उच्च बनाये रखने के लिए गम्भीरता और प्रयत्नपूर्वक अध्ययन करेंगे और सत्य मार्ग का अनुगमन करेंगे। तब वे अनुपयुक्त शिक्षण नहीं कर सकेंगे और न ही स्वार्थमय एवं पाखण्डमय जीवन बिता सकेंगे। इसलिए उन्हें तो न केवल अपने लिए अपितु सम्पूर्ण जाति के कल्याण के लिए क्षत्रिय आदि अन्य वर्णों को वेद, विज्ञान, दर्शन आदि विद्याओं का शिक्षण देना चाहिए... जब सभी वर्ग सुशिक्षित और सुसंस्कृत होंगे तो कोई भी असत्य, कपटतापूर्ण और अधार्मिक कृत्यों पर आचरण न करेगा।"

कठोर रूप से ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन किये बिना ठोस शिक्षण असंभव है। उपयुक्त संगठन तब तक असम्भव है जब तक जाति में इच्छा और जीवन न हो, उसके सन्मुख उद्देश्य न हो, उसमें पूजा की भावना न हो और जीवन-यापन की एक विशिष्ट पद्धति न हो। ब्रह्मचर्य के विच्छेद से हमारा राष्ट्रीय जीवन अस्तव्यस्त हो गया, जाति-भेद दृढ़ हो गया, शास्त्रों की उपेक्षा होने लगी और आर्यसंस्कृति समाप्त हो गई। जब गुरुकुल शिक्षण-पद्धति का पुनरुद्धार कर दिया जायगा तो ब्रह्मचर्य पुनर्जीवित हो उठेगा और तब पतनोन्मुख हिन्दू समाज की गति को रोक लग जाएगी— यह हम सहज ही विश्वास कर सकते हैं।

हिन्दू सुधारकों द्वारा प्रस्तुत उपचार

उत्तर भारत में कबीर और नानक ने, दक्षिण भारत में अन्य साधु-सन्तों ने समय-समय पर हमारी विच्छिन्न होने की प्रवृत्तियों को रोकने का प्रयत्न किया तथा समाज के अन्दर घुसी हुई धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को सुधारने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके सम्पूर्ण प्रयत्न एकांगी और संकुचित सिद्ध हुए। पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह ने और महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी ने तलवार उठाई और भारत को विदेशी दासता से मुक्त करने का राजनैतिक दृष्टि से प्रयत्न किया। परन्तु अपने दास देश को मुक्त करने के उनके प्रयत्न खिलती हुई कली को काट देने के समान सिद्ध हुए और एक तीसरी शक्ति आ कूदी, यह तीसरी शक्ति केवल शारीरिक शक्ति में ही आगे नहीं बढ़ी हुई थी अपितु कूटनीतिक दाँव-पेचों में अद्भुत रीति से अभ्यस्त, संगठन-दृष्टि से सुदृढ़ और देशभक्ति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना से परिपूर्ण थी।

कुछ समय के लिए प्रतीत होने लगा कि ब्रिटिश लोगों ने कानून और व्यवस्था लागू करके भारत को अस्तव्यस्त तथा विच्छिन्न होने से बचा लिया है, परन्तु समय ने सिद्ध कर दिया कि विजेता जाति केवलमात्र जन-हित से प्रेरित होकर कार्य नहीं करती। यह तो न केवल निरर्थक है अपितु असम्भव भी है कि इस छोटी-सी पुस्तिका में हिन्दुओं पर ब्रिटिश शासन के सामाजिक और राजनैतिक प्रभाव को दर्शाया जा सके। यहाँ तो इतना ही कह देना पर्याप्त है कि लोगों ने इस प्रभाव को ईसवी सन् की बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी अनुभव करना शुरू किया और सन् १९०९ में हिन्दुओं ने संगठन के प्रयत्न आरम्भ किये।

संगठन के विचार का जन्म और उसकी वृद्धि

साम्प्रदायिक दृष्टि से हिन्दुओं के संगठित होने का विचार पहले-पहल पंजाब में उठा। पंजाब के मुसलमानों ने सर सैयद अहमद की राजनैतिक क्षेत्र से दूर रहने की नीति से असन्तुष्ट होकर एवं मुसलमानों को राजनैतिक दृष्टि से संगठित करने के लिए मुस्लिम लीग की आधारशिला रक्खी। हिन्दुओं ने इसका अनुकरण किया और परिणामत: पंजाब हिन्दू-सभा की स्थापना हुई और पूरे चार वर्ष तक यह संस्था पंजाब की चारदीवारी में बन्द रही। परन्तु ७ और ८ दिसम्बर १९१३ को अम्बाला में हुए पाँचवें अधिवेशन में इस संस्था के रंगमंच पर से निम्न चिरस्मरणीय प्रस्ताव पास किया गया :

"इस सभा की यह सुदृढ़ सम्मति है कि सम्पूर्ण भारत में तथा अन्यत्र हिन्दू जाति के हितों की रक्षार्थ और उचित उपायों के विधान के लिए यह आवश्यक है कि सन् १९१५ में हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर समस्त भारतीय हिन्दुओं की ओर से एक महाधिवेशन किया जाय। यह सभा निम्न सज्जनों से प्रार्थना करती है कि वे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रबन्ध करें।" यद्यपि इस सम्मति के लिए भारत के विभिन्न भागों से २९ हिन्दू नेता चुने गये थे और उन्हें यह भी अधिकार दिया गया था कि वे इस संख्या को बढ़ा भी सकते हैं, परन्तु २४ सितम्बर १९१४ को देहरादून में थे जब इस समिति का प्रारम्भिक अधिवेशन हुआ तो कुल ५ सज्जनों ने इसमें भाग लिया, इन पाँच में से तीन तो देहरादून के ही थे। इस अधिवेशन में कार्यालय के लिए कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की गई और २००० रुपये का बजट पास किया गया। परन्तु इस समिति के मन्त्री के प्रतिवृत्त के अनुसार—"कुछ कारणों से उपर्युक्त समिति के अधिवेशन द्वारा निर्दिष्ट योजनाओं और कार्यालय-निर्माण के कार्य को क्रियान्वित नहीं किया जा सका। इसी बीच १९१४ की समाप्ति पर अम्बाला के आदरणीय राय साहब मुरलीधर के सभापतित्व में फिरोजपुर में पंजाब हिन्दू सभा का छठा अधिवेशन हुआ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें अम्बाला-अधिवेशन के प्रस्ताव की पुनः पुष्टि की गई।

इसके बाद प्रस्तावित अखिल भारतीय हिन्दू सभा के लिए नियुक्त प्रधान-मन्त्री लाला सुखबीरसिंह ने बार-बार अनुरोध किये जाने पर अम्बाला में नियुक्त समिति के सदस्यों तथा सार्वजनिक क्षेत्र में काम करनेवाले हिन्दू नेताओं को एक विज्ञप्तिपत्र भेजा और संवत् १९७२ में कुम्भ के अवसर पर होनेवाले हिन्दू सभा के अधिवेशन के सम्बन्ध में परामर्श माँगे तथा उसमें सम्मिलित होने की प्रार्थना की। इसके बाद १३ फरवरी १९१५ को हरिद्वार में, १७ फरवरी को लखनऊ में और २७ फरवरी को दिल्ली में अधिवेशन किये गये। दिल्ली में राज्य-परिषद् के हिन्दू सदस्यों से भी भेंट की गई। "यह निश्चय किया गया कि सभा का प्रधान कार्यालय दिल्ली में रक्खा जाये, पहले से स्थापित 'आल इण्डिया हिन्दू एसोसियेशन' के नियमों के आधार पर नियम तैयार किये जायँ और उन्हें हिन्दू नेताओं में प्रचारित किया जाय एवं उन हिन्दू नेताओं को उस प्रारम्भिक अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किया जाय।"

इस अधिवेशन का सभापति कासिम बाजार के महाराजा मुनीन्द्रचन्द्र नन्दी को निर्वाचित किया गया और इस आन्दोलन के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने के हेतु मेरठ कमिश्नरी के कमिश्नर को निमन्त्रित किया गया। इसलिए स्वभावतः इस अधिवेशन की सम्पूर्ण कार्यवाही किसी विशिष्ट रंग से रंगी हुई और सरकारी दबाव से दबी हुई प्रतीत होती थी। सभापति महोदय ने अपने भाषण को समाप्त करते हुए कहा—

"हिन्दू होने के नाते तथा धर्मभीरु स्वभाव के कारण हम सरकार और सम्राट् की राजभक्त प्रजा हैं और हम अपने पूरे सामर्थ्य से ब्रिटिशों और उनके सहयोगियों की विजय के लिए प्रार्थनाएँ करते रहते हैं।" और कमिश्नर ने उसी स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए कहा—"सभापति के भाषण में जहाँ कहीं ब्रिटिश सरकार और महामहिम सम्राट् का निर्देश किया गया है वहाँ सर्वत्र एकत्रित श्रोताओं ने राजभक्तिपूर्ण भावनाओं का प्रदर्शन किया है। इससे मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ।"

इस प्रदर्शन के समाप्त होने पर विषय-समिति की कई दिनों तक मीटिंग हुई। इसमें सभा के नियम बनाये गये और उद्देश्यों की व्याख्या की गई। इस संस्था का नाम "सार्वदेशिक हिन्दू सभा" रक्खा गया और इसके उद्देश्य इस प्रकार घोषित किये गये—

(क) हिन्दू जाति के विभिन्न भागों में इस प्रकार एकता पैदा करना तथा घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना कि वे एक शरीर के विभिन्न अंग प्रतीत हों।

(ख) हिन्दू जाति में विस्तृत रूप से शिक्षा का प्रसार करना।

(ग) हिन्दू जाति के विभिन्न वर्गों की अवस्था को सुधारना तथा उन्नत करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) जब कभी जहाँ कहीं आवश्यकता हो हिन्दू-हितों की रक्षा करना तथा उन्हें आगे बढ़ाना।

(ङ) हिन्दुओं तथा अन्य भारतीय जातियों के बीच सद्भावना उत्पन्न करना और उनके साथ भी पूर्ण व्यवहार करना, तथा सरकार के साथ राजभक्त के रूप में सहयोग करना।

(च) सामान्य रूप से जाति के धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक, सामाजिक और राजनैतिक हितों की सुरक्षा के आवश्यक पग उठाना।

नोट—यह सभा हिन्दुओं के किसी विशिष्ट वर्ग या वर्गों का पक्ष नहीं लेगी, न उनके सम्बन्धों में स्वयं हस्तक्षेप करेगी, न ही कोई विरोध करेगी।

मुझसे भी इस सभा का सदस्य होने को कहा गया और मुझे महात्मा गांधी को भी प्रेरणा करके इसमें सम्मिलित होने को कहा गया (उस समय गांधी जी गुरुकुल में मेरे अतिथि थे) परन्तु मेरे जैसे व्यक्ति के लिए—जिसने १८ वर्ष से वकालत छोड़ रक्खी हो और २० वर्ष से भी अधिक समय से ब्रिटिश भारतीय सरकार की शिक्षण-पद्धति से क्रियात्मक असहयोग कर रक्खा हो—स्वभावतः इस प्रकार के आन्दोलन में सहयोग दे सकना सम्भव न था, दूसरे को प्रेरणा करने की बात तो दूर रही।

बहुत बाजों-गाजों के साथ 'सार्वदेशिक हिन्दू सभा' की स्थापना की गई। कासिम बाजार के महाराजा सभापति चुने गये, तीन शंकराचार्यों सहित १३ उपसभापति चुने गये, लाला सुखबीरसिंह प्रधानमन्त्री नियुक्त हुए, उनके चार सहकारी मन्त्री बनाये गये और देश के सभी प्रान्तों से चुन-चुनकर कार्यकारिणी के ५० सदस्य चुने गये और यह प्रतीत होने लगा कि यह संस्था अत्यल्प काल में हिन्दू समाज का कायाकल्प कर देगी।

सभा के प्रतिवर्ष वार्षिक अधिवेशन होने लगे और विशेषाधिवेशन भी होने लगे। हिन्दू हितों की रक्षार्थ प्रस्ताव पास किये जाने लगे, परन्तु हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों की अवस्था सुधारने तथा उनकी दशा को उन्नत करने के लिए क्रियात्मक रूप से कुछ भी नहीं किया गया। हरिद्वार में 'हर की पौड़ी' पर गंगा का जल अबाधित रूप रहे, गोरक्षार्थ और आनेवाले सुधारों में हिन्दू-हितों की रक्षार्थ संयुक्तप्रान्त के गवर्नर, वायसराय और भारत-मन्त्री के पास डेपूटेशन तथा निवेदनपत्र (मेमोरेण्डम) भेजे गये, परन्तु ये शानदार प्रयत्न अत्यल्प फलदायक सिद्ध हुए।

प्रयाग के कुम्भ मेले के अवसर पर हुए सभा के चौथे अधिवेशन में पास किये गये प्रस्तावों से प्रकट होता है कि अन्य बातों के साथ सभा अपने मुसलमान भाइयों को प्रसन्न करने के लिए अत्यधिक उत्सुक थी। हिन्दू-मुस्लिम समस्या के सम्बन्ध में सभा का ८वाँ प्रस्ताव इस प्रकार था—"गत वर्ष बंगाल और संयुक्तप्रांत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-मुसलमानों के बीच दंगे हुए, उनके सम्बन्ध में इस सभा की सम्मति में निम्न कारण प्रमुख थे—

(क) दोनों भगिनी जातियों में अन्दर तक घुसे हुए और देर से परिपुष्ट एक-दूसरे की धार्मिक भावनाओं के प्रति निरादर का भाव।

(ख) जुलूसों और प्रदर्शनों के निमित्त बनाये गये नियमों और समझौतों के प्रति अवहेलना का भाव।

(ग) उपद्रवों को रोकने तथा नियन्त्रित करने के लिए प्रबन्ध की अपर्याप्तता तथा पहले से सावधानी के रूप में किसी कदम का न उठाना।

इसलिए सभा (१) मुस्लिम और हिन्दू नेताओं को निमन्त्रण देती है कि वे अपनी-अपनी जातियों को यह भली-भाँति समझायें कि अपने पड़ोसियों की धार्मिक भावनाओं का आदर करना, पारस्परिक सहयोग की भावना रखना और पारस्परिक सम्मान आज की सर्वप्रथम आवश्यकताएँ हैं और उन्हें परस्पर किये गये समझौतों के प्रति सहयोग-भावना रखने के लिए प्रेरणा करें, और (२) अधिकारियों से प्रार्थना करती है कि वे धार्मिक उपद्रवों के दमन के लिए दोनों जातियों के प्रतिनिधियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करें।

यह सभा शाहाबाद और गया आदि कुछ गाँवों के उपद्रवियों की कठोर शब्दों में निन्दा करती है और सरकार से प्रार्थना करती है कि वह सार्वजनिक हिन्दू-मुसलमान नेताओं का एक संयुक्त कमीशन नियुक्त करे जो कि उपद्रवों के कारणों की जाँच करे और इस प्रकार के उपद्रवों की पुनरावृत्ति को रोकने के उपाय सुझाये, तथा दोनों जातियों के बीच सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध उत्पन्न करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह सभा सरकार और मुस्लिम नेताओं से सहयोग करने को प्रस्तुत है।"

सन् १९१८ का वर्ष गढ़वाल में भोज्य पदार्थों के अकाल के साथ आरम्भ हुआ। आर्यसमाज की दोनों पार्टियों और प्रयाग सेवासमिति द्वारा संचालित 'अकाल-निवारक निधियों' की भाँति हिन्दू सभा ने भी एक अकाल-सम्बन्धी निधि की स्थापना की और गंगोत्री तथा गंगाघाटी के ऊँचे प्रदेशों में अकाल-पीड़ितों की सहायतार्थ अपने कुछ दल भी भेजे। इससे सभा ने लगभग दस हजार रुपये बचाये और इन्हीं रुपयों से सभा के स्थायी कोष की स्थापना हुई। भारत में शासन-सम्बन्धी सुधारों को क्रियान्वित करने के लिए मि० माण्टेग्यू और लॉर्ड चेम्सफोर्ड को धन्यवाद दिया गया। अन्तर्जातीय विवाहों को कानून-सम्मत बनाने के लिए प्रस्तुत श्री पटेल के बिल की निन्दा की गई। सभा के मन्त्री ने अस्पृश्यता के निवारणार्थ लोगों की सम्मतियाँ माँगीं। मन्त्री महोदय की इस जाँच-पड़ताल का निष्कर्ष यह था कि जो जातियाँ मेहतर का तथा अन्य गन्दे काम नहीं करतीं उन जातियों के प्रति जनता की भावना बदलती जा रही है तथा अस्पृश्यता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवारण की ओर लोग अधिकाधिक झुकते जा रहे हैं। अन्त में दिल्ली में होने-वाले अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के अधिवेशन से लाभ उठा-कर १९१८ में २७-२८ दिसम्बर को राजा सर रामपालसिंह के० सी० आई० ई० की अध्यक्षता में दिल्ली में सभा का पाँचवाँ अधिवेशन किया गया। बहुत-से प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की कठोर शब्दों में निंदा की गई थी, परन्तु साथ ही यह कहा गया 'हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व उनकी संख्या के अनुपात से नियत कर दिया जाना चाहिए।' एक अन्य प्रस्ताव में गोहत्या को रोकने के लिए सरकार से प्रार्थना की गई। एक और प्रस्ताव में कांग्रेस से यह प्रार्थना की गई कि वह करतारपुर में बकरीद के समय हुए दंगे के सम्बन्ध में हिन्दुओं और मुसलमानों की सहायता से एक जाँच-समिति नियुक्त करे। एक प्रस्ताव में सरकार से अपील की गई थी कि हिन्दुओं की युद्ध-सम्बन्धी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए जर्मनों के अधिकार में गये हुए संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थ तथा अन्य प्राचीन पदार्थ हिन्दुओं को वापस दिलाये जायँ। एक और प्रस्ताव में सरकार द्वारा आयुर्वेदिक पद्धति के प्रति उपेक्षाभाव रखने का विरोध किया गया।

यह उस हिन्दू सभा का अन्तिम वार्षिक अधिवेशन था जिसके संचालकों का यह विश्वास था कि यदि किसी देश का शासन वहाँ के निवासियों से आक्रान्ता छीन लेते हैं तो वह भगवान् की प्रेरणा से होता है। सन् १९१९ के प्रारम्भ के साथ रॉलट बिल के विरुद्ध भयंकर आन्दोलन शुरू हो गया और परिणामस्वरूप दिल्ली, लाहौर और अमृतसर आदि में लोगों को गोलियों का निशाना बनाया गया तथा पंजाब में मार्शल-लॉ लागू करके प्रलयंकर दृश्य उपस्थित कर दिये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-मुसलमान संगठित हो गये, हिन्दुओं में साम्प्रदायिक धार्मिक भावनाएँ तो निर्बल हो गईं परन्तु 'खिलाफत कमेटी' की आधारशिला रखकर मुसलमानों में साम्प्रदायिक संगठन को खूब सुदृढ़ किया जाने लगा। सार्वदेशिक हिन्दू सभा ने सिर छिपा लिया और हिन्दू अपनी मनुष्य और धन-शक्ति द्वारा खिलाफत आन्दोलन की सहायता करने लगे। इसलिए सन् १९१९ और १९२० में सभा का कोई वार्षिक अधिवेशन नहीं हुआ।

इसके विपरीत हकीम अजमल खाँ ने मुस्लिम धर्मोपदेशकों की एक संस्था स्थापित की और उसका नाम 'जमीयत-ए-उलमाए हिन्द' रक्खा। उनके ही आश्रितों में से एक को इस संस्था का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया, जिसने संकेत पाकर सरकार के विरुद्ध फतवे देने शुरू किये और इस कार्य के लिए अन्य सहायकों को निमन्त्रण दिया जाने लगा।

अगस्त १९२० में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और दिसम्बर १९२० में नागपुर में सभी असन्तुष्ट उग्र नेता गिरफ्तार कर लिये गये। इन्हीं दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एप्रिल १९२१ में हरिद्वार में हिन्दूसभा का छठा अधिवेशन हुआ। इस बार सभा ने जो प्रथम कार्य हाथ में लिया वह था सभा के उद्देश्यों और नियमों में परिवर्तन। सभा के साथ 'महा' जोड़कर इसका नाम 'अखिल भारतीय हिन्दू महासभा' रख दिया गया और उसमें निम्न परिवर्तन किये गये :

१. धारा (ख) को निकालकर उसके स्थान पर धारा (ङ) रख दी गई और 'सरकार के साथ राजभक्त-रूप में सहयोग करना' वाले वाक्य को बदलकर इस प्रकार कर दिया गया—'जिससे संयुक्त और स्वशासित भारतीय राष्ट्र की स्थापना की जा सके।'

२. धारा (ग) में निम्न वर्ग की अवस्था को सुधारने का विशेष रूप से उल्लेख किया गया।

प्रधानमन्त्री तथा अन्य लोगों ने जो भाषण दिये वे कांग्रेस के प्लेटफॉर्म से भी भलीभाँति दिये जा सकते थे। निम्न प्रस्ताव अपनी कथा अपने-आप कहता है :

(i) यह निश्चय किया गया—"वर्तमान सरकार ने सैनिक प्रयोजन के लिए गो-हत्या की आज्ञा देकर और विदेशों में गोमांस, गौ और बैल के निर्यात की आज्ञा देकर न केवल हिन्दुओं की बद्धमूल भावनाओं की निरन्तर अवहेलना की है, अपितु चिरकाल से हिन्दुओं के पोषित धार्मिक विचारों को भी निरन्तर भड़काया है; सरकार के इन कृत्यों के प्रति यह सभा घोर असन्तोष प्रकट करती है और इनका विरोध करती है। इस सभा की यह निश्चित सम्मति है कि अब वह समय आ गया है जबकि हिन्दू यह भलीभाँति अनुभव कर लें कि यह काम केवल उन्हीं का और केवलमात्र उन्हीं का ही है कि वे अपने धर्म की रक्षा करें, और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण कष्टों को सहने एवं बलिदान करने के लिए उन्हें उद्यत रहना चाहिए तथा उन्हें सम्पूर्ण वैध उपायों और अहिंसक साधनों को बरतने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।"

(ii) "भारत में गोवध को रोकने के लिए तथा गोमांस आदि का अन्य देशों में निर्यात रोकने के लिए तत्काल प्रचार-कार्य शुरू कर देना चाहिए। यदि समय रहते वर्तमान सरकार हिन्दुओं की बद्धमूल धार्मिक भावनाओं पर ध्यान न दे तो अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का विशेषाधिवेशन भगवान् श्रीकृष्ण के जन्मस्थान एवं पवित्र तीर्थ वृन्दावन में—जहाँ कि भगवान् ने गौओं की रक्षा की थी—अगली जन्माष्टमी के अवसर पर बुलाया जाये और इस सम्बन्ध में भविष्य में क्या पग उठाया जाय, यह निश्चय कर लिया जाय।"

(iii) निम्न सज्जनों की एक प्रचार-समिति बनाई जाती है और उसे अधिकार होगा कि वह प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए यदि आवश्यक समझे तो अन्य सदस्यों को भी नियुक्त कर सकती है।

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए' २९ सम्मानित हिन्दू सदस्यों की एक सुदृढ़ प्रचार-समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने यह निश्चय किया कि जब तक गोवध रोक नहीं दिया जाता तब तक ब्रिटिश राजतन्त्र के साथ असहयोग किया जाय और असहयोग के प्रोग्राम का निश्चय १९२१ में ६ और ७ नवम्बर को दिल्ली में होनेवाले असाधारण अधिवेशन के लिए छोड़ दिया गया।

दिल्ली के उस असाधारण अधिवेशन में यह निश्चय किया गया कि (१) प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत-आगमन का बहिष्कार किया जाय, (२) विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया जाय और स्वदेशी वस्त्रों को लोकप्रिय बनाया जाय और (३) हिन्दुओं से अपील की गई कि वे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की सैनिक, पुलिस तथा अन्य नागरिक नौकरियाँ छोड़ दें।

दूसरे प्रस्ताव में हिन्दुओं के धार्मिक नेताओं, विद्वान् पण्डितों और साधुओं से यह प्रार्थना की गई कि वे एकस्वर से एकमत होकर यह व्यवस्था दे दें कि गोमाता की रक्षा के लिए प्रत्येक हिन्दू ब्रिटिश सरकार से असहयोग आरम्भ कर दें।

तीसरे प्रस्ताव द्वारा ५० से भी अधिक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध हिन्दू नेताओं की एक उपसमिति नियुक्त कर दी गई और उसे यह अधिकार दिया गया कि वह कार्यालय के लिए उपयुक्त व्यक्ति नियुक्त कर ले और जब आवश्यक समझे तो अपनी सदस्य-संख्या बढ़ा ले। इस अधिवेशन के आय-व्यय का लेखा ले लेने के बाद असहयोगात्मक और हिंसक आन्दोलन को सफल बनाने के लिए अवशिष्ट राशि को व्यय करने का इस उपसमिति को अधिकार दे दिया गया।

दिल्ली के इस अधिवेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्ष हकीम अजमल खाँ थे। उन्होंने ही यह प्रस्ताव रक्खा कि उनके द्वारा स्थापित 'जमीयत-ए-उलेमा' के ही समान 'जमीयत-ए-पण्डितान' की स्थापना की जाय। परन्तु सौभाग्य से यह प्रयत्न असफल रहा और हठधर्मी पुरोहितों और पण्डितों के हाथों होनेवाली दुर्गति से हिन्दुओं की रक्षा हो गई। अन्ततोगत्वा प्रसिद्ध बारदोली-प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन समाप्त कर दिया गया और राजनैतिक सभाओं की पिछलग्गू हिन्दू-महासभा, गोरक्षिणी सभा भी परिणामतः लुप्त हो गईं।

जब तक खिलाफत आन्दोलन चलता रहा तो हिन्दू-मुस्लिम एकता टिकी रही। परन्तु जब मुस्तफा कमालपाशा की तलवार ने उस विवाद को ही समाप्त कर दिया तो मुसलमानों की सुप्त हठधर्मिता की भावनाएँ पुनः जागृत हो उठीं और मुसलमानों ने मलाबार, मुलतान तथा अन्यत्र हिन्दुओं के विरुद्ध जिहाद बोल दिया तथा हिन्दुओं की आँखें खुलवाकर उनकी अस्पृहणीय स्थिति का बोध करा दिया। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने गया में कांग्रेस-अधिवेशन के समय हिन्दू महासभा का एक विशेषाधिवेशन बुलाया और वर्तमान हिन्दू संगठन आन्दोलन की आधारशिला रक्खी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू संगठन के अन्तिम प्रयत्न

एक अधिवेशन—जिसे वस्तुतः प्रथम अधिवेशन कहा जा सकता है—अगस्त १९२३ में बनारस में हुआ जिसमें देश के विभिन्न भागों से आये १५०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसने सर्वप्रथम और आवश्यक कार्य यह किया कि सभा के उद्देश्यों का विस्तार किया। हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों के प्रति अब तक महासभा उदासीन रहती थी। सभा ने लोगों की व्यक्तिगत धारणाओं और राजनैतिक दलों की भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए अहस्तक्षेप की नीति की घोषणा की। हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों की विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नाना प्रकार के उपाचारात्मक प्रस्ताव पास किये गये और इन प्रस्तावों को बाद के अधिवेशनों और सभाओं में परिवर्द्धित और संशोधित भी किया गया। अब मैं इन्हीं के सम्बन्ध में कुछ विचार उपस्थित करूँगा।

उपचारात्मक सुझाव

हिन्दुओं के अधःपतन को रोकने के लिए एवं उनकी प्राचीन स्थिति प्राप्त करने के लिए निम्न सुझाव रक्खे गये और हिन्दू महासभा ने उन्हें स्वीकार कर लिया।

प्रथम रोग—जो कि बहुत जीर्ण और पुराना है—हिन्दुओं का अन्य धर्मों को स्वीकार करके धर्म-परिवर्तन कर लेना है। शताब्दियों की कुम्भकर्णी निद्रा के बाद हिन्दुओं में आत्मबोध की भावना जागृत हुई, इसके सम्बन्ध में मैं मार्च १९२३ में बहुत-कुछ कह चुका हूँ।

१९२३ ईसवी के अन्तिम सप्ताह में जबकि गया में इण्डियन नेशनल कांग्रेस, खिलाफत कमेटी तथा ऐसी ही अन्य सभाओं के हजारों की उपस्थिति में 'जय-घोषों' के साथ अधिवेशन हो रहे थे, तभी आगरा में अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा का एक अधिवेशन बिना हुल्लड़ मचाये हो गया और उसमें यह प्रस्ताव पास कर दिया गया कि ४½ लाख मुस्लिम राजपूतों को उनकी बिरादरी में मिला लिया जाय। यह कोई नया प्रस्ताव नहीं है। शताब्दियों से आगरा और उसके आसपास के मलकाना राजपूतों में हिन्दुत्व के प्रति श्रद्धा और विश्वास चला आता था और कुछ शिक्षित राजपूत एक-चौथाई शताब्दि से भी अधिक समय से यह प्रयत्न कर रहे थे कि उन्हें हिन्दुओं में पुनः सम्मिलित कर लिया जाय। १९०५ से भी पूर्व इनमें से कुछ को प्रायश्चित्त आदि कराकर पुनः हिन्दुओं में सम्मिलित कर लिया गया, इसके बाद के अगले दो वर्षों में भी कुछ भूले-भटके प्रयत्न किये गये, परन्तु उनमें बहुत सफलता नहीं मिली। तब, कुछ उत्साही राजपूतों ने 'राजपूत शुद्धि सभा' नाम से एक संगठन खड़ा किया और नियमित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से कार्य आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग ११३२ मलकानों को शुद्ध करके हिन्दू बना लिया गया। इस सभा की १९१० की समाप्ति पर एक रिपोर्ट भी हिन्दी में प्रकाशित की गई। इसके बाद ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू राजपूतों की उदासीनता और उपेक्षा के कारण यह कार्य शिथिल पड़ गया और इस कार्य की प्रगति रुक गई। हिन्दू राजपूतों की यह उपेक्षा और उदासीनता ऐसा असह्य व्यवहार था जोकि कट्टर-से-कट्टर हिन्दुओं के विश्वास को भी हिला देने के लिए पर्याप्त था, और यही मलकानों को मुसलमानों की सुदृढ़ पकड़ से छुड़ाने में सबसे बड़ी बाधा थी। मुसलमान बनानेवाली एजेन्सियों के प्रतिवृत्तों और विवरणों से यह भी प्रकट होता है कि मुस्लिम मलकानों को धर्म-परिवर्तन न करने देने के लिए मुसलमानों की ओर से बहुतेरे प्रलोभन दिये गये, पर मलकान इसकी उपेक्षा करते रहे और इस बात पर निरन्तर बल देते रहे कि उन्हें पुन: हिन्दुओं में सम्मिलित कर लिया जाय; और आर्यसमाजी लोग भी हिन्दू राजपूतों के पास जाकर उनकी वकालत करते रहे कि मलकान राजपूतों पर लगाये सब प्रतिबन्ध हटा लिये जायँ परन्तु हमारे समाज की 'बिरादरियों' के सुकोमल हिन्दू-हृदय पिघल ही नहीं सके।

१९२२ के प्रारम्भ में पुन: इसपर विचार किया गया और ३१ दिसम्बर १९२२ में मेवाड़ में शाहपुरा के राजाधिराज सर नाहरसिंह जी, के०सी०आई०ई० की अध्यक्षता में क्षत्रिय महासभा की एक मीटिंग हुई, जिसमें जिला और प्रान्तीय सभाओं ने भाग लिया। उसमें इस अवस्था को सुधारने के लिए एक नरम-सा प्रस्ताव पास किया गया। परन्तु इस प्रस्ताव का, सम्भवत:, किताबी मूल्य के अतिरिक्त कोई मूल्य नहीं था।

राजाधिराज अपनी राजधानी में लौट गये, राजपूत सदस्य अपने कर्तव्य को निभाकर और आत्मसन्तोष की साँस लेकर अपने-अपने घरों को चल दिये, और वह प्रस्ताव भी तन्द्रायुक्त घोर निद्रा में पड़ गया। जनवरी १९२३ के प्रारम्भ में 'हिन्दू' साप्ताहिक में एक छोटा और सादा-सा समाचार प्रकाशित हुआ कि ४½ लाख मुसलमान राजपूतों ने हिन्दुत्व ग्रहण करने का प्रार्थनापत्र दिया है और क्षत्रिय महासभा ने उसपर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है। परन्तु राजपूत तो पहले ही सो चुके थे और सामान्य हिन्दू जनता ने उन पीड़ित मलकान राजपूतों के करुण क्रन्दन पर कोई कान नहीं दिया।

परन्तु इस घटनाचक्र से मुसलमान उत्तेजित हो उठे। जहाँ तक मुझे स्मरण है, विरोध प्रकट करने के लिए प्रथम सभा लाहौर जिले के पट्टी गाँव में हुई थी। इस सभा में देवबन्द के मौलवियों ने भयंकर विद्वेषात्मक भाषण दिये और हिन्दुओं को धमकाते हुए कहा गया कि यदि हिन्दुओं ने इस्लाम में दीक्षित मलकाने राजपूतों को शुद्ध करने का प्रयत्न किया तो हिन्दू-मुस्लिम-एकता चीर-चीर करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंग कर दी जायगी। पट्टी की इस मीटिंग की एक रिपोर्ट अमृतसर के मुस्लिम दैनिक 'वकील' के १७ जनवरी १९२३ के अंक में प्रकाशित हुई थी। इसके लगभग चार सप्ताह बाद ही विभिन्न सम्प्रदायों के मुस्लिम प्रचारक दर्जनों की संख्या में आगरा, मथुरा और भरतपुर के मलकाने गाँवों में घुस गये और प्रचार-कार्य करने लगे। फरवरी के प्रारम्भ में ५० से भी अधिक मौलवी वहाँ कार्य करने लगे थे और उन सब उलेमाओं ने मिलकर एक सुसंगठित संस्था का निर्माण कर लिया।

मुसलमानों के इन भयंकर प्रयत्नों और विषैले भाषणों ने हिन्दुओं को एक जबर्दस्त धक्का लगाकर उन्हें सोते से जगा दिया। आधे दर्जन से कुछ अधिक राजपूत तथा अन्य स्वयंसेवक इन मुसलमानी प्रयत्नों को अपनी आँखों से देखने के लिए इधर-उधर घूमे और परिणामस्वरूप १३ फरवरी १९२३ को विभिन्न हिन्दू और राजपूत सभाओं के प्रतिनिधियों का एक अधिवेशन निमन्त्रित किया गया। इसमें मुझे भी निमन्त्रित किया गया था। सनातनधर्म, आर्यसमाज, सिख और जैन संस्थाओं के लगभग ५० अन्य प्रतिनिधियों ने इसका अनुकूल उत्तर दिया और इनके अतिरिक्त लगभग ५० अन्य सदस्यों ने इसमें योग दिया। यहाँ पर एक और तथ्य यह प्रकट हुआ कि केवल अकेले मलकाने राजपूतों का ही प्रश्न नहीं था, अपितु मूला, जाट और गूजर, तथाकथित नौ-मुस्लिम, ब्राह्मण और बनिया आदि का भी प्रश्न था जो कि शुद्ध होने को उत्सुक थे।

एक संगठन तैयार करने के प्रश्न पर भी विचार किया गया। यह तो स्पष्ट था कि मुसलमानों का एक जबर्दस्त संगठन था जो कि पूर्ण उत्साह और विद्वेष के साथ काम कर रहा था। यदि हमें मलकानों, मूलों तथा अन्य अपने भाइयों की धार्मिक सुरक्षा की तनिक भी चिन्ता करनी थी तो यह नितान्त आवश्यक था कि हम भी एक मजबूत संगठन तैयार करते। इस नये संगठन का नाम भी मैंने ही प्रस्तुत किया। इस समय तक मुझे एक भी मलकाने या नौ-मुस्लिम से मिलने का अवसर नहीं हुआ था और न ही मैं उनकी स्थिति से भलीभाँति परिचित था। इस कारण मेरा यह विचार था कि किसी प्रकार का प्रायश्चित्त-संस्कार ही करा देना पर्याप्त होगा। इसलिए मैंने प्रस्ताव किया कि इस संगठन का नाम 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' रक्खा जाय; यह स्वीकार कर लिया गया और इसकी एक प्रबन्ध-समिति बना दी गई, जिसका मुझे प्रधान निर्वाचित कर दिया गया यद्यपि मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी, क्योंकि मैं तो पहले से ही विभिन्न कार्यों का उत्तर-दायित्व लिये होने के कारण बिल्कुल भरा हुआ था। तो भी मुझे अपने भाइयों के निर्णय के सामने झुकना पड़ा और बाद में तो मेरे तुच्छ प्रयत्नों के प्रति हिन्दू जाति ने मेरे प्रति इतना अधिक विश्वास और रुचि प्रकट की कि मुझे अपना सम्पूर्ण समय इसी में लगा देना पड़ा और मुझे अन्य कार्य कुछ समय के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थगित कर देने पड़े।

उसी दिन मुझे प्रबन्ध-समिति की ओर से यह निर्देश मिला कि मैं धन और मनुष्य-सहायता की अपील के लिए एक विज्ञप्ति तैयार करूँ तथा उसे प्रबन्ध-समिति के सम्मुख उपस्थित करूँ। इस प्रयोजन से मैं उसी दिन सायंकाल आगरा से दिल्ली चला गया। प्रारम्भ में मेरा विचार था कि इस अपील को गुप्त रूप से प्रचारित किया जाय और प्रेस को इससे अनभिज्ञ रक्खा जाय, परन्तु कुछ दिन बाद मुझे ज्ञात हुआ कि जमीयत-हिदायत-उल-इस्लाम की ओर से खुले आम १ लाख रुपये की अपील निकाली गई है और इस अपील की जमीयत-उल-उलेमा की ६ फरवरी १६२३ की बैठक में इसके प्रधान मौलाना किफायतुल्ला ने समर्थन और संपुष्टि की है (देखो केन्द्रीय खिलाफत कमेटी के पत्र दैनिक 'खिलाफत' का अंक ३७, भाग १, पृष्ठ ४, कालम १ और २) और सैकड़ों मौलवी और मुस्लिम कार्यकर्त्ता आगरा तथा निकटस्थ प्रदेशों में जमा होने लगे हैं। इन सबका उद्देश्य यह था कि मलकानों को पक्का मुसलमान बना दिया जाय। मैंने धन और मनुष्य-सहायता के लिए एक अपील तैयार की और २० फरवरी १६२३ को होनेवाली प्रबन्ध-समिति की बैठक में भाग लेने के लिए आगरा चला गया।

बैठक प्रारम्भ होने से पूर्व मेरा परिचय चार-पाँच व्यक्तियों से कराया गया जोकि बिलकुल हिन्दू वेश धारण किये हुए थे और उन्होंने वहाँ उपस्थित सभी लोगों को 'राम-राम' कहकर नमस्कार किया तथा मुझ संन्यासी को प्रणाम किया और बैठ गये। मैंने समझा कि वे सब हिन्दू राजपूत हैं और मैं उन्हें समझाने लगा कि उन्हें अपने पथभ्रष्ट मलकाने भाइयों को पुनः अपनी बिरादरी में ले लेना चाहिए। वे तथा अन्य उपस्थित सज्जन इससे बहुत ही आश्चर्य में पड़ गये और हमारे सेक्रेटरियों में से एक ने मुझे बताया कि मैं गलती कर रहा हूँ और 'ये तो नौ-मुस्लिम मलकाने राजपूत हैं जिन्हें शुद्ध किया जाना है।' इससे मुझे भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। पूछताछ किये जाने पर उन्होंने अपने सिरों पर मुझे चोटी दिखाई जो कि अन्य हिन्दुओं की चोटी की भाँति बढ़ी हुई थी। इसके अतिरिक्त उनके हिन्दू रीतिरिवाजों के सम्बन्ध में मुझे बताया गया तथा इस ओर विशेष रूप से निर्देश किया गया कि वे भी गौ-रक्षा के लिए उत्कटरूप से तत्पर रहते हैं। यह भी प्रकट हुआ कि ये मलकाने अन्य हिन्दू 'बिरादरियों' से भी बढ़कर मांस-मछली तथा अन्य इस प्रकार के भोजनों से बहुत ही दूर थे एवं पक्के शाकभोजी थे। तब मेरी अन्तरात्मा पुकार उठी 'जिन लोगों ने जाज्वल्यमान अग्नि में पटक दिये जाने पर, नंगी तलवारों के सिर पर लटकते हुए होने पर भी अपने हिन्दू विश्वासों को बनाये रक्खा है क्या उन लोगों की शुद्धि की जायगी? उन लोगों से प्रायश्चित्त कराया जायेगा? प्रायश्चित्त तो उन हिन्दुओं को करना चाहिए जिन लोगों ने सदियों तक अपने भाइयों की उपेक्षा करने का अपराध किया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन नवपरिचित मलकानों के आराम के लिए चले जाने पर प्रबन्ध-समिति की बैठक प्रारम्भ हुई। इसके सामने मैंने वह अपील रक्खी। इसमें कुछ संशोधन करने के पश्चात् वह सर्वसम्मति से पास हो गई और प्रेस में दे दी गई। वह अपील इस प्रकार थी :

"आजकल वह प्राचीन महान् आर्य जाति मृतक-सी समझी जाती है—यह भावना इस कारण नहीं है कि इसकी संख्या घट रही है, अपितु यह सम्पूर्णरूप से असंगठित है। व्यक्तिशः इस जाति का प्रत्येक व्यक्ति बौद्धिक और शारीरिक दृष्टि से अद्वितीय है; मानवजाति की कोई भी अन्य शाखा इस जाति का नैतिकता में मुकाबिला नहीं कर सकती, तो भी यह जाति अपने विभिन्न उपवर्गों के कारण और अपनी एकांगी प्रवृत्ति के कारण नितान्त दुर्बल सिद्ध हो रही है।

"हमारी जाति के चुने हुए लाखों व्यक्तियों को बाधित होकर इस्लाम स्वीकार कर लेना पड़ा है, और हजारों ईसाइयत को स्वीकार करने को बाधित हुए हैं, परन्तु थोड़ा-सा भी यह प्रयत्न नहीं किया गया कि इस निकासी को रोका जाय अथवा हिन्दुओं से पृथक् हुए भाइयों को पुनः अपने में सम्मिलित कर लिया जाय। नौ-मुस्लिम ब्राह्मण, वैश्य, राजपूत, जाट आदि बहुत बड़ी संख्या में गत दो शताब्दियों से, बल्कि इससे भी अधिक समय से अपने हिन्दू भाइयों की ओर इस विश्वास और उत्कंठा से देखते रहे हैं और अपनी प्राचीन हिन्दू भावनाओं और विश्वासों को इस आशा से जीवित रखते आये हैं कि किसी दिन उन्हें पुनः उनकी प्राचीन बिरादरी में वापस ले लिया जायेगा। केवलमात्र एक घटना ने हिन्दुओं की आँखें खोल दीं। राजपूत महासभा ने पूर्ण बाजे-गाजे के साथ यह घोषणा कर दी कि ४½ लाख मुसलमान राजपूत हिन्दू होने को तैयार हैं। इस भ्रमात्मक और नाटकीय घोषणा करने के बाद राजपूत महासभा पता नहीं कहाँ जाके सो गई। इस घोषणा को मैं भ्रमात्मक इसलिए कहता हूँ क्योंकि मलकाने राजपूतों के प्रबल बहुमत ने व्यवहार और विश्वास में कभी इस्लाम को स्वीकार नहीं किया। हाँ, हिन्दू तो सो गये, परन्तु मुसलमान एक जीवित जाति होने के कारण एकदम क्रियाशील हो उठे हैं और उनके प्रचारकों के झुण्ड-के-झुण्ड इस कार्य में जुट गये हैं और उनकी आजीविका तथा प्रचार के लिए रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है।

"अन्ततोगत्वा, इसने हिन्दू जनता को जागृत कर दिया है और अब सभी स्थानों से यही ध्वनि सुनाई देती है कि हमारे उन पीड़ित भाइयों को वैदिक धर्म की शरण में ले लिया जाय तथा उन्हें हिन्दुओं में सम्मिलित कर लिया जाय। इसलिए 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' के नाम से एक संस्था संगठित की गई है और उसका यह उद्देश्य है कि जो लोग हिन्दू-धर्म में पुनः लौटना चाहते हैं उन्हें लौटा लिया जाय। इस संस्था की प्रबन्ध-समिति में हिन्दुओं की सभी जातियों में से प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति लिये गए हैं।"

उपर्युक्त अपील २३ फरवरी से दैनिक पत्रों में प्रकाशित होनी शुरू हुई और २५ फरवरी को मलकानों का प्रथम जत्था शुद्ध किया गया। ये मलकाने ग्राण्ड ट्रंक रोड पर स्थित 'रैभा' गाँव के थे जो आगरा से १३ मील पर है। यह मेरा भाग्य था कि अकस्मात् मुझे प्रथम बार उन तथाकथित मुस्लिम राजपूतों के सच्चे हिन्दू घरों को देखने का सौभाग्य मिला और उनके रहन-सहन की हिन्दू पद्धति मेरे हृदय पर अंकित हो गई।

बाहर से आये हुए हजारों अभ्यागतों की उपस्थिति में मलकानों को उनके हिन्दू भाइयों ने पुन: हिन्दू जाति में ले लिया, और इन अभ्यागतों ने शुद्ध किये हुए मलकानों द्वारा तैयार भोजन भी ग्रहण किया। मेरे सामने यह तथ्य पुन: मूर्तरूप में आकर खड़ा हो गया कि ये वही वीर और शुद्ध आत्माएँ हैं जिन्हें शताब्दियों तक जाति-बहिष्कृत रक्खा गया है और आज उन्हीं आत्माओं से प्रायश्चित्त कराया जा रहा है। उसी दिन सायंकाल एक और गाँव कुठाली के मलकाने शुद्ध किये गए। दिसम्बर १९२८ के अन्त तक इसी प्रकार कई गाँव शुद्ध किये गए और हजारों तथाकथित नौमुस्लिम पुन: हिन्दू-धर्म में वापस ले लिये गए।

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के इस कार्य पर हिन्दू महासभा ने अपने निम्न प्रस्ताव द्वारा स्वीकृति की मोहर लगा दी—

> "यह महासभा मलकानों का पुन: हिन्दुओं में लिया जाना पूर्णरूप से न्याय्य और उचित समझती है, क्योंकि ये लोग जाति से राजपूत, ब्राह्मण, वैश्य, जाट, गूजर आदि विभिन्न वर्गों के होते हुए भी सम्पूर्ण रिवाजों और वैवाहिक कृत्यों में हिन्दू विधियों का विधिवत् पालन करते रहे हैं। महासभा को इस बात से भी सन्तोष है कि शुद्ध किये मलकानों को पुन: उनकी बिरादरी में ले लिया गया है और यह आशा करती है कि ये बिरादरियाँ अपने भाइयों के इस प्रकार वापस लौटने का सहर्ष स्वागत करेंगी।"

"शुद्धि का यह कार्य आगरा तथा निकटस्थ जिलों तक ही सीमित नहीं था, परन्तु भारत के अन्य भागों में भी यह कार्य सुचारु रूप से चल रहा था। विभिन्न प्रान्तों में शुद्ध होनेवालों की जाति आदि का नामभेद अवश्य था, परन्तु उनका अपने हिन्दू भाइयों से जो सम्बन्ध था वह ठीक एक ही प्रकार का था। मलकाने, मूले, मूल-इ-इस्लाम, अध्वर्यु आदि नौ-मुस्लिमों का चाहे जो नामभेद रहा हो परन्तु उनके आचार-व्यवहार और रीतिरिवाज बिल्कुल उनके हिन्दू भाइयों जैसे ही थे। मेरे अनुमान से प्रारम्भिक शुद्धि से लेकर फरवरी १९२३ के अन्तिम सप्ताह तक दो लाख से कम व्यक्ति शुद्ध नहीं किये गए थे, परन्तु अभी तो एक करोड़ से भी अधिक नौमुस्लिम हिन्दू जाति के क्षेत्र से बाहर पड़े हैं। इनके अतिरिक्त लगभग ४० लाख नौईसाई ऐसे हैं जो कि नामत: तो ईसा के अनुयायियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गिने जाते हैं परन्तु जो कि वस्तुतः आचार-व्यवहार और धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से पूर्णरूप से हिन्दू हैं और केवलमात्र उन दिनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं जबकि कट्टर हिन्दू अपने द्वार खोल देंगे और वे हिन्दू क्षेत्र में प्रवेश कर जाएँगे। दक्षिण भारत में ऐसे ब्राह्मण ईसाई देखे जा सकते हैं जो कि यज्ञोपवीत धारण करते हैं, माथे पर टीका लगाते हैं, आयरों और आयंगरों की भाँति बड़ी-बड़ी चोटियाँ रखते हैं, और मांसाहारी ईसाइयों के साथ कभी भोजन नहीं करते। उनके ईसाई होने का केवलमात्र चिह्न यह है कि वे प्रत्येक रविवार को रोमन कैथोलिक गिरजाओं में जाते हैं। ये सभी प्रकार के लोग अभी अपनी पुरानी बिरादरियों में लिये जाते हैं।

हिन्दू महासभा तो यह भी निश्चय कर चुकी है कि उन सब अहिन्दुओं को जो कि हिन्दू संस्कारों और हिन्दू धर्म में विश्वास रखते हैं पुनः हिन्दू धर्म में ले लेना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि हिन्दू-धर्म और संस्कृति में विश्वास रखने-वाले प्रत्येक अहिन्दू का यह अधिकार है कि वह हिन्दुत्व को स्वीकार करके उसमें समा जाय और घुलमिल जाय। संक्षेप में, हिन्दू महासभा के आदेश के अनुसार प्रत्येक ईसाई, मुसलमान और यहूदी बिना किसी बाधा के हिन्दुत्व में दीक्षित हो सकता है। हिन्दू जाति की इस प्रकार सामूहिक रूप से नैतिक स्वीकृति देने के बाद शेष कार्य सुधारकों का है, परन्तु कार्य बहुत दुष्कर है। पर्याप्त आर्थिक सहायता और उत्साही कार्यकर्त्ताओं के बिना कार्य मन्दगति से हो रहा है। इसलिए, इसका प्रथम उपचार यह है कि भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा को एक जीवित संस्था बनाया जाय और कार्य को सभी दिशाओं से प्रेरणा और द्रुतगति देने के लिए एक लाख रुपया इकट्ठा किया जाय तथा विशुद्ध विचारों के एवं निःस्वार्थ व्यक्तियों को इस संस्था में लाया जावे जो कि हिन्दुओं को यह प्रेरणा दें कि वे अपने पीड़ित भाइयों को अपने हृदयों में स्थान देकर पुनः अपने में मिला लें।

दूसरा उपचार यह है कि प्राचीन आश्रम-धर्म को सुदृढ़ आधार पर पुनर्-जीवित किया जाय। हिन्दू सभा ने पुरुषों की विवाहयोग्य न्यूनतम आयु १८ वर्ष निर्धारित की है और लड़कियों की १२ वर्ष। यह आंशिक सुधार अपर्याप्त है। विवाह-योग्य आयु पुरुषों के लिए न्यूनतम २५ वर्ष और कन्याओं के लिए १६ वर्ष ही होनी चाहिए और हिन्दू समाज को इस वैज्ञानिक नियम के पालन के लिए कठोरता से व्यवहार करना चाहिए। उच्च तीन वर्णों के विधुरों का विवाह कदापि किसी कुमारी से नहीं होना चाहिए, कोई विधुर प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद ब्रह्मचर्य का जीवन नहीं व्यतीत कर सकता तो उसे किसी विधवा से विवाह कर लेना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति असंयत और पाशविक वृत्तियों का शिकार हो जाता है तो उसे शूद्रों की कोटि में डाल देना चाहिए। तब उत्तर भारत की बहुपत्नी-प्रथा तथा दक्षिण भारत की बहुपति-प्रथा भी असन्दिग्ध रूप से समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दी जानी चाहिए। और, हिन्दुओं को उचित रूप से शिक्षा देने के लिए तथा उनके रक्षण के लिए देश के कोने-कोने में लड़कों और लड़कियों के लिए पृथक्-पृथक् गुरुकुल खोलने चाहिएँ।

परन्तु हिन्दू समाज तो अपनी भीरुतापूर्ण रक्षा करने की पद्धतियों के कारण 'बाल-विवाह' को गत दस शताब्दियों से सहन किये जा रहा है और इस प्रकार पाप के गर्त में डूबा हुआ है। इसलिए तीसरा उपचार यह है कि हमारे समाज में जितनी बाल-विधवाएँ हैं यदि उनकी अनुमति और इच्छा हो तो उनका पुनर्विवाह कर दिया जाय। यह केवल आपद्धर्म है। यदि कोई हिन्दू पाप करता है अथवा शास्त्रीय आदेशों का उल्लंघन करता है तो उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए। उचित प्रकार से किया हुआ प्रायश्चित्त न केवल व्यक्तियों के पापों को धो देता है अपितु राष्ट्र के पाप को भी बहा देता है। सनातन विचार का हिन्दू न केवल वेद और स्मृतियों पर विश्वास रखता है अपितु पुराणों पर भी विश्वास रखता है। वेद एक शाश्वत धर्म का प्रतिपादन करते हैं जोकि सब कालों में सत्य है। वेद ही धर्म का आदिस्रोत है—

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'

स्मृतियों को भी, जो वेदानुकूल हैं और वेद-विरुद्ध नहीं हैं, प्रामाणिक माना जाता है। इन स्मृतियों में अत्यन्त संकटकाल में पालने योग्य नियमों का विधान है, यही नियम 'आपद्धर्म' के नाम से कहे जाते हैं।

वेदों के अतिरिक्त व्यवस्था आदि स्मृतियाँ भी देती हैं; स्मृतियों में बाल-विधवा आदि के पुनर्विवाह की अनुमति है। स्मृतियों का यह विधान है कि यदि किसी कुमारी का शक्ति द्वारा उसकी अनिच्छा होते हुए अपहरण किया जाय तथा बलात्कार किया जाय तो उसके कौमार्य की स्थिति को समाप्त न समझा जाय। स्मृति-ग्रन्थों के सैकड़ों उद्धरणों में से निम्न कुछ उद्धरण मेरी बात का समर्थन करने के लिए पर्याप्त हैं—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया,
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा,
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनःसंस्कारमर्हति।

(मनु० अध्याय ६, श्लोक १७५-१७६)

यदि किसी स्त्री का उसके पति ने परित्याग कर दिया है अथवा वह विधवा है और उसने एक और व्यक्ति को पतिरूप में स्वीकार कर लिया है तो उसकी सन्तान 'पुनर्भू' कहलायेगी। यदि उस स्त्री का प्रथम पति से संयोग नहीं हुआ है तो वह दूसरे पति से वैधानिक रूप से विवाह कर सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्यैवाक्षतयोनिर्वा पाणिग्रहणदूषिता ।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनःसंस्कारमर्हति ।।

(नारद, अ० १२, श्लोक ४६)

यदि किसी स्त्री का केवलमात्र पाणिग्रहण एक बार हो चुका है और वह कुमारी है तथा अक्षतयोनि है, वह प्रथम पुनर्भू कहाती है और उसका पुनः विवाह-संस्कार हो सकता है।

पाणिग्रहे मृते बाला केवलमंत्रसंस्कृता ।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात् पुनःसंस्कारमर्हति ।।

(वशिष्ठस्मृति, अ० १७)

यदि किसी विवाहित बाला के पति की मृत्यु हो जाय और उसका विवाह केवल मन्त्रोच्चारण तक ही हुआ है तथा अक्षतयोनि है, उसका पुनः विवाह-संस्कार हो सकता है।

बलाश्चेदपहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता,
अन्यस्मै विधिवद्देया, यथा कन्या तथैव सा ।
निसृष्टायां हुते वापि यस्यै भर्त्ता म्रियते सः ।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतासती ।
पौनर्भवेन विधिना पुनःसंस्कारमर्हति ।।

(बौधायन धर्मशास्त्र, अ० १, श्लोक १५-१६)

यदि किसी कन्या का बलपूर्वक अपहरण किया गया है और विधिवत् उसका विवाह नहीं हुआ तो उसे विधिवत् अन्य को दिया जा सकता है क्योंकि वह भी कुमारी कन्या के समान है। यदि किसी का पति विवाहोपरान्त मर जाता है और वह अक्षतयोनि है तो वह पति के घर हो आने के बाद भी पुनर्विवाह कर सकती है।

उद्वाहिता च या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम्,
भर्तारं पुनरभ्येति यथा कन्या तथैव सा।
समुद्धृत्य तु तां कन्यां सा चेदक्षतयोनिका,
कुलशीलवते दद्यादिति शातापपोऽब्रवीत् ।

विवाहोपरान्त यदि कन्या के साथ संभोग आदि नहीं किया गया तो उसे किसी अन्य पति को दिया जा सकता है क्योंकि वह कुमारी कन्या के समान है। यदि वह कन्या अक्षतयोनि है तो उसे कुलशीलवाले किसी भी व्यक्ति को दिया जा सकता है। ऐसा शातातप मुनि का मत है।

चौथा उपचार यह है कि प्राचीन आर्यों के वर्णाश्रम धर्म को पुनरुज्जीवित किया जाय। मेरा अभिप्राय प्रचलित जातियों आदि से नहीं है, इस जातपाँत का तो सर्वथा विनाश होना ही चाहिए, और वह तो प्रत्येक सच्ची भारतीय सन्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए अभिशाप है। यदि हिन्दू समाज को सम्पूर्ण विनाश से बचाना है तो आज-कल के इन अप्राकृतिक और कठोर सहस्रों उपजातियों तथा सैकड़ों जातिगत भेदों को समाप्त करना ही होगा।

सर्वप्रथम उपजातियों के भेद समाप्त कर देने चाहिएँ और हिन्दुओं में 'असवर्ण जाति' नाम से कोई जाति नहीं रहनी चाहिए। प्राचीन वर्णधर्म के अनुसार हिन्दू समाज को एकदम से परिवर्तित कर देने की कठिनाई को भलीभाँति अनुभव करता हूँ। परन्तु इसमें तो कोई कठिनाई होनी ही नहीं चाहिए कि सम्पूर्ण उपजातियों को तथा अस्पृश्य वर्ग को संगठित करके असवर्ण नाम से जो लोग पुकारे जाते हैं उन्हें केवलमात्र चार वर्णों में समा दिया जाय। ब्राह्मण वर्ण अपने-आप में ही एक वर्ग होना चाहिए; इसकी विभिन्न पंचगौड़, पंचद्रविड़, भूमिहार, तगा आदि उपजातियाँ स्वीकार नहीं की जानी चाहिएँ। क्षत्रियों में राजपूत, खत्री, जाट, गूजर आदि केवल राष्ट्र के रक्षकवर्ग में एक ही वर्ण के रूप में स्वीकार किये जाने चाहिएँ। व्यवसाय और कृषि के कार्य में लगी सभी जातियाँ और उपजातियाँ एक वैश्य वर्ण में ही सम्मिलित की जानी चाहिएँ। शेष लोगों से निर्मित वर्ण शूद्र होगा, जोकि समाज की सेवा के लिए है। प्रारम्भ में जातियों के अन्दर पारस्परिक वैवाहिक प्रतिबन्ध समाप्त करके स्वतन्त्रतापूर्वक विवाह होने चाहिएँ, अनुलोम विवाहों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इसके बाद धीमे-धीमे प्रतिलोम विवाहों का समावेश करना चाहिए और अन्त में एक हिन्दू का वर्ण निश्चित करने के लिए गुण और कर्म का ही विचार करना चाहिए।

परन्तु सम्पूर्ण जातियों का एक-साथ भोजन आदि करना तो तत्काल प्रारम्भ कर देना चाहिए। यहाँ यह अभिप्राय नहीं है कि भोजन इस प्रकार संयुक्तरूप से किया जाय जैसे कि कई मुसलमान एक-साथ एक थाली और कटोरे में भोजन कर लेते हैं, अपितु पृथक्-पृथक् थालियों और कटोरों में साफ-सुथरे शूद्र द्वारा पकाये भोजन को एक-साथ बैठकर खायें। अकेली यही पद्धति हिन्दुओं में घुसी छुआछूत को समाप्त कर देगी।

हिन्दू महासभा ने अछूतों से सम्बद्ध एक लम्बा प्रस्ताव पास किया है, परन्तु इसने स्थिति को स्पष्ट करने की अपेक्षा और अधिक उलझा दिया है। इस प्रस्ताव के अनुसार यह केवलमात्र स्थानीय हिन्दुओं पर ही निर्भर है कि वे उन कुओं से, जोकि ईसाई और मुसलमानों के लिए भी खुले हैं, पानी भरने दें या नहीं। और यदि कोई अछूत भक्त किसी हिन्दू मन्दिर में जाकर अपने इष्ट देवता की पूजा करना चाहे तो यह मन्दिर के पुजारी की इच्छा पर निर्भर है कि वह उस अछूत को मन्दिर में घुसने दे या नहीं, चाहे उस मन्दिर में मुसलमान वेश्याएँ आकर नाचती हों और मुसलमान तबलची तथा सारंगीवाले वहाँ आकर वादन का काम करते हों। उन अस्पृश्य कहे जानेवाले लोगों के बच्चों के स्कूल और कॉलेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रवेश के सम्बन्ध में जितना कम कहा वही अच्छा है। ऊपर उल्लिखित सन्दिग्ध सुविधाएँ देने की घोषणा करने के बाद जब हिन्दू महासभा अधिकारपूर्ण ढंग से निम्न सिद्धान्त की स्थापना करती है तो वह वस्तुतः एक किनारे पर पहुँच जाती है। हिन्दू महासभा के मन्तव्य के अनुसार "अस्पृश्यों को यज्ञोपवीत धारण कराना, वेदों की शिक्षा देना और उनके साथ बैठकर भोजन करना सनातन धर्म के अनुसार शास्त्र और लोक-मर्यादा के विपरीत है।"

इन अनर्थों से छुटकारा पाने के लिए और अदर्शन, अप्रवेश, अस्पर्शन और निषेध आदि व्याधियों को जड़ से उखाड़ फेंकने का एकमात्र उपचार यह है कि प्राचीन आर्यों के वर्णधर्म को पुनर्जीवित किया जाय।

हिन्दू संगठन के आधार

मेरी सम्मति में हिन्दू संगठन को वास्तविक आधार पर संगठित करने के लिए उपर्युक्त चार ही उपचार हैं। हिन्दू महासभा द्वारा पास किये गए प्रस्तावों की सफलता भी इन्हीं उपचारों को ठीक-ठीक प्रयुक्त करने पर निर्भर है।

यह सत्य है कि गोरक्षा का प्रश्न न केवल हिन्दू-समाज के विभिन्न सम्प्रदायों को एकत्र करके सम्मिलित क्रिया करने के लिए उत्साह पैदा करता है, अपितु हिन्दू-समाज के सदस्यों की शारीरिक तथा भौतिक शक्ति की दृष्टि से भी महत्त्व-पूर्ण है। परन्तु यदि परिगणित जातियों का विकास जारी रहा और वे केवल इस कारण अपने पैतृक धर्म को छोड़ते रहे कि उनके सहधर्मी उन्हें सामाजिक दृष्टि से उत्पीड़ित करते रहते हैं, तथा अपने ही सगे-सम्बन्धियों के क्रूर व्यवहार से तंग होकर यदि हिन्दू विधवाएँ वेश्यावृत्ति को अपनाती रहीं एवं मुसलमान बनती रहीं और यदि उन्हें अपनी ही जाति में पुनर्विवाह करने का अवसर न दिया गया तो स्वभावतः गोभक्षक श्रेणी की संख्यावृद्धि होती जाएगी और गोरक्षा का प्रश्न अक्रियात्मक आदर्शों का स्वप्नमात्र रह जायेगा।

यदि हमारा अपना ही घर व्यवस्थित नहीं है तो अहिन्दू गुण्डों के आक्रमणों को रोकने में हिन्दू-रक्षक संगठन कहाँ तक समर्थ हो सकेंगे ? मुसलमानों के संघर्ष से बचने का सर्वोत्तम मार्ग यह है कि हम अपनी स्त्रियों और बच्चों की रक्षा और देखभाल का प्रबन्ध स्वयं करें।

सम्पूर्ण भारत में देवनागरी लिपि का प्रचलन और राष्ट्रभाषा-रूप में हिन्दी का प्रयोग नितान्त आवश्यक है, क्योंकि एक ही भाषा-भाषी राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति विचार और क्रिया की दृष्टि से एक-दूसरे के निकट आने लगता है। परन्तु जब तक वर्ग और जातिगत पक्षपात लुप्त नहीं हो जाते तब तक एक सामान्य भाषा और साहित्य की उत्पत्ति की सम्भावना नहीं की जा सकती।

हिन्दू समाज का उद्धार इस बात पर निर्भर है कि समाज सामूहिक रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियाशील हो उठे, परन्तु वैयक्तिक उद्धार तो वैयक्तिक साधनों से ही हो सकता है। धर्म का दर्शनात्मक रूप तो व्यक्तिगत वस्तु है और इसी कारण आस्तिक, बहुदेवतावादी और नास्तिक भी संगठित हिन्दू समाज की विस्तृत गोद में निःशंकभाव से स्थान पा सकते हैं! परन्तु जहाँ तक धर्म के नियम (कानून आदि) और उसके पालन का सवाल है वहाँ हिन्दू समाज एक समूह रूप से लिया जायेगा और इसीलिए यदि किसी का वैयक्तिक धर्म सामाजिक दृष्टि से अहितकर है अथवा हिन्दू समाज के राष्ट्रीय उद्धार में बाधक है तो उस वैयक्तिक धर्म को रोकना ही श्रेयस्कर है।

हिन्दू संगठन की ओर प्रथम पग

स्वभावतः अब यह प्रश्न उठता है कि हिन्दू संगठन की ओर प्रवृत्त होने के लिए प्रथम पग क्या उठाया जाय? मैंने अपने सम्पूर्ण भारत के भ्रमण में यह अनुभव किया है कि आज के शिक्षित एक-दूसरे से मिलने के लिए नितान्त उदासीन रहते हैं। उसका प्रमुख कारण यह है कि उनके पास मिलने के लिए तथा सभा आदि के आयोजन के लिए कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। उनके जातिगत मन्दिरों में इतना भी स्थान नहीं है कि वहाँ सौ या दो सौ व्यक्ति इकट्ठे बैठ जाएँ। दिल्ली में जामा मस्जिद और फतहपुरी मस्जिद को छोड़कर, जहाँ कि २५ से ३० हजार मुस्लिम श्रोता एक-साथ बैठ सकते हैं, और भी यहाँ पुरानी मस्जिदें विद्यमान हैं जहाँ कि हजारों की संख्या में लोग एक-साथ बैठ सकते हैं। परन्तु हिन्दुओं के लिए केवलमात्र एक ही लक्ष्मीनारायण की धर्मशाला है जहाँ पर कि कठिनाई से ८ सौ व्यक्ति बैठकर बन्द स्थान में अपनी सभा कर सकते हैं। इसपर भी विशेषता यह है कि मुसलमानों की प्रत्येक सभा नितान्त शब्दशून्य होती है जब कि धर्मशाला में यात्रियों के शोर के कारण वक्ताओं की आवाज कठिनाई से सुनाई देती है।

इस कारण मेरा सर्वप्रथम सुझाव यह है कि प्रत्येक नगर और शहर में एक हिन्दू राष्ट्र-मन्दिर की स्थापना अवश्य की जानी चाहिए जिसमें एक-साथ २५ हजार व्यक्ति एक-साथ समा सकें और उन स्थानों पर प्रतिदिन भगवद्गीता, उपनिषद्, रामायण और महाभारत की कथा होनी चाहिए। इन राष्ट्र-मन्दिरों का प्रबन्ध स्थानीय सभा के हाथ में रहना चाहिए और वह इन स्थानों के अन्दर अखाड़े, कुश्ती, गतका आदि खेलों का भी प्रबन्ध करे। जबकि हिन्दुओं के विभिन्न साम्प्रदायिक मन्दिरों में उनके इष्ट देवताओं की पूजा होगी, इन उदार हिन्दू मन्दिरों में तीन मातृशक्तियों की पूजा का प्रबन्ध होना चाहिए और वे हैं—

(i) गोमाता, (ii) सरस्वती माता, और (iii) भूमिमाता।

वहाँ कुछ जीवित गौएँ रखी जानी चाहिएँ जो कि हमारी समृद्धि की द्योतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, उस मन्दिर के प्रमुख द्वार पर गायत्री मन्त्र लिखा जाना चाहिए जो कि प्रत्येक हिन्दू को उसके कर्त्तव्य का स्मरण करायेगा तथा अज्ञान को दूर करने का सन्देश देगा, और उस मन्दिर के बहुत ही प्रमुख स्थान पर भारतमाता का एक सजीव नक्शा बनाना चाहिए, इस नक्शे में उसकी विशेषताओं को विभिन्न रंगों द्वारा प्रदर्शित किया जाय और प्रत्येक भारतीय बच्चा प्रतिदिन मातृभूमि के सम्मुख खड़ा होकर उसे नमस्कार करे और यह प्रतिज्ञा दोहराये कि वह अपनी मातृभूमि को उसी प्राचीन स्थान पर पहुँचाने के लिए प्राणों तक की बाजी लगा देगा जिस स्थान से उसका पतन हुआ था।

मैंने स्नेह और नम्रतापूर्वक जो दिशा बताई है, यदि उसका श्रद्धा और विश्वास के साथ अनुगमन किया जाय तो मैं समझता हूँ कि सभी सुधार धीमे-धीमे हो जाएँगे और मानव-समाज के उद्धार के लिए एक बार फिर प्राचीन आर्यों की सन्तान सामने आकर खड़ी हो जायेगी।

91478

शमित्योम् !!!

**

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gurukul Kangri Library
Acces on
Class on
Cat On
Tag etc
Checked
Any Other

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नवजागरण में आर्यसमाज तथा उसक संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती की भूमिका के अधिकृत व्याख्याकार **डा० भवानीलाल भारतीय** का जन्म राजस्थान प्रांत के अंतर्गत नागौर जिले के ग्राम परबसतर में आषाढ़ कृष्णा ३ सं. १९८५ वि. को हुआ। उनकी उच्चस्तरीय शिक्षा जोधपुर में हुई। उन्होंने संस्कृत तथा हिन्दी में एम. ए. तथा 'संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्यसमाज का योगदान' शीर्षक विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की उपाधि ग्रहण की।

डा० भारतीय को आर्यसमाज लेखन क्षेत्र में अवतीर्ण हुए ३७ वर्ष हो चुके हैं। इस बीच उन्होंने लगभग ६० छोटे बड़े ग्रन्थों का प्रणयन, सम्पादन, अनुवाद आदि किया है। दयानन्द सरस्वती की निर्वाण शताब्दी के अवसर उन्होंने नवजागरण के पुरोधा शीर्षक दयानन्द सरस्वती का शोधपूर्ण, बृहद, जीवनचरित लिखा था। आर्यसमाज के वेदविद् विद्वानों, शास्त्रार्थ महारथियों, पत्रकारों एवं लेखकों पर अनेक अनुसंधानपूर्ण ग्रंथ छप चुके हैं। पं. लेखराम पुरस्कार, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय स्मारक साहित्य पुरस्कार, विद्यावती शारदा साहित्य पुरस्कार तथा पं. गोवर्धन शास्त्री स्मारक पुरस्कार आदि से सम्मानित डा० भारतीय आर्यसमाज की साहित्यिक एवं अनुसंधानात्मक गतिविधियों में विगत तीन दशाब्दों से निरन्त सम्बद्ध रहे हैं।

वे आर्यसमाज की संगठनात्मक गतिविधियों में भी निरन्तर भाग लेते रहे हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के मन्त्री तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के वर्षों तक वे अन्तरंग सदस्य तथा उपमंत्री रहे। दो दशाब्द से भी अधिक समय तक राजस्थान की कॉलेज शिक्षा सेवा में रहने के पश्चात् वे विगत सात वर्षों से पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द अनुसंधान पीठ के अध्यक्ष तथा प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली के अन्तर्गत प्रकाशित रचनाओं के वैज्ञानिक रीति के संपादन, विवेचन तथा अंग्रेजी ग्रन्थों के अनुवाद आदि से प्रो. भारतीय की सारस्वत साधना सम्यक् रूप से परिलक्षित होती है। आर्यसमाज विषयक शोध और अनुसंधान के बारे में भारतीय एवं विदेशी विद्वान उनसे प्रामाणिक परामर्श लेने में गौरव का अनुभव करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar